M.Katyayana

॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला
११०

पण्डितप्रवरश्रीजीवनाथदैवज्ञविरचिता

वास्तुरत्नावली

(ससन्दर्भ-सोदाहरण-सचक्र-सचित्र-संस्कृत-
मोहनबोधिनी'ख्य हिन्दीटीकाद्वयोपेता)

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

सहयोग

अनुभूति चौहान
अनुकृति चौहान

चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक
दिल्ली – 110 007 (भारत)

प्रकाशक :
चौखम्भा पब्लिशर्स
गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा :
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बॉक्स नं. 2206
बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर
(कमला नगर के पास)
दिल्ली-110007 (भारत)
फोन : 23851617, 23858790

© चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी
संस्करण : 2009
मूल्य : रु 350

मुद्रक : तरुण आफसेट प्रेस, नई दिल्ली-2

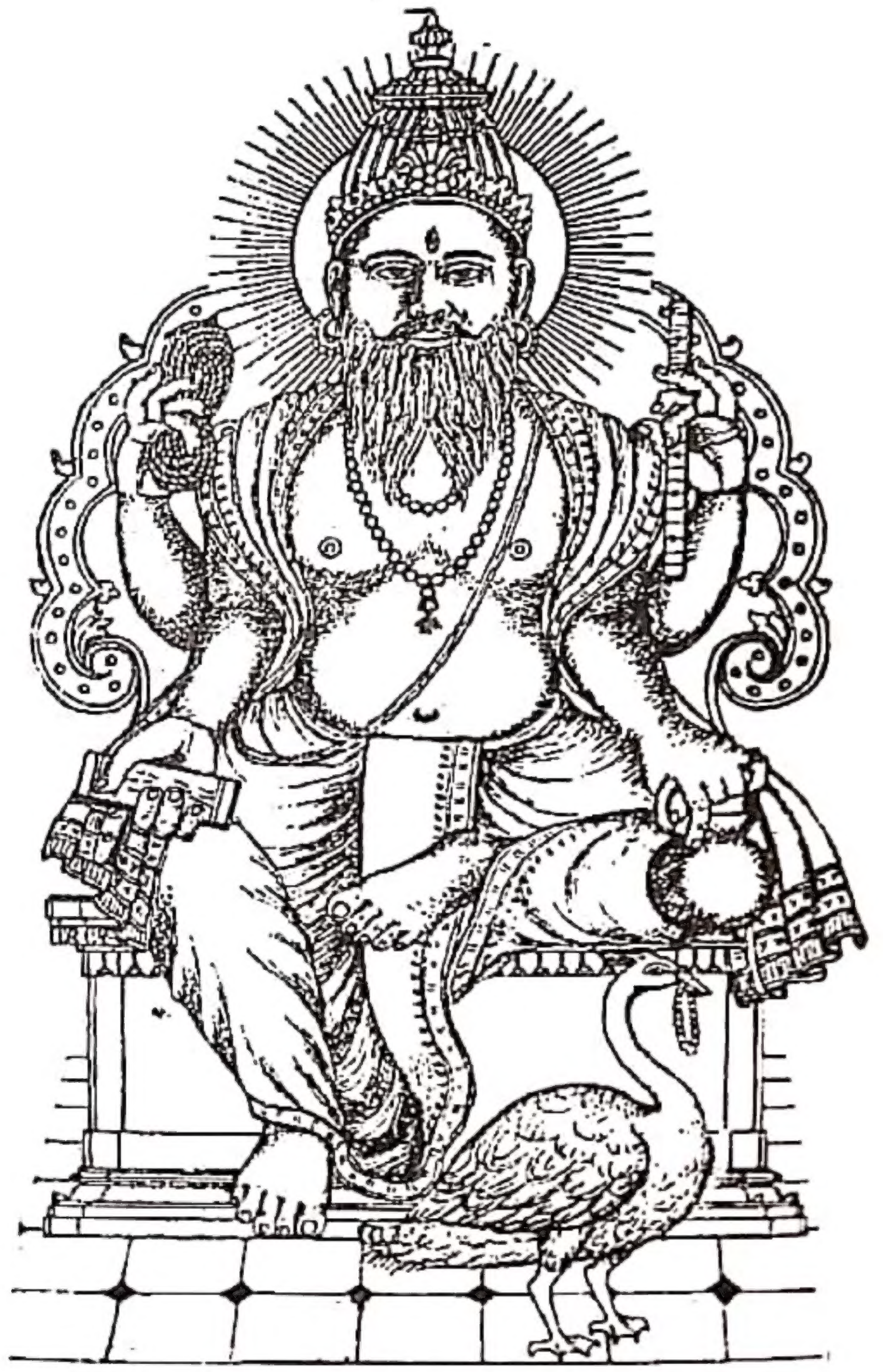

वास्तु उपदेशक - भगवान् विश्वकर्मा

परम श्रद्धेय पिताश्री

व

सद्गुरु नित्यलीलालीन

पण्डिततुल्य श्रीमद् मोहनलालजी चौहान

की पुण्यस्मृति में....

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठाङ्काः
विषया	7
दो शब्द	10
श्रीकृष्ण जुगनू	1
वास्तुरत्नावली: एक परिचय	7
वास्तुरत्नावली	36
अथभूमिशोधनार्थ शल्योद्धाराध्याय:	51
अथदिग्ज्ञानाध्याय:	61
अथ गृहचतुर्दिक्षु द्रुमरोपणनिर्णयाध्याय:	69
अथवास्तुपूजनविवेकाध्याय:	90
अथनृपादिगृहपरिमाणनिर्णयाध्याय:	102
अथगृहद्वारनिर्णयाऽध्याय:	112
अथस्तम्भरोपणनिर्णयाध्याय:	114
अथ वास्तुनिर्णयाध्याय:	210
उपस्कारक वास्तुआदि ग्रन्थ	235
अन्य उपयोगीपाण्डुलिपि ग्रन्थादि	242

दो शब्द

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व॥
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

(ऋग्वेद 7, 54, 1-3 एवं तैत्तिरीयसंहिता 3. 4, 10, 1 इत्यादि)

अर्थात्— हे वास्तोष्पते गृहपालक देव! आप हमें जगाएँ। हमारे गृह में पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को नीरोग एवं सुखी करें। जो धन हम आपसे माँगें, वह हमें प्रदान कीजिए। हे वास्तोष्पते! आप हमारे लिए कल्याणकारी धन का विस्तार-प्रसार करें। हे सोम! हम आपकी कृपा से गौओं तथा अश्वों के साथ नीरोग रहें। आप हमारा अपने पुत्रवत् पालन करें। हे वास्तोष्पते! हम आपसे सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त स्थान प्राप्त करें। हमें प्राप्त और प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ धन-वैभव की आप रक्षा करें। हमें सदा कल्याणकारी साधनों-उपस्करों से सुरक्षित रखें।

वास्तु मानव जीवनोपयोगी विज्ञान के रूप में अधिस्वीकृत है। ऋषियों ने इष्टापूर्त के अङ्ग के रूप में इसे मान्यता दी है। सृष्टि के आदिकाल से ही जबकि मानव ने वृक्षावास और गुहावास के बाद वृक्षों की शाखाओं, काष्ठादि से अपने आवास के लिए गृहादि का विचार किया, वास्तु के नियमों की आवश्यकता को समझा गया और तदर्थ सिद्धान्त, नियमों का निर्धारण किया जाने लगा। समराङ्गणसूत्रधार में वास्तु की आवश्यकता को कथारूप में वर्णित किया गया है जो वायुपुराण के सहदेवाधिकार से प्रेरित है। यह मानवीय सृष्टि के विकासक्रम की बोधक भी है।

आज लगभग शताधिक स्वतन्त्र वास्तुग्रन्थों का प्राप्त होना और पुराणों, संहितादि

ज्योतिष ग्रन्थों, निबन्ध रचनाओं में इस विषय की प्राप्ति होना इस ज्ञानानुशासन की सार्वकालिक आवश्यकता को प्रतिपादित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि गर्ग ने इस विषय को संहिता के अन्तर्गत परिगणित किया। हालांकि गर्ग की उक्त संहिता आज तक प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं हो पाई है— भारत से ऐसा दुर्लभ ग्रन्थ का नदारद होना दुर्भाग्य सूचक ही कहा जाएगा किन्तु गर्ग के मतों का पुराणों सहित सैकड़ों निबन्ध ग्रन्थों, टीकाओं में मिलना उन मतों की सार्वभौमिकता को प्रदर्शित करता है। कैम्ब्रिज के ट्रीनिटी कॉलेज में 108 पृष्ठों वाली 18वीं सदी में प्रतिलिपित गर्गसंहिता की एक प्रति है, ऐसा प्रो. प्रसन्नकुमार आचार्य ने सङ्केत किया है और उसके कुछ विषयों का वर्णन भी किया है, उत्पलभट्ट ने बृहत्संहिता के वास्त्वाध्याय की टीका में गर्ग के मतों को उद्धृत किया है। इसी प्रकार महर्षि पराशर ने भी उन मतों को विस्तार दिया। समय-समय पर कश्यप, अत्रि, माण्डव्य, देवल, मनु आदि ने भी इसे विस्तार दिया। अधिकांश प्राचीन शास्त्र अब तक अप्राप्य ही है।

मत्स्य, अग्नि, विष्णुधर्मोत्तर, गरुड आदि पुराणों में आए कतिपय अध्याय दर्शाते हैं कि उत्तर गुप्तकाल में यह विषय एक जनोपयोगी ज्ञानानुशासन के रूप में उभरा और पुराणकारों ने उसे विस्तार देते हुए सुरक्षित करने का प्रयत्न किया। कालान्तर में जबकि आक्रान्ताओं ने भारतीय वास्तु-शिल्प विरासत को क्षति पहुँचाई तो पूर्वसूरियों के मतों को सुरक्षित रखने के हेतु से शासकों ने सूत्रधारों, ज्योतिषियों को प्रेरणा दी तो समय-समय पर कई ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा। इनमें से कई सम्पादित ग्रन्थ हैं तो कुछ मौलिक रूप में भी।

इनमें 'वास्तुरत्नावली' निबन्ध ग्रन्थों की कोटि में स्वल्प किन्तु विषय की व्यापकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मैथिल पण्डित जीवनाथ ने इसका प्रणयन किया। वह पटना के निवासी और उस वंश से सम्बद्ध थे जिसने वेद-वेदाङ्ग से लेकर ज्योतिष के त्रिस्कन्धों का विशेष अध्ययन, अध्यापन किया था। यह वंश कई शासकों के यहाँ सम्मानित हुआ था।

भावप्रकाशादि फल ग्रन्थों के रचयिता जीवनाथ ने वास्तुरत्नावली में पूर्वसूरियों के श्लोकों का न केवल संग्रह किया, वरन अनेकत्र अपनी टीका भी दी। ज्योतिषियों, सूत्रधारों में यह ग्रन्थ लोकप्रिय हुआ। भारत में प्रकाशित हुए प्रारम्भिक वास्तुशास्त्रों में इसे भी माना जा सकता है। 1941 ई. में जरिसो के पण्डित अच्युतानन्द झा ने इसका अनुवाद किया, तब भी इसमें कई श्लोकों का अनुवाद शेष था और श्लोकों का संशोधन, सम्पादन पुनः कार्य की सम्भावनाएँ लिए हुए था।

कुछ दिनों पहले चौखम्भा ऑरियण्टालिया के सञ्चालक श्रीअजयजी गुप्त ने मुझसे आग्रह किया कि मैं 'वास्तुरत्नावली' पर नए सिरे से कार्य करूँ तो मैंने देखा कि सच में यह ग्रन्थ पुनः कार्य की सम्भावना को लिए हुए है। मैंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों की तरह ही इसके एक-एक श्लोक के उत्स, स्रोत-उपस्कारक ग्रन्थों का अध्ययन किया और न केवल श्लोक के शुद्धीकरण पर ही ध्यान दिया, बल्कि जिन श्लोकों की संस्कृत टीका नहीं थी, उनकी भी टीका देने का प्रयास किया है। इसमें अब जाकर लगभग समस्त श्लोकों का अर्थ हो गया है। इसमें संगृहीत सारे ही श्लोकों के मूल ग्रन्थों या जिन ग्रंथों में ये श्लोक जीवनाथजी के जीवनकाल से पूर्व के ग्रन्थों में रहे हैं, के श्लोकाङ्क भी दिए गए हैं। कहीं-कहीं परवर्ती वृहद्दैवज्ञरञ्जनादि के सन्दर्भ भी आए हैं। चक्र, चित्रों से विषय को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया है। यद्यपि पण्डित अच्युतानन्दजी का पाठ मेरे लिए सहायक रहा किन्तु अर्थ की पूर्णता और नवीनता इस पाठ की विशेषता सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। 'विशेष' शीर्षक से मैंने इतर या अन्य धारणाएँ भी देने का प्रयास किया है, जो इस विषय को समयोचित, प्रासङ्गिक भी सिद्ध करती चलेंगी। मैं अपने प्रयास में किस सीमा तक सफल हुआ हूँ, यह तो विद्वज्जन ही बता सकेंगे। वास्तुविज्ञान गहन विषय है। इसके कई प्रयोग, शब्दादि के प्रचलन व स्वरूप अन्यान्य प्रदेशों की भाषा के समरूप और भेदगत भी हो सकते हैं।

यह कार्य बहुत समय साध्य था किन्तु प्रभु नन्द-नन्दन श्रीनाथजी की कृपा से यह सब सम्भव हो सका। इसके अनुवाद, सामग्री-संयोजन के कार्य में अग्रज पं. पुष्करराजजी, सहधर्मिणी पुष्पा चौहान, पुत्री आयुष्मति अनुभूति, अनुकृति, अनुज सुहृदयवर अरविन्द चौहान व पुत्र गौरव चौहान ने पर्याप्त सहायता दी है। अर्थ में और सन्दर्भ खोजने में अनुभूति व सावधानी पूर्वक टङ्कण में अनुकृति ने परिश्रम और उत्साह का प्रदर्शन किया, मैं सभी के स्नेहाधीन हूँ।

इसके लिए पाठ सहित जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके प्रकाशकों, सम्पादकों के प्रति अनेकशः आभार। यह शोधित ग्रन्थ स्वरूप लोगों की निगाह से वञ्चित ही रहता यदि चौखम्भा ऑरियण्टालिया, दिल्ली के सञ्चालक श्री अजयजी गुप्त इसके प्रकाशन का दायित्व ग्रहण नहीं करते, उनके प्रति अनेकशः आभार।

24 अगस्त 2008 ई.

विदुषां वशंवदः
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

श्रीकृष्ण 'जुगनू'

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिलान्तर्गत आकोला में 2 अक्टूबर, 1964 ई. को जन्म।

स्वशिक्षित- अधिस्नातक (प्राचीन भारतीय इतिहास, हिन्दी एवं अंग्रेजी)

पी-एच.डी.- मेवाड़ प्रदेश का हीड़ साहित्य (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

अन्य- पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा एवं शिक्षास्नातक, (सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर) एवं श्रव्य-दृश्य मीडिया दक्ष

इतिहास-पुरातत्त्व, शिल्प, कला, स्थापत्य, शिक्षा, धर्म व संस्कृति जैसे विषयों के अध्ययन-अध्यापन, अनुसंधान और लेखन में गहरी रुचि तथा इन्हीं विषयों पर वर्ष 1978 से अद्यावधि छह हजार से अधिक आलेखों का देश के प्रतिष्ठित पत्रों-पत्रिकाओं में सचित्र प्रकाशन। देशी-विदेशी शिल्पियों, कला प्रेमियों, सङ्गीतकारों, चित्रकारों, लब्ध प्रतिष्ठ धर्मगुरुओं, साहित्यकारों, राजनेताओं व समाज सुधारकों के भावात्मक साक्षात्कारों का संग्रह और प्रकाशन। दर्जनों शिलालेखों, सुरह लेखों, ताम्रपत्रों, पट्टों, पाण्डुलिपियों, का अध्ययन, मूलपाठों का प्रकाशन और अनुवाद।

राजस्थान का लोक पहनावा (मानव संसाधन विकास मंत्रालय के लिए शोध सर्वेक्षण), भलाभाई-बुराभाई (राजस्थानी लोककथाएँ), विवाह की बन्दनवाल (मेवाड़ के विवाह गीत), चितचोरचित्तौड़; दर्शनीय उदयपुर व मेवाड़ के मन्दिर, मन्दिर श्रीअम्बामाताजी उदयपुर तथा लोकशक्तिपीठ आसावरामाता, कला की कालकथा, वास्तु एवं शिलाचयन आदि कृतियाँ।

प्रकाशित प्रमुख ग्रन्थ- **राज्याभिषेकपद्धति** (चक्रपाणिमिश्र), **मुहूर्तमाला** (चक्र पाणि मिश्र) **विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद** (चक्र पाणिमिश्र), **ज्योतिषरत्नमाला** (श्रीपतिभट्टाचार्य), **वृक्षायुर्वेद** (विद्यावेरैण्यसुरपाल), **मनुष्यालयचन्द्रिका** (नीलकण्ठमूसत) **वास्तुसारमण्डनम्** (सूत्रधारमण्डन), **आयतत्त्वम्** (सूत्रधारमण्डन), **चित्रलक्षणम्** (नग्नजित्), **राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्** (सूत्रधारमण्डन), **देवतामूर्तिप्रकरणम्-रूपमण्डनम्** (सूत्रधारमण्डन), **वास्तुमण्डनम्** (सूत्रधारमण्डन), **कलानिधि** (सूत्रधारगोविन्द), **वास्तुमञ्जरी** (सूत्रधारनाथा), **प्रासादमण्डनम्** (सूत्रधारमण्डन), **मुहूर्तकल्पद्रुम** (विट्ठलदीक्षित), **मुहूर्तदीपक** (महादेव दैवज्ञ), **शिल्पशास्त्रम्** (बउरीमहाराणा), **वास्तुविद्या** (अज्ञातकर्तृक), **वास्तूद्धारधोरणी** (सूत्रधारगोविन्द), **प्रमाणमञ्जरी** (सूत्रधारमल्ल), **शिल्पशास्त्रे आयुर्वेद** (भूलोकमल्ल सोमेश्वर), **योगगीता** (ब्रह्मानन्द), **कलाविलास** (क्षेमेन्द्र), **विवेक विलास** (मुनि जिनदत्त सूरीश्वर) आदि। प्रस्तुत वास्तु ग्रन्थ **वास्तुरत्नावली** का आलोचनापाठ, भूमिका सहित सम्पादन और पहली बार ससन्दर्भ सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद।

शीघ्रप्रकाश्य- **मानसोल्लास, मानसार, काश्यपशिल्पम्, अपराजितपृच्छा, वास्तुयुक्ति, राजमार्तण्ड, वत्थुसारपयरणम्, समराङ्गणसूत्रधार, ज्ञानप्रकाशदीपार्णव, मुहूर्तसर्वस्व, ज्योतिषवृत्तशतम्, पञ्चसिद्धान्तिका, देवालयचन्द्रिका** आदि।

वास्तुरत्नावली : एक परिचय

वास्तु की प्राचीनतम अवधारणा वेदों में निहित है। ऋग्वेद में वास्तोष्पति की आराधना, उपासन में मन्त्रों का प्रणयन हुआ है। स्वयं वास्तुविद्या को वेद कहा गया है। इसके विषयों को अपार माना गया है। कहीं इसे शिवप्रोक्त, कहीं ब्रह्माप्रोक्त तो कहीं विष्णुप्रोक्त कहा गया है। पुराणों में मत्स्यपुराण गरुडपुराण, स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराण, नारदपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराणादि में यह विषयानुशासन विस्तार से और कई श्लोकों, कई अध्यायों में मिलता है। इसी कारण पुराणिकों की मान्यताओं ने इसके उपदेष्टाओं के नाम-स्वरूप को प्रभावित किया है। वस्तुतः जनोपयोगी विषय होने से पुराणकारों ने इसे महत्व दिया है।

हमारे यहाँ उत्तर में विश्वकर्मा और दक्षिण में मय को इस शास्त्र का मुख्य उपदेष्टा कहा गया है किन्तु मत्स्यपुराण सिद्ध करता है कि पुराण के रचनाकाल तक इसके अठारह उपदेष्टाओं की सूची तैयार हो गई थी। मयमतम्, मानसार आदि में यह सूची और भी दीर्घ होती चली गई है। जनोपयोगी विषय होने से क्षेत्र, काल आदि की आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर अनेक वास्तु ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा। हेमाद्रि विचिन्तित 'जयपृच्छा' जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ का सम्पादन बारम्बार हुआ, 16वीं सदी तक उसमें मस्जिद (रहमानप्रासाद) निर्माण तक के नियम विश्वकर्मा कथित लिखे गए।

देश के लगभग सभी क्षेत्रों में कोई न कोई वास्तु ग्रन्थ अवश्य लिखा या सम्पादित किया गया है। अकेले मेवाड़-राजस्थान में दो दर्जन से अधिक वास्तु ग्रन्थों की रचना होना सिद्ध करता है कि राजाओं ने निर्माण-नियोजन पर सर्वाधिक ध्यान दिया और उनके आश्रित सूत्रधारों ने आवश्यक सिद्धान्तों के पूर्त्यर्थ ग्रन्थों की रचना की। कहीं पूर्वग्रन्थों के श्लोकों को उद्धृत मात्र किया गया तो कहीं पूर्वमतों को नवीन छन्दों में लिखा गया। इसलिए मयमतम् पर कामिकागम, दीप्तागमादि की छाया परिलक्षित होती है, मानसार में मय के श्लोक मिलते हैं। समराङ्गणसूत्रधार में मूलागम, लक्षणसमुच्चय,

शैववास्तु के मत हैं तो अपराजितपृच्छा पर समराङ्गणसूत्रधार, जयपृच्छा, विश्वकर्मीयम्, मूलागम आदि का प्रभाव दिखाई देता है। सूत्रधारमण्डन ने सर्वाधिक वास्तु व शिल्पग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके कुछ ग्रन्थ तो सम्पादन मात्र हैं जबकि 'राजवल्लभवास्तुशास्त्र' के वास्तु विषयों पर अपराजितपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार का स्पष्टतः प्रभाव है। इसी प्रकार वासुदेव दैवज्ञ के अल्पज्ञात 'वास्तुप्रदीप' में विश्वकर्माप्रकाश, माण्डव्य, शार्ङ्गधर, लक्षण समुच्चय के श्लोक मिलते हैं। इसी प्रकार काशीनाथ कृत 'वास्तुचन्द्रिका' सूत्रधार नाथा कृत 'वास्तुमञ्जरी' भी पूर्व ग्रन्थों के आश्रय में ही सम्पादित हुए हैं। कोई सौ वास्तु ग्रन्थों के अध्ययन के बाद मेरा यह विश्वास है कि इन ग्रन्थों में भूमिशुद्धि से लेकर सुखावास की परिकल्पना कहीं ऊर्जाधारित सिद्धान्त तो कहीं वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाश- इन पञ्चतत्त्वाधारित गुरुत्व, गति, प्रकाश, भाव, क्लेद्य और आकर्षणादि प्रभाव को परिलक्षित करते हुए देवप्रासाद, मनुष्यालय, जलाशयादि निर्माणों के नियमों को लिखा गया है।

यह विषय सर्वथा प्रासङ्गिक माना गया है क्योंकि भवन प्रधानतः मानवीय आवश्यकता की वस्तु है, बसने-रहने की इस आवश्यक वस्तु से सम्बन्धित ज्ञान ही वास्तु कहा गया है। इसमें तकनीक आधारित ज्ञान होता है, इसलिए इसे पुरातन काल से ही वास्तुतन्त्र के रूप में भी स्वीकृत किया गया है। वराहमिहिर कृत बृहत्संहितादि ग्रन्थों के विवृत्तिकार उत्पलभट्ट ने भी वास्तुतन्त्र संज्ञा का ही प्रयोग किया है। विश्वकर्मा प्रकाश का प्राचीन नाम वास्तुतन्त्र ही रहा है।

वास्तु की निबन्ध रचनाओं में 'वास्तुरत्नावली' महत्वपूर्ण मानी गई है। दस अध्यायों वाले इस स्वल्पग्रन्थ में वास्तु विषयक नाना कृत्यों, मतों का यथावश्यक शास्त्रीय निर्देश मिल जाता है। इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही इसे वास्तु विषय के अध्येताओं को पढ़ाया जाता है।

ग्रन्थकार और रचनाकाल —

इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीमन्मैथिल पण्डित जीवनाथ के बारे में ग्रन्थान्त में केवल यह सङ्केतभर है कि वह शम्भुनाथ दैवज्ञ का पुत्र है। पण्डित शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार गङ्गागण्डकी के सङ्गम से दो कोस की दूरी पर पटना नगर इनका निवास था। इनके पिता शम्भुनाथ स्वयं विविध विद्या विशारद थे। जीवनाथ ने भास्करीय बीज की टीका की और भावप्रकाश आदि फलग्रन्थ भी बनाए। *(भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 411)*

जैसा कि श्री दीक्षित ने सङ्केत किया है, जीवनाथ ने सम्भवतः भास्कराचार्य के 'बीजगणित' नामक ग्रन्थ पर टीका की होगी किन्तु वह सम्प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी

क्योंकि बनारस आदि स्थित सौरवेधशाला के अधिकारियों को कई प्रयासों के बाद भी वह नहीं मिल पाई। यदि बीजगणित पर भी टीका हो तो वह भी प्रचलित नहीं है। श्री दीक्षित को जीवनाथ की वास्तुरत्नावली भी सम्भवतः नहीं मिल पाई थी क्योंकि इसका उल्लेख नहीं हो सका।

जीवनाथ के अनुज नीलाम्बर शर्मा भी विद्वान थे और अलवर राज्य के राजा शिव के प्रधान ज्योतिषी थे। काशी में उनका शकाब्द 1805 में निधन हुआ। उन्होंने गोलप्रकाश नामक पाँच अध्यायों वाले ग्रन्थ की रचना की जिसे बापूदेव शास्त्री ने शकाब्द 1793 (1871 ई.) में प्रकाशित करवाया था। इसमें उन्होंने अपना वंश वर्णन इस प्रकार किया है— गङ्गागण्डकिसङ्गमे हरिहरक्षेत्रं क्षितौ विश्रुतं तस्मात् क्रोशयुगान्तरे सुरनदीतीरे परे दक्षिणे। ख्याते पाटलिपुत्र सञ्ज्ञनगरे विद्वज्जनैर्मण्डिते ज्योतिर्दर्शन सर्वदर्शनयशाः मान्यो वेदान्यो विदाम्॥ श्रीशम्भुनाथः सुकृतैकगाथः कृपैकपाथः पतिरीशनाथः। अभूद् द्विजेन्द्रः सुचकोरचन्द्रः क्षितावुपेन्द्रः स्मरणे वितन्द्रः॥ तदङ्गजः सर्वविदा समानः त्रिस्कन्ध-पारङ्गमताऽभिधानः। चकास्ति शिष्यादिविराजमानः श्रीजीवनाथः कविलभ्यमानः॥ नीलाम्बराख्योऽकृत तत्कनिष्ठस्तल्लब्धबोधः परमैकनिष्ठः। गोलप्रकाशाभिधमाशुबोधं निरस्तसन्देहमनोऽनुरोधम्॥ *(गोलप्रकाश पुष्पिका)*

इस प्रकार यह पूरा परिवार विद्वानों, ज्योतिर्विदों में बहुत सम्मान्य था। जीवनाथ के तीन ग्रन्थ ज्ञात होते हैं- 1. भास्करीय बीज टीका, 2. भावप्रकाश और 3. वास्तुरत्नावली। ग्रन्थ के अन्त में रचनाकार ने जो पुष्पिका दी है, उसके अनुसार इसकी रचना मिथिला में शकाब्द 1666 में चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि, शुक्रवार को सम्पन्न हुई। तद्नुसार सन् 1744 ई. में इसकी रचना की गई। इसके लिए रचनाकार ने विविध वास्तुग्रन्थों का उपयोग किया, स्वयं रचनाकार इनका उल्लेख किया है—

शाके तर्क,रसा,ङ्ग,चन्द्र,मिलिते पक्षे वलक्षेतरे
चैत्रे मासि भृगोर्दिने स्मरतिथौवेषा, गता पूर्णताम्।
नानाचार्यमतं विलोक्यं रचिता श्रीवास्तुरत्नावली
श्रीमन्मैथिल जीवनाथकृतिना दैवज्ञमोदप्रदा॥

(वास्तुरत्नावली 10 [illegible])

पाण्डुलिपियाँ और प्रकाशन —

वास्तुरत्नावली की कई मातृकाएँ मिलती हैं, जो इसकी लोकप्रियता [illegible] करती है। सर्वप्रथम, पाण्डुलिपियों के अध्येता और सूचीकार बर्नेल ने [illegible] इन्डैक्स टू द संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स इन द पैलेस लाइब्रेरी ऑफ तञ्जौर में [illegible] 154 पर उल्लेख किया है।

इसी आधार पर प्रो. प्रसन्नकुमार आचार्य ने 'एन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर' में इस ग्रन्थ का विवरण दिया है—

VASTU RATNAVALI [Compiled by Pandit Jivanatha Jyotishi] This compilation contains extracts from the *bhavishya Puran, Jyotihsagara, Griha karika, Vastu-pradip, Bhujabal bhima, Vasishtha samhita, shri bhojraja, Rajavallbha, Vastu ratna pradip, Siddant shiromani,* of bhaskaracharya, *Mandana sutradhara, Brihatsamhita* of Varahamihira, and *Jyotish Ratnamala. {An encyclopaedia of Hindu architecture p. 645}*

इस प्रकार प्रो. आचार्य ने इस ग्रन्थ के परिचय में इसमें उद्धृत विभिन्न सम्बन्धी ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है और रचनाकार का परिचय दिया है किन्तु इसमें उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अन्य कई ग्रन्थों के श्लोक उद्धृत किए गए हैं।

यह ग्रन्थ 1883 में सर्वप्रथम लीथो मुद्रण विधि से बनारस से प्रकाशित हुआ। काशी विश्वनाथपुरी में ढुण्ढीराज गणेश के पास स्थित पं. दाऊजी अग्निहोत्री के सिद्ध विनायक यन्त्र में इसका मुद्रण हुआ था। उस समय बहुत कम ही इसकी प्रतियाँ निकलीं थीं किन्तु तत्कालीन काशी में पढ़ने वाले पण्डितों ने इसकी कई प्रतिलिपियाँ तैयार की क्योंकि लम्बे समय तक यह उपलब्ध नहीं हो सका। हालांकि तब तक सीसे के अक्षरों वाले मुद्रणालयों का प्रचलन हो चुका था किन्तु इस दिशा में गम्भीर प्रयास नहीं हो सका। प्रथम प्रकाशन में कई त्रुटियाँ भी रह गई थीं, जो स्वाभाविक भी थीं।

बाद में, संवत् 1998 में जरिसो निवासी पण्डित प्रवर अच्युतानन्दजी झा ने चौखम्बा संस्कृत सीरिज के सञ्चालक श्रीजयकृष्णदास कृष्णदास गुप्त महोदय के आग्रह पर इसका पुनर्सम्पादन और हिन्दी अनुवाद किया जिसका प्रकाशन उसी वर्ष, तद्नुसार 1941 ई. में हुआ तब भी इसमें अधिकांश श्लोक अनूदित होने से शेष थे। पण्डितजी ने अपनी हिन्दी टीका में बृहत्संहिता की भट्टोत्पलीय विवृत्ति, मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधाराटीका व प्रमिताक्षराटीका आदि से कई श्लोक व टीका पुष्ट्यर्थ लिए पूर्वसूरियों के मत-श्लोकों को ज्यों का त्यों 'सुबोधिनी' नाम से उद्धृत किया था।

इसका परिणाम यह निकला कि लघुकाय ग्रन्थ दीर्घकाय हो गया और हिन्दी होने के बावजूद भावानुवाद भर ही रहा। पीयूषधारादि टीकाओं के लम्बे-लम्बे मतों को उद्धृत तो कर लिया लेकिन वे व्याख्यायित नहीं हो पाए। इस बीच, प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रेरणा से बृहद्वास्तुमाला, वास्तुसंग्रह, वास्तुप्रयोग, वास्तुमुक्तावली, वास्तुप्रबोध, बृहद्वास्तुमाला प्रयोग, वास्तुकल्पलता, वास्तुमर्म जैसे ग्रन्थ भी कतिपय विद्वानों ने सम्पादित किए किन्तु श्लोकों की टीकाओं के नाम पर प्रयास नहीं हुआ। टीकाएँ न संस्कृत में हो पाई न ही हिन्दी में हुई। सम्पूर्ण ग्रन्थ पर कार्य करने का गम्भीर प्रयास ही नहीं हुआ। फिर, कुछ समय से तथाकथित वास्तुवेत्ताओं ने इन श्लोकों को अपने मनगढ़न्त मतों के साथ भी चलताऊ पुस्तकों में ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर अपने को विषयवेत्ता सिद्ध करने का प्रयास भी किया। इसी दौर में वास्तु के विद्यार्थियों के सामने कई उहाएँ विद्यमान रहीं।

प्रस्तुत पाठ —

वास्तुरत्नावली के प्रस्तुत पाठ में उपर्युक्त कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। पण्डित जीवनाथजी के एक-एक श्लोक के उत्स का पता लगाकर उनके उपशीर्षक के साथ ग्रन्थ के नाम सहित श्लोक का क्रम भी अङ्कित करने का प्रयास हुआ है ताकि विद्यार्थियों के साथ-साथ शोधार्थियों, शोधनिर्देशकों के लिए भी यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हो सके। फिर, एक-एक श्लोक का वास्तविक पाठ भी रखने का प्रयास हुआ, जहाँ सर्वाधिक पाठान्तर मिला, वहाँ पाद टिप्पणि के रूप में उसे दिया गया है।

सच मानिये कि जितना समय इन श्लोकों के स्रोतों, उपस्कारक ग्रन्थों को खोजने में लगा, उससे कम समय में तो इससे भी बड़ा एक नया निबन्ध ग्रन्थ तैयार हो सकता था किन्तु सन्तोष है— शोधिता भवतु दुःखहारिणी सा तरिः सुजनकार्यकारिणी। प्रसन्नता यह भी रही कि इसमें उद्धृत कई ग्रन्थों के अध्यायों और श्लोकाङ्कों का पहली बार प्रयोग हुआ है। वास्तुप्रदीप नाम से जिस ग्रन्थ के श्लोक बताए गए हैं, वे विश्वकर्माप्रकाश में प्राप्त हुए हालांकि पाठ भेद भी कम नहीं था। कई ऐसे श्लोकों के उत्स भी खोजे गए हैं जिन्हें ग्रन्थान्तरे कहकर उद्धृत किया जाता रहा है। हालांकि जिन ग्रन्थों का मूलपाठ नहीं मिला, उनके श्लोकों को प्रायः प्रस्तुत ग्रन्थ से प्राचीन पाठ से सङ्केतित करने का प्रयास हुआ है। यह संयोग ही रहा कि गत एक दशक में मैंने वास्तु और ज्योतिष के इन्हीं अधिकांश ग्रन्थों का अध्ययन और सम्पादन-अनुवाद किया, ऐसे में मेरा कार्य इसके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

इस क्रम में ज्योतिर्निबन्ध, वशिष्ठसंहिता, ज्योतिषरत्नमाला, राजमार्तण्ड, ज्योतिषवृत्तशत, दैवज्ञवल्लभ, रत्नोद्योत, ज्योतिष्प्रकाश, मयमतम्, मानसार, नाट्यशास्त्र, बृहद्योगयात्रा, टोडरानन्दोक्त वास्तुसौख्य (जिसे अब तक के विद्वानों ने टोडरमल्लकृत ही कहा है, पहली बार इस ग्रन्थ में उसे पीयूषधाराटीकाकार गोविन्ददैवज्ञ के उदाहरणों से पण्डित अनन्तदैवज्ञ के पुत्र नीलकण्ठदैवज्ञ कृत सिद्ध करने का प्रयास भी हुआ है), समराङ्गणसूत्रधार, अपराजि..पृच्छा, हेमाद्रि कृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, सूत्रधार मण्डन कृत राजवल्लभवास्तुशास्त्र, बृहद्वास्तुपद्धति, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मत्स्यपुराण, वास्तु उद्धारधोरणी, कालप्रकाशिका जैसे दर्जनों ग्रन्थ सहायक सिद्ध हुए हैं। यह संयोग ही है कि इतने ग्रन्थ' के मतों के जीवनाथ जानकार थे और इनमें से अधिकांश ग्रन्थ सम्भवतः उनके संग्रह में

विद्यमान थे तथापि यह निश्चित है कि ज्योतिर्निबन्ध, राजवल्लभवास्तुशास्त्र, मुहूर्तमार्तण्ड की मार्तण्डवल्लभाटीका, मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा और प्रमिताक्षराटीका ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया और कई श्लोक उसी क्रम से उन्होंने उद्धृत भी किए।

मेरा विश्वास है कि ग्रन्थ का यह सम्पादित सटीक संस्कृत विद्वानों, विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोग सिद्ध होगा। इसमें परिशिष्ट के रूप में वास्तुदोष निवारणोपाय और शिलान्यासादि विधान को दिया गया है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ के सम्पादन में उपयोगी ग्रन्थों की प्रामाणिक सूची विद्यार्थियों के लिए हितावह मानते हुए दी गई है ताकि भविष्य में यदि वे इस विषय में शोधादि के लिए इच्छुक हों, तो उनका भी अवलोकन कर सकें।

श्री गणेशायनमः

श्रीजीवनाथदैवज्ञविरचिता

॥ वास्तुरत्नावली ॥

अथ भूपरिग्रहाध्यायः प्रथमः ॥ 1 ॥

अथ वास्तुदेव विश्वकर्माध्यानमाह राजवल्लभे (1, 4) —

कम्बासूत्राम्बुपात्रं वहति करतले पुस्तकं ज्ञानसूत्रम्
हंसारूढस्त्रिनेत्रः सुरमुकुटशिराः सर्वतो वृद्धकायः।
त्रैलोक्यं येन सृष्टं सकलसुरगृहं राजहर्म्यादिहर्म्यं
देवोऽसौ सूत्रधारो जगदखिलहितः पातु वो विश्वकर्मा॥

(सूत्रधारमण्डन ने कहा है कि) जिनके एक हाथ में कम्बी या गज, दूसरे हाथ में सूत्र, तीसरे हाथ में कमण्डलु और चौथे हाथ में पुस्तक हैं, जिनके सिर पर शुभ मुकुट, जो त्रिनेत्रधारी और हंस पर आरूढ़ हैं, ऐसे भगवान् विश्वकर्मा ने तीनों ही लोक की रचना की है और समस्त जन साधारण के लिए गृहों का निर्माण किया है, वे सदैव हमारे रक्षक सिद्ध हों।

तत्र ग्रन्थकर्तृमङ्गलाचरणम् —

अब्जा हृत्पद्ममध्ये विलसति लपने शारदा सारदात्री
मुक्ताकुन्देन्दुकान्तिर्नयनकुवलये पुष्पवन्तौ धरित्री।
अद्धा यस्याग्रदन्ते तिलकमिव पदे सिद्धसङ्घा लुठन्ति
प्रह्लादप्राणदाता स दिशतु जगताम्मङ्गलञ्चक्रपाणिः॥ 1॥

अब्जेति। यस्य हृत्पद्ममध्ये हृन्मानसे [illegible] अब्जा भगवती महालक्ष्मीः विलसति। महालक्ष्मी स्वरूपमाह मयमते— लक्ष्मीः पद्मासनासीना द्विभुजा काञ्चनप्रभा॥ हेमरत्नोज्ज्वलं नक्रकुण्डलं शङ्ख कुण्डलम्। [illegible] सुरम्याङ्गा कुञ्चितभ्रूसविभ्रमा॥ आमण्डलमुखी कर्णपूरपदेक्षणान्विता। [illegible]

ग्रामनाम	प	प	प	प	प	प	प	प
	5	6	7	8	1	2	3	4[1]
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	8	2	4	6	8	2	4	6
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ
ग्रामनाम	य	य	य	य	य	य	य	य
	7	8	1	2	3	4	5	6
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	1	3	5	7	1	3	5	7
फल	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ
ग्रामनाम	श	श	श	श	श	श	श	श
	1	2	3	4	5	6	7	8
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	2	4	6	8	2	4	6	8
फल	अशुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ

अथ द्वारनिवेशं वर्णदिग्भेदफलं ज्योतिस्सारे —

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम्।
शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे मतम्॥ 16 ॥

व्याख्या— विप्रादिराशिमतां पुंसा क्रमेण पूर्वदिशतः प्राच्यादिदिक्- चतुष्टये द्वारं प्रशस्तम्। यथा ब्राह्मणराशयः कर्कवृश्चिकमीनास्तेषां पूर्वादिशि, वैश्यराशयो वृषकन्यामकरास्तेषां याम्येदिशि, शूद्रराशयो मिथुनतुलाकुम्भास्तेषां परामदिशि, नृपराशयो मेषसिंहधनूंषि तेषामुत्तरदिशि द्वारनिवेश शुभम् इत्यर्थः।

भाषा— ब्राह्मणादि को अपनी राशियों के अनुसार पूर्वादि इष्ट दिशाओं में भवन का द्वार रखना शुभ है। विप्र राशि वालों (कर्क, वृश्चिक एवं मीन) को पूर्व दिशा में द्वार रखना शुभ है। वैश्य राशि वालों (वृष, कन्या एवं मकर) को दक्षिण दिशा में, शूद्र राशि वालों (मिथुन, तुला एवं मकर) को पश्चिम दिशा और नृप अथवा क्षत्रिय राशि वालों (मेष, सिंह एवं धनु) को अपने भवन का द्वार उत्तर दिशा में रखना प्रशस्त है।

स्पष्टार्थ चक्रम् —

राशि	विप्र	वैश्य	शूद्र	क्षत्रिय
द्वार दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर

अथ राशीनां वर्णानाह —

मीनालिकर्कटा विप्राः क्षत्री मेषो धनुर्हरिः।
वृषकन्यामृगा वैश्या शेषा वै शूद्रराशयः॥ 17 ॥

मीनालिकर्कटा इति। मीनालिकर्कटाः मीनवृश्चिककर्कराशयः, विप्राः ब्राह्मणाः स्युः। मेषः प्रसिद्धः, धनुः धनूराशिः प्रसिद्धः हरिः सिंहश्च, क्षत्री राजन्यः स्यात्। वृषकन्यामृगाः वृषकन्यामकराः वैश्याः वैश्यराशयः स्युः। शेषाः मिथुनतुलाकुम्भाः वै निश्चयेन शूद्रराशयः स्युः। त्रय त्रय राश्यामेकैक वर्णस्तु इत्यर्थः।

भाषा— (ज्योतिष के मतानुसार) मीन, अलि या वृश्चिक एवं कर्क राशि को विप्रवर्ण का माना गया है। मेष, धनु एवं सिंह क्षत्रिय वर्ग, वृष, कन्या एवं मकर वैश्य एवं शेष अर्थात् मिथुन, तुला एवं कुम्भ राशि को शूद्र संज्ञक कहा गया है। (इस प्रकार तीन तीन राशियाँ एक-एक वर्ण की कही गई है)।

अथ राशिपरत्वेन ग्रामनिवासनिषिद्धस्थानान्याह मुहूर्तचिन्तामणौ (12, 2) —

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये ग्रामस्य
पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च।
कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्वर्गाः
स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः॥ 18 ॥

प्रमिताक्षराटीकायां— गोसिंहेति। वस्तुमिष्टस्य ग्रामस्य वस्त्रविभागवन्नवधा विभागं कृत्वा मध्ये विभागे गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेत्। वृषसिंहमकरमिथुनराशिमतः पुरुषा न वसेयुः। अथ पूर्वककुभः पूर्वदिशातोऽष्टदिक्षु अलिर्वृश्चिकः तदादिराशिमतः पुरुषा न वसेयुः। यथा पूर्वस्यां वृश्चिकः आग्नेयां झषो मीनः। दक्षिणस्यां कन्या। नैर्ऋत्यां कर्कः। पश्चिमायां धनुः। वायव्यां तुला। उत्तरस्यां मेषः। ईशान्यां कुम्भः न वसेदित्यर्थः। यथा अवर्गः पूर्वस्याम्। कवर्ग आग्नेय्याम्। चवर्गो दक्षिणस्याम्। टवर्गो नैर्ऋत्याम्। तवर्गः पश्चिमायाम्। पवर्गो वायव्याम्। यवर्ग उत्तरस्याम्। शवर्ग ईशान्याम् बली इत्यर्थः। कीदृशा वर्गाः स्वपञ्चमपराः स्वस्मात्पञ्चमः परः शत्रुर्येषां ते। यस्य वर्गः पूर्वस्यां बली तेन पश्चिमायां द्वारं निवासो न विधेयः। एवं कवर्गादिमद्भिरपि वायव्यादौ द्वारं निवासो न विधेयः।'

भाषा— अब राशि के अनुसार गाँव में वासकरण और निषेध पर विचार किया जा रहा है। जिस गाँव या नगर में बसना हो, उसके नौ भागों की कल्पना करें। इसमें वृष, सिंह, मकर, मिथुन राशि वाले व्यक्ति को ग्राम के मध्य में निवास नहीं करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में क्रम से 8, 12, 6, 4, 9, 7, 1, 11 राशि वालों को अर्थात् वृश्चिक

---

1. यदुक्तं मुहूर्तमार्तण्डे— नामर्क्षाद्द्विगुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभोऽन्योऽन्यथा कौप्यंऽङ्कं नाम्नां मध्येन वसन्त्यथेन्द्रककुभो वर्गाः स्युरोजस्विनः॥ (6, 1)

राशि वालों को पूर्व में, मीन राशि वालों को अग्नि कोण, कन्या राशि वालों को दक्षिण में, कर्क राशि वालों को नैर्ऋत्य कोण में, धनु राशि वालों को पश्चिम में, तुला राशि वालों को वायव्य कोण में, मेष राशि वालों को उत्तर में और कुम्भ राशि वाले व्यक्तियों को ग्राम के ईशान कोण में निवास करना अशुभ होता है। अकरादि वर्ग पूर्वादि दिशाओं में बलशाली माने जाते हैं और अपने से पाँचवाँ वर्ग शत्रुभाव वाला होता है।

स्फुटार्थ चक्रम्—

दिशा/कोण	निषिद्ध राशि	वर्ग
मध्य	2, 5, 10, 3	वृष, मिथुन, सिंह, मकर
पूर्व	8	अ वर्ग
आग्नेय	12	क वर्ग
दक्षिण	6	च वर्ग
नैर्ऋत्य	4	ट वर्ग
पश्चिम	9	त वर्ग
वायव्य	7	प वर्ग
उत्तर	1	य वर्ग
ईशान	11	श वर्ग

तथोक्तं भूपालवल्लभे वास्तुप्रकरणे —

वर्गाः खगेशमार्जारसिंहश्वसर्पमूषकाः।
इभावी पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः॥
तस्मात् स्ववैरिवर्गस्य दिशि वासो न शोभनः॥ 19॥

व्याख्या— एवं स्वामिग्रामवर्गयोरपि मित्रत्वमरित्वं समत्वं च विलोक्य वासः कर्तव्यः।

वर्गा इति। पूर्वतः पूर्वदिशः सकाशात् खगेशमार्जारसिंहश्वसर्पमूषका इमावी इत्यष्टौ वर्गाः भवन्ति। अवर्गोऽवर्गः, कु चु टु तु पु इति पञ्च वर्गाः, एको यवर्गोऽन्यः शवर्गः। तत्र अवर्गस्य खगेशः गरुड, कवर्गस्य मार्जारः, चवर्गस्य सिंहः टवर्गस्य श्वा, तवर्गस्य सर्पः पवर्गस्य मूषकः, यवर्गस्य इभो हस्ती, शवर्गस्याविर्मेषः (अवयः शैलमेषार्का इत्यमरः) इत्यष्टौ वर्गेशाः पूर्वतः पूर्वादिदिशः सकाशादीशा भवन्ति, स्ववर्गात् निजवर्गात्पञ्चमौ वर्गो रिपुः शत्रुर्भवति। तद्यथा- गरुडसर्पयोः, मार्जारमूषकयोः, सिंहगजयोः, श्वमेषयोः परस्परं महावैरमित्यर्थः, तस्मात्कारणात् स्ववैरिवर्गस्य दिशि वासो न शोभनः न शुभप्रदः। तथा च

राजवल्लभे— गोव्याघ्रं गजसिंहमश्वमहिषं श्वैणं च बभ्रूरगं वैरं वानर-मेषयोश्च सुमहत्तद्वद्बिडालोन्दुरम्। लोकानाम् व्यवहारतोऽन्यदपि च ज्ञात्वा प्रयत्नादिदं दम्पत्योर्नृपभृत्ययोः रिपुः सदा वर्ज्यं शुभस्यार्थिभिः॥ *(3, 19)*

भाषा— भूपालवल्लभ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 173, 3 पर उद्धृत) में कहा गया है कि अ इत्यादि आठों ही वर्गों के स्वामी क्रमशः गरुड़, बिलाव, सिंह, श्वान, सप्र, मूषक, गज और और मेष माने गए हैं। ये पूर्वादि दिशाओं के स्वामी भी कहे गए हैं। अपने-अपने वर्ग से प्रत्येक पाँचवाँ स्थानक वर्ग शत्रुभाव लिए होता है, ऐसे में शत्रु वर्ग की दिशा में निवास करना प्रशस्त नहीं होता। जैसे कि सर्प का शत्रु गरुड, मूषक का बिलाव, हाथी का सिंह और मेष का शत्रु श्वान होता है।

विशेष— सूत्रधार मण्डन का मत है कि गौ तथा व्याघ्र में, गज व सिंह में, घोड़ा और महिष में, कुत्ता व हरिण में, नेवला व सर्प में, बन्दर व मेष में तथा बिल्ली और मूषक में परस्पर शत्रुता होती है। इस योनि वैर को लोक के व्यवहार में देखते हुए स्त्री और पुरुष में, नृप और दास में तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध (की तरह ही ग्राम-निवासी) में अवश्य त्याग देना चाहिए।

नामाक्षरानुसार स्पष्टार्थचक्र

क्रम	नामाक्षर					वर्ग	शत्रु
1.	अ	इ	उ	ए	-	गरुडवर्ग	त
2.	क	ख	ग	घ	ङ	बिडालवर्ग	प
3.	च	छ	ज	झ	ञ	सिंहवर्ग	य
4.	ट	ठ	ड	ढ	ण	श्वानवर्ग	श
5.	त	थ	द	ध	न	सर्पवर्ग	अ
6.	प	फ	ब	भ	म	मूषकवर्ग	क
7.	य	र	ल	व	-	मृग/गज वर्ग	च
8.	श	ष	स	ह	-	मेष/शशकवर्ग	ट

तथा च ज्योतिस्सारे —

केऽप्याहुरथ वर्गाणां स्वस्थाने शुभदं गृहम्।
मित्रे समेऽपि कर्तव्यं न कर्तव्यमरेः पदे॥ 20॥

केऽप्याहुरिति। वर्गाणाम् अवर्गादिवर्गाणां स्थस्थाने शुभदं गृहमिति केप्याचार्या आहुः। अत्रैतदुक्तं भवति, यस्मिन् वर्गे वासकर्तुर्नामाद्यक्षरं स्यात्तस्मिन्नेव यदि ग्रामनामाद्यक्षरं

भवेत्तदा तत्र ग्रामे वासकर्तुर्भवनं शुभदं भवतीत्यर्थः। मित्रे समेऽपि गृहं कर्तव्यं नामवर्गस्य ग्रामवर्गौ मिश्रं समौवा यदि स्यात्तदापि तत्र गृहं विधेयम्। परस्त्ररेः शत्रोः पदे स्थाने न गृहं कर्तव्यम्।

भाषा— सामान्यतया यह नियम है कि जिस वर्ग में बसने वाले की राशि का पहला अक्षर और गाँव या नगर का भी पहला अक्षर पड़ता हो तो वहाँ निवास, रोजगार करना शुभ है। यदि नाम के वर्ग के स्वामी का ग्राम के वर्ग का स्वामी मित्र हो या सम भावी हो तो भी वहाँ रहना शुभप्रद है और इनमें परस्पर शत्रुता हो तो वहाँ रहने पर हानि ही उठानी पड़ेगी, अतः वहाँ आवास नहीं करें।

विशेष : राशि के अनुसार मित्र, शत्रु एवं सम प्रकृति का विभाजन जातकादि ग्रन्थों में मिलता है। नैसर्गिक राशि की उक्त मान्यता टीकाकार गणेशदैवज्ञ ने भी दी है— चन्द्रेज्यक्षितिजाः रवीन्दुतनयौ गुर्विन्दुसूर्याः क्रमात् शुक्रार्कौ रविचन्द्रभूमितनयाः ज्ञार्कौ सितज्ञौ मताः। अर्कादेः सुहृदः समाः अथ बुधः सर्वे हि शुक्रार्कजौ भौमाचार्ययमायमः कुजगुरु पूज्याः परे वैरिणः॥ *(जातकालङ्कार 1, 10)*

स्पष्टार्थ चक्रम्

राशि	ग्रह	मित्रभाव	शत्रुभाव	समभाव
सिंह	सूर्य	चन्द्र गुरु मङ्गल	शुक्र शनि	बुध
कर्क	चन्द्र	सूर्य बुध	-	गुरु शुक्र मं. शनि
मेष, वृश्चिक	मङ्गल	सूर्य चन्द्र गुरु	बुध	शुक्र शनि
मिथुन, कन्या	बुध	सूर्य शुक्र	चन्द्र	मङ्गल गुरु शनि
धन, मीन	गुरु	सूर्य चन्द्र मङ्गल	बुध शुक्र	शनि
वृषभ, तुला	शुक्र	बुध शनि	सूर्य मङ्गल	चन्द्र गुरु
मकर, कुम्भ	शनि	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र मङ्गल	गुरु

इत्यमनन्तर वर्णपरत्वेन भुवो वर्णगन्धविचारो वशिष्ठसंहितायाम् —

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम्।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णाऽन्येषां विमिश्रिता॥ 21॥[1]

श्वेतेति। द्विजेन्द्राणां द्विजानां मध्ये इन्द्राः श्रेष्ठा द्विजेन्द्रास्तेषां द्विजेन्द्राणां, श्वेता शुक्ला शुभ्रा इत्यर्थः, भूमिः शस्ता शुभदा भवति, महीभुजां क्षत्रियाणा रक्ता रक्तवर्णा, विशां वैश्यानां पीता पिङ्गलवर्णा, शूद्राणां कृष्णा कृष्णवर्णा भूमिः शस्ता। अन्येषा

1. 'श्वेतस्थानं द्विजातीनामीपद्रक्तं महीभुजाम्॥ विशां पीतं चतुर्थानां कृष्णवर्णं शुभप्रदम्।' इति वशिष्ठसंहितायां मुद्रितपाठः। (39, 2-3)

वर्णसङ्करादीनां विमिश्रिता अनेकवर्णविमिश्रिता भूमिः शस्ता। चतुर्विधभूमिप्रकारमाह— ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा भूमिश्चतुर्विधा। शुक्ला रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णैरिति क्रमात्॥ *(शिल्पशास्त्र 1, 5)* तथा च महाभारते वर्णानुसारेण ग्राह्यवर्णमाह— ब्राह्मणां सितोवर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः। वैश्यानां पातको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥ *(महा. शान्तिपर्व 288, 5)*

भाषा— भूमि का चयन किस प्रकार करें, इस सम्बन्ध में वशिष्ठ का मत है कि ब्राह्मणों को श्वेत वर्ण वाली भूमि और क्षत्रियों को रक्तवर्ण वाली भूमि को वास्तु के लिए ग्रहण करना चाहिए। वैश्यों को पीत वर्ण वाली और शूद्रों को कृष्ण वर्ण की भूमि तथा अन्य वर्गों को मिली-जुली भूमि ग्रहण करना उचित है।

अथ रसानाह नारदः —

मधुरः कटुकस्तिक्तः कषायश्च रसाः क्रमात्।[1]
विप्र-क्षत्रिय-वैश्यानां शूद्रस्य च शुभप्रदाः॥ 22॥

मधुर इति। यत्र वासं कर्तुमभिलाषा भवेत्तत्र मृत्तिकायाः मधुरः, कटुकाः तिक्तः, कषायश्चेति चत्वारो रसाः क्रमात् विप्रक्षत्रियवैश्यानां शूद्रस्य च शुभप्रदा भवन्ति। तद्यथा- विप्रस्य मधुररसः, क्षत्रियस्य कटुरसः, वैश्यस्य तिक्तरसः, शूद्रस्य च कषायरसः शुभप्रद इति। तथा च शिल्पशास्त्रे— कषाया ब्राह्मणा भूमिरम्ला च क्षत्रिया तथा। वैश्या ख्याता तथा तिक्ता मधुरा शूद्रजातिजा॥ *(1, 7)*

भाषा— इसी प्रकार नारद के मत से स्वादानुसार भूमि की परीक्षा कही जा रही है। भूमि मधुर, कटुक, तिक्त, कषाय स्वाद वाली होती है जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए शुभप्रद होती है। (इसलिए प्रत्येक वर्ण को अपने लिए निर्दिष्ट स्वादानुसार ही भूमि का उपयोग वास्तु निर्माणार्थ करना उचित होता है)।

अथ गन्धानाह गृहकारिकायाम् —

घृतासृगन्नमद्यानां गन्धाश्च क्रमतः शुभाः।
विप्र-क्षत्रिय-विट्-शूद्रजातीनां वास्तुभूमिषु॥ 23॥

घृतासृगन्नेति। विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातीनां ब्राह्मणराजन्यवैश्यवृषलानां, क्रमतः क्रमात्, घृतासृगन्नमद्यानां गन्धाः शुभा भवन्ति। तथा च शिल्पशास्त्रे— आज्यगन्धा ब्रह्मभूमी रक्तगन्धा च क्षत्रिया। क्षारगन्धा भवेत् वैश्या शूद्रा च पुरीषगन्धजा॥ *(1, 6)*

भाषा— गृहकारिका के मतानुसार भूमि से उठने वाली गन्ध के आधार पर वर्ण

1. 'मधुरं कटुकं त्वम्लं तिक्तं तत्क्रमशो रसम्।' इति वशिष्ठसंहितायां। (39, 4) तुलनीय— ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 165, श्लोक 5 एवं नारदसंहिता (31, 3)

विभाजन किया गया है और कहा है कि घृत जैसी गन्ध वाली, रक्तगन्धा, अन्नगन्धा और मद्यगन्धा— ये चार प्रकार की गन्ध युक्त भूमि हो तो क्रमशः विप्र, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण वालों को ग्रहण कर लेनी चाहिए।

विशेष— घी के जैसी गन्ध वाली भूमि को ब्रह्मभूमि कहा गया है। रक्त के जैसी गन्ध वाली भूमि क्षत्रिया, क्षार जैसी गन्ध वाली वैश्य तथा मिट्टी-मल जैसी गन्ध देने वाली भूमि शूद्रा होती है। इसी प्रकार का मत शिल्पप्रकाशकार का है— मधुरगन्धयुक्ता सा भूसुरा भूमिरेव हि। आरक्तवर्ण भूमिश्च सद्यो रक्तसमप्रभा॥ अम्लगन्धसमायुक्ता क्षत्रिया भूमिरुच्यते। वालुकायुक्तभूमिश्च पीतवर्णा च पङ्किला॥ कुत्र शुष्का क्वचित् तीक्ष्णा क्षारवद्गन्ध अंशुका। कथिता वैश्यभूमिः सा शिल्पशास्त्रानुमोदिता॥ पूतिगन्धा च सा भूमिः शूद्रभूमिः सा उच्यते। अतिपङ्किला या भूमिः तमसा वर्णसन्निभा॥ *(1, 14-17)*

अथ वर्णपरत्वेन भूमेः प्लवत्वफलान्याह भृगुः —

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव।
विप्रः सर्वत्र वसेदुक्तस्थानं त्रयाणां हि॥ 24॥[1]

उदगादीति। विप्रादीनां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां, प्रदक्षिणेनैव सृष्टिक्रमेणैव, उदगादिप्लवस्थानमिष्टं शस्तं भवति। तद्यथा— उदक्प्लवं ब्राह्मणस्य, पूर्वप्लवं क्षत्रियस्य, दक्षिणप्लवं वैश्यस्य, पश्चिमप्लवं शूद्रस्य शस्तं स्थानं भवति। विप्रो ब्राह्मणः सर्वत्र सर्वदिक्प्लवभूमौ वसेत्, ब्राह्मणानां कृते न कुत्रापि दोष इत्यर्थः। त्रयाणां शेषाणां क्षत्रिय-वैश्यशूद्राणामुक्तस्थानं कथितस्थानमेव हि निश्चयेन इष्टम्। अग्र यो ब्राह्मणः अखिले सर्वप्लवे गृहं विरचयेत्। तथा च नारद— अत्यन्तं वृद्धिदं नृणामीशानप्रागुदक्प्लवम्॥ अन्य दिक्षुप्लवं तेषां शश्वदत्यन्त हानिदम्। *(नारदसंहिता 31, 3-4)*

भाषा— प्लव या ढलान वाली भूमि का वर्णानुसार विभाजन भृगु द्वारा किया गया है जिसके अनुसार उत्तर की ओर प्लव वाली भूमि विप्रों के लिए शुभ होती है। इसी प्रकार पूर्व की ओर प्लव वाली क्षत्रियों, दक्षिण की ओर प्लव वाली वैश्यों और पश्चिम की ओर प्लव वाली भूमि शूद्रों के लिए शुभ है, वहीं पर उन्हें घर बनाना चाहिए। प्रकारान्तर से विप्र चारों ही ओर प्लव वाली भूमि पर आवास बना सकता है, शेष वर्णों को उक्त निर्देशानुसार ही भूमि के प्लव पर विचार कर उसे ग्रहण करना चाहिए।

अथ प्रकारान्तरेणाष्टदिक्प्लवत्वफलमुक्तं कारिकायाम् —

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च॥
विदधात्यचिरेणैव पूर्वादिप्लवता मही॥ 25॥

---

1. 'उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव। विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम्॥' (मुहूर्तमार्तण्ड मार्तण्डवल्लभटीकायां 6, 3) इति पाठः।

श्रियमिति। मही पृथ्वी क्रमेण पूर्वादिप्लवतः अचिरेणैव शीघ्रमेवश्रियं लक्ष्मी, दाहं गृहदाहं देहसन्तापादिकं च, तथा मृत्युं मरणं, धनहानिं धनक्षयं, पुत्रनाशं, प्रवासं परदेशवासः, धनलाभं, धनप्राप्तिं, विद्यालाभं विद्याप्राप्ति च विदधाति।

भाषा— प्लव के अनुसार फलाफल को कारिका में स्पष्ट किया गया है। पूर्व में प्लव होने पर लक्ष्मी, अग्नि कोण में प्लव हो तो अग्निकाण्ड, दक्षिण में प्लव होने पर मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट, नैर्ऋत्य में प्लव हो तो धन हानि, पश्चिम में प्लव होने पर पुत्रनाश, वायव्य में प्लव हो तो अस्थिरता या प्रवास, उत्तर में प्लव हो तो धनलाभ एवं ईशान कोण में प्लव हो तो वहाँ निवास करने वाले को विद्या की प्राप्ति होती है।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चि.	वाय.	उत्त.	ईशा.
फल	श्री	दाह	मरण	धनहानि	पुत्रक्षय	प्रवास	धन	लाभ

एवमन्यैरप्युक्तम् —

शम्भुकोण प्लवा भूमिः कर्तुः श्रीसुखदायिनी।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा॥ 26॥
मृत्युशोकप्रदा नित्यं सर्वथा दक्षिणप्लवा।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्या नैर्ऋतप्लवा॥ 27॥
धनहानिकरी चैव कीर्तिदा वरुणप्लवा।
वायुप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारणी॥ 28॥
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतः पुरा।

शम्भुकोणेति। शम्भुकोणप्लवा ईशानकोणप्लवा भूमिः, कर्तुः वासकर्तुः श्रीसुखदायिनी लक्ष्मीसुखदायिनी भवतीति शेषः। पूर्वप्लवा पूर्वदिशि प्लवा भूमिः, वृद्धि-करी धान्यादिवृद्धिकरी भवति। उत्तरप्लवा तु धनदा धनं ददाति। दक्षिणप्लवा भूमिः सर्वथा सर्वप्रकारेण नित्यमजस्रं मृत्युशोकप्रदा भवति। या नैर्ऋतप्लवा सा भूमिः गृहक्षयकरी भवति। एवं वरुणप्लवा पश्चिमप्लवा भूमिः धनहानिकरी धनक्षयकरी कीर्तिता। तथा वायुप्लवा वायुकोणप्लवा भूमिः, नित्यमुद्वेगकारिणी भवति। मध्यप्लवा मध्यनिम्ना, मही पृथ्वी, न इष्टा न शुभा। पुरा निकटे (पुरा पुराणे निकटे प्रबन्धातीतभाविष्विति मेदिनी) प्लव तोऽपीति शेषः, न शुभा। तथा च नारायणभट्टः— सौम्यादि प्लवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽग्रयोऽखिले। नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं हत्स्थिरम्॥ *(मुहूर्तमार्तण्ड 6, 3)*

भाषा— अन्यत्र कहा गया है कि ईशान कोण में प्लव वाली भूमि घर बनाने वाले को धन का सुख देने वाली होती है। पूर्व में प्लव हो तो वृद्धिदा, उत्तर में धनलाभ,

ही मृत्यु का ग्रास बनता है। वह पत्नी की क्षति, पुत्र ही हानि उठाता है और कदम-कदम पर शत्रुओं की वृद्धि होती जाती है।

अथ वास्तुभूमिः षोडशप्रकारा वसिष्ठसंहितायाम् —

विस्तीर्णं समभागञ्च संस्थितं परिकीर्तितम्।
चतुरस्रं चतुष्कोणं समभागं विभागतः ॥ 43 ॥
वृत्तमेतत् समाख्यातं वास्तुलक्षणकोविदैः।
चतुर्भिर्विभजेत् कोणैस्तद्वास्तुवृत्तमुच्यते ॥ 44 ॥
आयतं चतुरस्र च मध्यकोष्ठे भवेत् फलम्।
यदि वर्तुलपीताभं स्थानं भद्रासनं विदुः ॥ 45 ॥
चक्रवक्रसमाकारे विजयं निम्नतोन्नतम्।
निम्नता चापकृष्टा च शक्रचापस्य कीर्तिता ॥ 46 ॥
त्रिकोणं शकटाकारं तद्वास्तुकृदिहोच्यते।
दीर्घदण्डमिति ख्यातं पवनं पवनात्मकम् ॥ 47 ॥
मुरजं मुरजाकारं बृहन्मध्यं प्रकीर्तितम्।
अश्वत्थपर्णवत् कुम्भो धनुःकोणाकृतिर्धनुः ॥ 48 ॥
शूर्पं शूर्पनिभं ज्ञेयं गृहं गणितकोविदैः ।[1]

व्याख्या — अथैषां लक्षणानि गणितशास्त्रे, यथा— चतुर्भुजं चतुर्विधम्, समचतुर्भुजम् 1, विषमचतुर्भुजम् 2, समायतचतुर्भुजम् 3, विषमायतचतुर्भुजम् 4। तत्र यस्य चत्वारो भुजाः परस्परं समानास्तत् समचतुर्भुजम्, यस्य परस्परं सम्मुखरेखाद्वयं समानं समानान्तरं च भवति कोणाश्च समास्तत् समायतचतुर्भुजम्। यत्र सम्मुखरेखाद्वयं समं समानान्तरं कोणाश्च विषमास्तद् विषमायतचतुर्भुजम्। यस्य चत्वारो भुजाः परस्परं समानाः समान्तराश्च कोणाश्च समास्तद् वर्गक्षेत्रम्। यस्य चत्वारो भुजाः समानाः कोणाश्च विषमास्तद् विषमायतचतुर्भुजम्। यस्य चत्वारो भुजा विषमास्तद् विषमचतुर्भुजम्।

अथ वृत्तलक्षणम्— एकधरातले कुटिलरेखया निबद्धसीमं वृत्तक्षेत्रं भवति। यस्मिन् क्षेत्रे त्रयः कोणस्तत् त्रिकोणमित्युच्यते, तदपि समत्रिभुज-जात्यत्रिभुज-विषमत्रिभुजभेदात् त्रिविधम्।

चापलक्षणम्- वृत्तक्षेत्रार्धमेव चापमिति कथ्यते।

शकटलक्षणम्— यस्य क्षेत्रस्य मूलप्रदेशः स्थूलस्तदग्रं दीर्घं सूचीसन्निभं तच्छकटम्। कुम्भवत् कुम्भक्षेत्रम्। तथा शूर्पवत् शूर्पक्षेत्रम् अन्यत् प्रसिद्धमिति दिक्।

---

1. वसिष्ठसंहितायां मुद्रितपाठे नोपलभ्यते।

भाषा— जो क्षेत्र विस्तृत एवं समभाग वाली स्थिति में कहा गया हो, वह चतुरस्र होगा। इसी में चतुष्कोण एवं समविभाजन वृत्ताकार रचना हो सकती है, ऐसा वास्तुलक्षण के जानकारों का कहना है। चारों भागों से विभाजित, कोण न हो तो वह वृत्त कहा जाएगा। जो चतुरस्र हो वह आयत एवं मध्य के कोष्ठ में फलक हो। यदि वह वर्तुलाकार पीताभ हो तो वह स्थान विद्वानों ने भद्रासन वाला कहा है। चक्र-वक्र समाकार होगा, निम्नोत्तम विजय होगा, निम्नता चापकृष्टा और इन्द्रचाप कहा जाएगा। इसी प्रकार त्रिकोणाकार, छकड़ा जैसा वास्तुक्षेत्र कहा ७ ता है। दीर्घाकार होता तो दण्ड नाम से विख्यात् एवं पवन जैसा पवनात्मक (सम्भवतः पणव शब्द होना चाहिए जो वाद्ययन्त्र है) होगा। जो मृदङ्ग के जैसा हो, वह मुरज क्षेत्र होगा जिसमें मध्य का भाग मोटा होगा। पीपल के पत्ते जैसा कुम्भकार होगा, धनुषाकार धनुष्कोण होगा। जो सूप के जैसा क्षेत्र हो, वह शूर्प संज्ञक होगा, जैसा कि गणितविदों ने कहा है।

विशेष — धाराधिप भोज ने राजमार्तण्ड में आवासयोग्य सोलह आकार-प्रकार की भूमि पर विचार करने का निर्देश दिया गया है-1. आयताकार, 2. चौकोर या वर्गाकार, 3. वृत्ताकार, 4. भद्रासन, 5. चक्राकार, 6. विषमबाहु, 7. त्रिकोणाकार, 8. बैलगाड़ी जैसी, 9. दण्डाकार, 10. पणवस्थान, 11. मुरज या मृदङ्गाकार, 12. बहुमुखी, 13. व्यजनाकार, 14. कछुए की पीठ जैसी, 15. धनुषाकार तथा 16. सूर्पाकार—आयतं चतुरस्रं च वृत्तं भद्रासनं तथा। चक्रं विषमबाहुः स्यात्त्रिकोण शकटाकृतिम् ॥ दण्डं पणवस्थानं मुरजश्च बृहन्मुखम्। व्यजनं कूर्मपृष्ठं च धनुः शूर्पं च षोडशम् ॥ एवं षोडशसंस्थानं वास्तुलक्षणं शुभाशुभम्। चिन्तनीयं सदा विज्ञैरात्म श्रेयोभिलाषिभिः ॥ *(राजमार्तण्ड 780-81, शिल्पशास्त्र 2, 16-18)*

अथैषां फलान्याह भोजराजः —

आयते सिद्धयस्सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत् ॥ 49 ॥
चक्रे दारिद्र्यमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम्।
राजभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः ॥ 50 ॥
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयः।
कूर्म्मे तु बन्धनं पीडाः धनुःक्षेत्रे भयं महत् ॥ 51 ॥
कुम्भाकारे कुष्ठरोगो भवत्येव न संशयः।

पवने नश्यति नेत्रं धनञ्च बन्धुक्षयो मुरजे ॥ 52 ॥
एवं भूमिविचारं कृत्वा वासं नरः कुर्यात्।[1]

आयत इति। आयते दीर्घे क्षेत्रे वासे सति (जगति) सर्वाः सिद्धयः स्युः। चतुरस्ने चतुष्कोणे, धनागमः धनस्य आगमः, वृत्ते वृत्ताकारे बुद्धिवृद्धिः धिषणावृद्धिः, भद्रासने भद्रं मङ्गलं भवेत्। चक्रे चक्राकारे, दारिद्र्यं दरिद्रता इति (आचार्याः) आहुः। विषमे विषमाकारे, शोकलक्षणं शोकस्य लक्षणं ज्ञेय मति शेषः। त्रिकोणे त्रिभुजे क्षेत्रे, राजभीतिः नृपतिभयं, शकटे तु धनक्षयः धनस्य क्षयः स्याद्भवेत्। दण्डे दण्डाकारे क्षेत्रे वासे (सति) गवां क्षयो नाशः स्यात्। कूर्म्मे कूर्म्माकारे, तु बन्धनं पीडा च स्यात्। धनुःक्षेत्रे धनुराकारे क्षेत्रे महद्भयं भवेत्। कुम्भाकारे एव निश्चयेन, कुष्ठरोगो भवति संशयो नात्र कार्यः। पवने क्षेत्रे नेत्रं धनञ्च नश्यति। मुरजे मुरजाकारे बन्धुक्षयो भवेत्। एवमुक्तरीत्या भूमिविचारं कृत्वा नरः वासं निवासं कुर्य्यात्।

भाषा— आयताकार क्षेत्र में अर्थात् आमने-सामने के भुज तुल्य एवं चारों कोनों से समान भूमि पर निवास करने से सर्वसिद्धि होती है जबकि चतुरस्र यानी जिसमें लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो, पर निवास करने से धन की आवक होती है। वृत्तीय क्षेत्र में निवास करने से बुद्धि की वृद्धि होती है और भद्रासनाकार भूमि पर निवास करने से कल्याण होता है। चक्राकृति वाली भूमि पर दारिद्र्य मिलता है और विषमबाहु भूमि पर शोक होता है। त्रिकोणाकार भूमि पर राजा का भय और शकटाकार या गाड़ी के आकार वाली भूमि पर धन का क्षय होता है। दण्डाकार भूमि पर आवास करने से पशुधन का विनाश होता है एवं शूर्पाकार भूमि पर आवास बनाएँ तो गायों का विनाश निश्चित है। कूर्माकार भूमि पर निवास बन्धन, कैदजन्य कष्ट एवं धनुषाकार क्षेत्र में निवास से बहुत भय होता है। यदि कुम्भाकार भूमि पर आवास बनाएँ तो कुष्ठरोग हो सकता है, इसमें संशय नहीं जाने। पवनाकार (पणवाकार) भूमि हो तो वहाँ निवास करने से नेत्रज्योति और धन नष्ट हो जाता है जबकि मुरजाकार भूमि पर निवास से बन्धु-बान्धवों का क्षय होता है। इस प्रकार भूमि पर विचार करते हुए ही लोगों को निवास-स्थान निश्चित करना चाहिए।

अत्र कूर्मक्षेत्रे वासे फलं दुष्टं प्रतिपादितं, तद्विषमाभिप्रायेणेति ज्ञेयम्।

भाषा — उक्त श्लोक में कूर्मक्षेत्र में निवास करने का फल दूषित कहा गया है, इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि यह फल विषम अभिप्राय में ही ग्रहण करे।

---

1. राजमार्तण्डे पाण्डुलिप्याम्— आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः। भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्द्धनम्॥ चक्रे दारिद्र्यमेवोक्तं शोको विषमबाहुके। नृपाद्भीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षयः॥ नश्यन्ति पशवो दण्डे पवने(पणवे ?) लोचनक्षतिः। मुरजे म्रियते भार्या बन्धुनाशो वृहन्मुखे॥ व्यजने वित्तनाशश्च बन्धे बन्धनेपीडनम्। शूर्पे धनक्षयं विद्याच्चापे चौरभयं भवेत्॥ इति पाठः। (श्लो. 782-85)

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्याङ्कार्य्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्॥ 53 ॥[1]

मनस इति। यत्र यस्यां भुवि, मनसः स्वान्तस्य, चक्षुषोर्लोचनयोः सन्तोषः जायते। तस्यां भुवि सर्वैर्जनैः गृहं भवननिर्माणं कार्य्यमिति गर्गादिसम्मतं गर्गादिमुनिभिः सम्मतं स्वीकृतम्।

भाषा— गर्गादि महर्षियों का यह मत है (उक्त समस्त लक्षणों के अतिरिक्त) जिस स्थान पर मन एवं नेत्रों को सन्तोष सुलभ हो, वहाँ पर पर सर्वरीति निवास किया जा सकता है।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां भूपरिग्रहाध्यायः प्रथमः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में भूपरिग्रह नामक प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

---

1. ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 165, 8

अथ भूमिशोधनार्थं शल्योद्धाराध्यायः द्वितीयः ॥ 2 ॥

तत्र ज्योतिर्निबन्धे (पृष्ठ 166, 15-16) —

/स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नर्वचनस्याऽऽद्यमक्षरम्।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ 1 ॥
अ-क-च-ट-त-प-य-श-हपयाः पूर्वादिमध्यान्ताः।
शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतान्नाशः ॥ 2 ॥[1]

व्याख्या- गृहप्रश्नकर्तुर्मुखाच्चेद्यदि वर्गादिवर्णोद्गमः वर्गाणां प्रथमाक्षरोदयः अ क च ट त प य शानामन्यतमाक्षरोदयस्तदा शल्यं दिग्गतं वक्तव्यम्, शल्यमत्रास्तीति वाच्यम्। एतदुक्तं भवति— गृहसम्मितामभूमिन्दक्षिणोत्तररेखाभिः समतया नवधा कृत्वा, वर्गाणामाद्यक्षरैरकचटतपयशैरष्टभिः क्रमेण पूर्वाद्यष्टदिक्षु शल्यमादिशेत्। अकारे प्रश्नाक्षरे पूर्वस्यां शल्यमादिशेत्। ककारे अग्निकोणे, चकारे दक्षिणे, टकारे नैर्ऋतिकोणे, तकारे पश्चिमायां, पकारे वायुकोणे, यकारे उत्तरे, शकारे ईशानकोणे शल्यं वदेत्। तु पुनः हपयैस्त्रिभिरक्षरैर्मध्यतो मध्यकोष्ठे आदिशेत, हपयानां त्रयाणामक्षराणामन्यतमे प्रश्नाद्यक्षरे मध्ये शल्यं वदेत्।

स्मृत्वेति। अत्र भूमौ शल्यमस्ति न वेति प्रश्नकरणसमये प्रश्नकर्त्रा प्रथममिष्टदेवतां स्वाभीष्टदेवतां, स्मृत्वा प्रश्नः कार्यः। तत्र प्रश्नवचनस्य प्रश्न वाक्यस्य, आद्याक्षरं प्रथमाक्षरं गृहीत्वा सम्यक् शल्याशल्यं शल्यमस्ति न वेति विचार्यते- अ क च ट त प य श हपया वर्णाः पूर्वादिमध्यान्ताः स्थाप्याः। इहा त्रेम एव वर्णाः शल्यकरा भवन्ति, अन्ये न। अथ शल्यसमन्वितभूमावेव वासः कथं न कार्यः ? शल्योत्पाटनेऽधिकपरिश्रमत्वात्। तदाह— शल्यगृह इति। शल्यगृहे निवसतां जनानां नाशो मरणं भवति।

तत्रादौ विशेषमाह— शल्यानुसन्धानावसरे विप्रद्वारा मन्त्रस्य सहस्त्रत्रयवारं जपं कृत्वा— 'ओं धरिणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा रक्षामीति।' इत्यमनन्तर गृहकर्तृहस्ताद्भूमिं स्पृष्ट्वा गृहभूमि शुभाशुभज्ञानप्रश्नं वदेत्। तत्रादौ विप्राद्याः वर्णा पुण्नदीदेवफलमिति ब्रुवन्ति।

---

1. ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 166. 15-16

यत्र पुण्याद्यक्षरं भवति तत्र दिशानुसारे शल्यं ब्रुवेत्। खननावसरे नवधाभूमिं विभजेत्। तदोपरान्तोच्चरिताक्षराणि मुखादुद्गतानि तदा पूर्वादिक्षिक्षु शल्यस्थानप्रकारादिशेत्।

भाषा— भूमिशोधन के लिए ज्योतिर्निबन्धकार का कथन है कि दैवज्ञ को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने इष्टदेवता का स्मरण कर प्रश्नकर्ता के प्रथम अक्षर को जाने और भूमि में शल्य है अथवा नहीं, इस पर सम्यक् रूप से विचार करें। शल्य के विषय में जो भी पूछने आए, उसके मुख से अ, क, च, ट, त, प, य, ह प य— ये अ तथा वर्गों के आद्य अक्षर उच्चरित हों तो वे ही पूर्व दिशा से लेकर मध्यस्थान तक शल्य बताने वाले होते हैं। (इसके लिए निम्न कोष्ठक में आद्यक्षरों का न्यास कर दिशा का ज्ञान किया जा सकता है-)

स्पष्टार्थ चक्रम्-

श	अ	क
य	ह प य	च
प	त	ट

एतदेव विस्तारपूर्वकन्तत्रैवोक्तम् (पृष्ठ 166. 17-25) —

पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्।
सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥ 3 ॥
आग्नेय्यां यदि कः प्रश्ने खरशल्यङ्करच्युते।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयन्नैव निवर्तते ॥ 4 ॥
याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्य्यादाकटिसंस्थितम्।
नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥ 5 ॥
नैर्ऋत्यां यदि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधस्तले।
शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥ 6 ॥
तः प्रश्ने पश्चिमायान्तु शिशोः शल्यं प्रजायते।
सार्द्धहस्तमिते तत्र स्वामिनं नेच्छति ध्रुवम् ॥ 7 ॥
वायव्यां यदि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनन्तथा ॥ 8 ॥
उदीच्यां यदि यः प्रश्ने तदा (विप्र!)शल्यं कटेरधः।
तदरं(तच्छीघ्रं) निर्द्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ 9 ॥
ऐशान्यां यदि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्ततः।

तद्गोधनानां नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ 10 ॥
'हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः ।
नृकपालं कचा भस्म लोहं तत्कुलनाशनम् ॥ 11 ॥'

पृच्छायामिति। अथ शल्यं कुत्र कियद्धस्ततले वर्तत इति विस्तारपूर्वकं प्रतिपाद्यते। तद्यथा यदि पृच्छायां प्रश्ने, अः अवर्णो भवेत्तदा प्राच्यां पूर्वदिशि सार्द्धहस्तप्रमाणेन सार्द्धहस्तपरिमिताधस्तले नरशल्यं मनुष्यशल्यं भवेत्, तच्छल्यं मानुषमृत्युकृत् मनुष्यमरणकर्ता भवति।

यदि प्रश्ने पृच्छायां, कः कवर्णो भवेत्तदा आग्नेय्यामग्निकोणे करद्वये युग्महस्त परिमितनीचे खरशल्यं गर्दभशल्यं भवेत्। तत्र खरशल्यसमन्वितभूमौ निवासे राजदण्डो भवेत्। भयं नैव निवर्तते सदैव भीतिस्तिष्ठतीति।

प्रश्ने चः चवर्णो यदि भवेत्तदा याम्यायां दिशि दक्षिणस्यां दिशि, आकटिसंस्थितं कटिपरिमिताधस्तले, नरशल्यं भवेत्। तच्छल्यं चिररोगतः चिरकालिकरोगतः, गृहेशस्य गृहस्वामिनः, मरणं कुर्यात्।

प्रश्ने यदि टः टवर्णस्तदा नैर्ऋत्यां दिशि सार्द्धहस्तादधस्तले शुनः कुक्कुरस्य, अस्थि शल्यं जायते। तच्छल्यं च बालानां बालकानां, मृतिं मरण, जनयेत् कारयेत्।

प्रश्ने यदि तः तवर्णस्तदा पश्चिमायां दिशि सार्द्धहस्तमिते नीचे, शिशोर्बालकस्य, शल्यं प्रजायते। तत्र वासे तच्छल्यं स्वामिनं वासकर्तारं, नेच्छति नाभिलपति उच्चाटनं करोतीत्यर्थः।

प्रश्ने पः पवर्णस्तदा वायव्यां दिशि चतुष्करे युगहस्तमिते नीचे तुषाङ्गारास्तिष्ठन्ति, ते मित्रनाशं वासकर्तृमित्रनाशं तथा दुःस्वप्रदर्शनं च कुर्वन्ति।

यदि प्रश्ने यः यवर्णस्तदा उदीच्यामुत्तरस्यां दिशि कटेरधः विप्रशल्यं ब्राह्मणास्थि भवेत्। तच्छल्यमरं शीघ्रं, कुवेरसदृशस्य कुबेरसमानधनिकपुरुषस्यापि, हि निश्चयेन निर्धनत्वाय भवति।

यदि प्रश्ने शः शवर्णस्तदा ऐशान्यां दिशि सार्द्धहस्ततः सार्द्धहस्तान्तरे, गोशल्यं भवेत्, तच्छल्यं गृहमेधिनः गृहस्वामिनः, गोधनानां पशुरूपधनानां, नाशाय जायते।

यदि प्रश्ने हपया वर्णा भवेयुस्तदा, मध्यमे कोष्ठे मध्यकोष्ठे, वक्षोमात्रेऽधः नृकपालं कचा भस्म लोहं च भवेत् तत्कुलनाशनं करोति।

भाषा— यदि प्रश्नकर्ता अ वर्ग के अक्षर से प्रश्न प्रारम्भ करे तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का शल्य कहना चाहिए। ऐसा होना मृत्युकारक होता है।

यदि क वर्ग से प्रश्न हो तो आग्नेय कोण में दो हाथ नीचे गर्दभ का शल्य गड़ा हुआ है, ऐसा होने पर प्रशासन से दण्ड-जुर्माना हो सकता है और इस भय का निवारण नहीं होगा।

यदि च वर्ग से प्रश्न किया जाए तो दक्षिण की ओर कटि पर्यन्त गहराई पर नरशल्य कहे, ऐसा होने पर गृहपति की लम्बी बीमारी के बाद निधन होगा।

यदि ट वर्ग से प्रश्नारम्भ हो तो नैर्ऋत्य दिशा में भूमितल से डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी दबी है, ऐसा कहे और ऐसा होने पर वहाँ मृत शिशुओं का जन्म होगा।

यदि प्रश्नकर्ता त वर्ग के अक्षर से प्रश्न प्रारम्भ करे तो पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ नीचे शिशु का शल्य बताना चाहिए। ऐसा होने पर गृहस्वामी कभी उस घर का उपभोग नहीं करता, वह प्रवास पर ही रहता है।

यदि प्रश्न प वर्ग के अक्षर से प्रारम्भ हो तो वायव्य कोण में चार हाथ नीचे भूसा एवं कोयले का शल्य कहना चाहिए। ऐसा होने से मित्र का विनाश एवं निरन्तर बुरे सपने दिखाई देंगे।

यदि प्रश्नकर्ता य वर्ग के अक्षर से प्रश्न का प्रारम्भ हो तो उत्तर दिशा में आधी कटि नीचे विप्र का शल्य कहना चाहिए। ऐसा होने से वहाँ निवास करने वाला शीघ्र ही निर्धनत्व को प्राप्त हो जाएगा, चाहे वह कुबेर ही क्यों न हो।

यदि प्रश्न श वर्ग के अक्षर से पूछा गया हो तो ईशान कोण में चार डेढ़ हाथ नीचे गाय का शल्य कहना चाहिए। ऐसा हुआ तो वहाँ रहने पर गोधन का विनाश तो होगा ही, अपरञ्च गृहपति भी दुःखी होगा।

यदि प्रश्न ह प य वर्ग से पूछा गया हो तो भूमि के मध्य में वक्ष तक की गहराई पर मनुष्य की खोपड़ी, केश, भस्म, लोहा आदि दबा बताना चाहिए। ऐसा हुआ तो वहाँ रहने पर समूचे कुल का उन्मूलन हो जाता है।

अत्र प्रसङ्गतः विश्वकर्मीय अपराजितपृच्छायें (51. 39-49) शल्योद्धारप्रकारश्च भूमिस्थनिधिसाधनं —

नकुलश्चोरगो यत्र क्रीडतः स्नेहत उभौ।
तत्रस्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥

शल्योद्धार के अतिरिक्त भूमि में गड़े धन आदि द्रव्यों को जानने के लक्षण अपराजितपृच्छा के अनुसार निम्नानुसार होंगे— जिस स्थान में नेवले और सर्प आपस में दोनों स्नेहपूर्वक क्रीड़ा करते पाए जाएँ ऐसे स्थान की भूमि को खोदने पर निश्चय ही द्रव्य, धन होने का पता लगता है।

शङ्खभेरीमृदङ्गानां पटहानां च निःस्वनाः ॥

निमित्त के रूप में स्थपति को चाहिए कि वह स्वामी की पूर्वोक्त चेष्टा आदि के अनुसार शल्य पर विचार करे। शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग और नगाड़ा आदि की ध्वनि सुनाई देती होती है (तो शुभ होगी)।

दध्यक्षतानां पुष्पाणां फलानां दर्शनानि च।

स्पृष्टाङ्गसदृशं शल्यं तस्य स्थाने विनिर्दिशेत् ॥

दही, अक्षत-चावल, पुष्प, दूर्वा-फल आदि दिखाई देता हो तो वैसे ही शल्य के होने पर विचार करे तथा गृहपति किस अङ्ग का स्पर्श कर रहा है, उसी के अनुसार शल्य स्थान को कहना चाहिए।

निखनेदवनिं तत्र तदङ्गं बुडते यथा।

गृहनाथस्य तत्राधः शल्यं निःसंशयं वदेत् ॥

गृहस्वामी जिस अङ्ग को खुजलाता हो या जिसे स्पर्श करता हो, उतनी ही गहराई पर शल्य होगा, ऐसा निस्सङ्कोच कहना चाहिए।

प्रश्नकाले गजो गौर्वा तुरगो गर्दभोऽपि वा।

उष्ट्रो वा सारमेयो वा मार्जारश्छागरोऽपि वा ॥

यः प्राणी व्याहरेत्तत्र तद्रवं शल्यमादिशेत्।

प्रमाणं तस्य वक्तव्यं पूर्वोक्तविधिना ततः ॥

प्रश्नकाल में हाथी, गाय, अश्व, गर्दभ, ऊँट, श्वान, सियार, बिलाव, बकरी आदि उस स्थान पर आ जाए या उनकी ध्वनि सुनाई दे तो उस प्राणी के समान ही वहाँ पर शल्य होगा और उनकी बराबर गहराई पर शल्य कहना चाहिए।

एवं शल्यशुद्धाम्भूमिं कृत्वा स्वस्य शुभाशुभज्ञानमाह नारदः —

हस्तमात्रं खनेत्खातं निशादौ जलपूरितम्।

प्रातर्दृष्टे जले वृद्धिस्समः पङ्के व्रणे क्षयः ॥ 12 ॥[1]

व्याख्या— हस्तमात्रं शुभं खातं खनित्वा तत्सन्ध्यायां जलेनापूर्य्य तद्यदि प्रातःकाले सजलं स्यात्तदा तत्स्थले वृद्धिः स्यादिति। पङ्के समो मध्यमः, यदि व्रणे स्फाटिते तदा क्षयो हानिकरमिति।

---

1. नारदसंहितायां मुद्रितपाठे — तत्कर्तां हस्तमात्रं खनित्वा तत्र पूरयेत ॥ अत्यना वृद्धिरधिकं हीने हानिः समेसमम्। तथानिशादौ कृत्वा तु पानीयेन प्रपूरयेत ॥ प्रातर्दृष्टे जलेवृद्धिः समं पङ्के व्रणे क्षयः। (31, 4-6)

हस्तमात्रमिति। हस्तमात्रम् एकहस्तपरिमितं खातं खनेत्, निशादौ तत्सन्ध्यायां तत्खातं जलपूरितं जलेन पूर्णं कृत्वा, प्रातःकाले शुभाशुभफलं विचारणीयम्। तद्यथा-खाते जले दृष्टे सति वृद्धिर्धनादिवृद्धिः स्यात्, पङ्के पङ्काक्रान्ते समः मध्यमफलं न वृद्धिर्न हानिरित्यर्थः। व्रणे स्फाटिते क्षयः नाशः स्यात्।

भाषा— गृहपति के हाथ के प्रमाण के अनुसार एक हाथ लम्बा-चौड़ा गहरा खड्डा खोदें और सन्ध्याकाल में उसे जल से भर दें। सुबह यदि उस गड्ढे जल भरा हुआ ही मिले तो वह भूमि धनादि की वृद्धि करने वाली होगी, यदि जल सूख जाए तो मध्यम फल देने वाली और यदि कीचड़ सहित हो तो मध्यम एवं फटा हुआ दिखाई दे तो हानिकर जानना चाहिए।

अत्र मनुष्यालयचन्द्रिकायां (1, 32-33) परीक्षणरीतिमाह—

क्ष्मां खात्वामघटं निधाय भृतधान्यं वर्धमानं मुखे

कृत्वासिच्य घृतं निशासु सितरक्तापीतकृष्णा दशाः।

विप्रादिक्रमतः प्रदीप्य विधिवन्नीते मुहूर्ते ज्वलेद्

वर्त्तिर्यस्य धरास्य तासु सकलास्विद्धासु सर्वोचिता ॥

जिस भूमि का चयन किया गया हो, उस पर एक हाथ लम्बा-चौड़ा व गहरा (1×1×1) गड्ढा खोदें। उसमें मिट्टी का कोरा कलश धान्य से भरकर रखें और उसके मुख पर बड़ा मृण-दीप को रखें। इस दीप में घी पूरित करें तथा पवित्र ध्वनियों के बीच श्वेत, रक्त, पीत व श्याम वर्ण की वर्तिकाएं (बातियाँ) बनाएँ बनाकर पूर्वादि क्रम (पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर) से रात्रि में जलाएँ। एक मुहूर्त के बाद दीपक को देखें कि किस दिशा की वर्तिका देर तक जल रही है, जिस दिशा की वर्तिका देर तक जलती रहे व वर्णानुसार ब्राह्मणादि वर्ण के लिए शुभ जानना चाहिए। यदि सभी वर्तिकाएँ प्रज्वलित हों तो उस भूमि को सभी वर्णों के लिए शुभ जानना चाहिए।

अत्र वराहमिहिरः—

'गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम्।

यद्यूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत् ॥

श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वागतस्य यदि नोनम्।

तदन्यं यच्च भवेत्पलान्यपामाढकं चतुष्षष्टिः ॥' (बृहत्संहिता 53, 92-93) इति।

ग्राह्य भूमि के लिए वराहमिहिर का मत है कि निश्चित क्षेत्र के बीच एक हाथ चौड़ा, लम्बा और गहरा गड्ढा खोदकर निकाली गई मिट्टी से पुनः उसे भरें। इस दौरान देखें कि गड्ढा पूरा भर जाए और यदि मिट्टी बच जाए तो उस भूमि को सर्वथा उत्तम मानें।

बराबर होने पर सम और मिट्टी के घट जाने पर वह स्थान अशुभकारी होगा, ऐसा जानें। एक अन्य विधि के अनुसार गड्ढे में पानी भरें और समान गति से सौ कदम जाएँ तथा लौटकर देखें कि यदि थोड़ा बहुत भी पानी बचता हो, तो वह भूमि धन्य है अथवा भूमि से निकली मिट्टी यदि चौंसठ आढ़क हो तो भी शुभ जानना चाहिए।

इहोक्तयोर्द्वितीयपरीक्षां किञ्चिद् विवृण्वन्नाह शिवगुरुदेवः —

'तत्खातं वा जलापूर्णं कृत्वा पदशतं व्रजेत्॥

पुनरागच्छतः प्राग्वत् पूर्णं चेद् भूमिरुत्तमा।

यवन्यूना मध्यमा स्यात् त्याज्या न्यूना ततोऽधिकम्॥' (ईशानशिवगुरुदेव. उत्तरार्धे 23, 39-40) इति।

इसी प्रसङ्ग में ईशान शिवगुरुदेव का मत है कि उस गड्ढे को पानी से भरें और सौ पद जाकर पुनः लौटकर देखें कि यदि पानी भरा हुआ हो तो भूमि को उत्तम जानें। यदि पानी कुछ कम हो तो मध्यम और यदि बिल्कुल कम हो जाए तो उस भूमि को अधम समझना चाहिए।

तृतीया परीक्षा—

'आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम्।

ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य॥' (वृहत्संहिता 53, 94)

अस्यायमभिप्रायः— सङ्कीर्णशुभाशुभलक्षणस्य भूतलस्य परीक्षार्थं मध्ये हस्तमात्रं खात्वा तद्गर्तान्तर्गोमयेनोपलिप्य यथोक्तं मण्डलं वर्णकैर्विरचय्य तदुपरि धान्यपूरित-मामं घटं तदुपरि शरावं च सलक्षणं निधाय तत्र पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु कपिलाघृताभ्यक्ताः यथाक्रमं विप्रादिविहिताः सितरक्तपीतकृष्णवर्णाश्चतस्रस्तुल्यप्रमाणाः कार्पासतन्तु-वर्तीर्न्यसेत्। केचित् तत्तद्वर्णनामचिह्नितानामेकवर्णानां वर्तीनां न्यसनमिच्छन्ति। अथ तान्श्चतलः समाः कृत्वा इष्टदेवतां सम्पूज्य समकालं प्रज्वाल्य शरावं फलकादिभिर्यथोचित-माच्छादयेत्। अथ घटिकाद्वये व्यतीते पिधानमुद्धृत्य पश्येत्। तदा यद्वर्णविहिता यद्वर्णनाम-चिह्निता वा वर्तिश्चिरं ज्वलति, सा भूमिस्तस्य वर्णस्य शस्ता। सर्वासां ज्वलने सर्ववर्णानां योग्या। सर्वास्वनुज्ज्वलितासु सर्वैरपि त्याज्या भवतीति।

वराहमिहिर ने मिट्टी की परीक्षा की तीसरी विधि बताते हुए कहा है कि चार बत्तियों वाला दीपक तैयार कर उसे मिट्टी के कच्चे बर्तन में रखें। उक्त बत्तियों के उत्तरादि क्रम से ब्राह्मणादि वर्णों की कल्पना करें। इस बर्तन को एक गड्ढे में डालें और देखें कि जिस दिशा की बत्ती देर तक जलती रहे, उस दिशा के वर्ण के लिए वह भूमि शुभ मानी जाती है।

चतुर्थी परीक्षा—

'श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम्।

तत् तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन् मनो रमते॥' (वृहत्संहिता 53, 95)

अस्याप्यभिप्रायस्त्वेवं— ब्राह्मणादिवर्णचतुष्टयस्य यथाक्रमं सितरक्तपीतकृष्णवर्ण-चिह्नितमेकजातीयं कुसुमं रात्रौ खातस्यान्तः प्रक्षिप्तं सद् द्वितीयेऽहनि यद्वर्णचिह्नितं कुसुमं न प्रम्लायते, तद्वर्णस्य सा भूमिः शुभेति। इह मुख्यं पक्षमाह- यस्मिन्नित्यादि।

चौथी परीक्षा विधि के अन्तर्गत सायंकाल ब्राह्मणादि वर्ण-तुल्य पुष्पों यथा— श्वेत, लाल, पीत व काले फूलों को लेकर गड्ढे में डाल दें। दूसरे दिन सुबह उन पुष्पों को निकालकर देखें कि जिस वर्ण का पुष्प मुरझाया नहीं हो, उस वर्ण के लिए वह भूमि उत्तम होती है अथवा अपना मन जहाँ पर भी रम जाए, वहाँ निवास कर लेना चाहिए।

अन्यच्च—

'भूगर्ते जलपूरितेऽत्र विधिवद् द्रोणादिपुष्पं क्षिपेत्

प्रादक्षिण्यगतिः शुभं सुमनसां यद्यन्यथा निन्दितम्।

पुष्पे दिक्ष्वथ संस्थिते सति शुभं कोणेषु चेन्निन्दितं

ज्ञात्वेत्यादिशुभाशुभान्यथ समीकुर्यात् क्षमां सूक्ष्मधीः॥' (मनुष्यालय. 1, 33)

'मनुष्यालयचन्द्रिका' में कहा गया है कि चयनित भूमि के गड्ढे में जल भरकर उसमें द्रोण (एक प्रकार का श्वेत पुष्प देने वाला वृक्ष) आदि के पुष्प डालें और पर्यवेक्षण करें। यदि वह प्रदक्षिण क्रमानुसार तैरता हो तो भूमि शुभ होती है अर्थात् गड्ढे के जल में पुष्प का पूर्व से दक्षिण की ओर घूमना शुभ है। विपरीत क्रम में घूमना अशुभ माना जाता है। अतः वह भूमि निन्दित होती है। यदि उक्त तैरता हुआ पुष्प पूर्वादि मुख्य दिशाओं में स्थिर हो जाए तो शुभ तथा ईशानादि कोणों में ठहर जाए तो अशुभ जानना चाहिए। इसके उपरान्त विद्वानों को शुभाशुभ (शकुनादि) पर विचार कर भूमि को समीकृत करने का उपक्रम आरम्भ करना चाहिए।

पर्वतोपान्तेषु तु प्रथमं पर्वतानां स्थितिर्निर्णेतव्या। तत्र पर्वता अधोमुखाः शेरत इति शास्त्रकाराः। पूर्वपश्चिमायतेषु तेषु प्राची शिरोभागः, उत्तरदक्षिणायतेषु तु उत्तरा। तेषां वामपार्श्वममृतस्थानं, तत्र गृहादिकं निवेशनीयम्। दक्षिणपार्श्वं तु विषस्थानं, तत्र न किमपि मनुष्यगृहादिकं कर्तव्यमिति साम्प्रदायिकाः। एवं—

'प्राच्यां निषिद्धो हि गिरिस्तच्छाया ह्युदये रवेः।

यत्रापतति तत्रापि ग्रामाद्यं न प्रशस्यते॥'

'विष्णोः पृष्ठे च वामे नरभवनमनर्थप्रदं दक्षिणे चाग्रग्रे
भागे च कालीनरहरिशिवतद्भिन्नसर्वोग्रमूर्तेः।'
आर्यो निम्नस्थलस्थो यदि मनुजगृहं दक्षिणेऽग्रेऽस्य
तस्मादुच्चत्वं नेष्टमिष्टं निकटमपि तदन्यत्र तत्पादभाजाम्॥
व्रीहिक्षेत्रादिदेवालयजलधिनदीतापसागारगोष्ठ
ग्रामादीनामतीवान्तिकमपकुरुते नैकधा मन्दिरेषु।
देवागारान्नराणामतिशुभदमिदं किञ्चिदूनं समं वा
तस्मादभ्युन्नतं च द्वितलविधिरयं नेष्यते तत्समीपे॥' (मनुष्यालय 1, 27-28)

इत्यादिका नियमा ग्रन्थान्तराद् अवगन्तव्याः।

ग्रामादि के लिए साम्प्रदायिकों का मत है कि सूर्योदय काल में जहाँ पर पर्वत की छाया पड़ती हो, ऐसी भूमि ग्राम्यादि के लिए शुभ नहीं होती है।

मनुष्यालयचन्द्रिकाकार नीलकण्ठ मूसत का मत है कि भगवान् विष्णु के मन्दिर के पृष्ठ भाग और बाँयीं ओर तथा कालिका, नृसिंह, शिव तथा अन्य उग्र देवों के प्रासाद के समक्ष और दाँयें यदि गृह का निर्माण किया जाता है तो अनर्थकारी होता है। इसी प्रकार गृह से देवालय नीचे नहीं होना चाहिए अर्थात् गृह को देवालय की ऊँचाई से निम्न बनाया जाना चाहिए। मन्दिरों के सामने एवं दाँयीं ओर निर्माण अशुभ है। जिनका जीवन देवालयाश्रित हो (साधु, वैष्णव, शैव-संन्यासी, पुजारी आदि), उनका निवास नेष्ट स्थान व दिशाओं को छोड़कर वहाँ बनाया जा सकता है। जहाँ व्रीहि या चावल-धान्योत्पादक अथवा संग्रहण क्षेत्र हो, देवालय, समुद्र, नदी, तपस्वियों का क्षेत्र या श्रृणी-स्थल, गोष्ठ अथवा गोशाला हो- ऐसे स्थान की भूमि गृहार्थ अनेक दृष्टियों से अशुभ मानी जाती है। जिस भवन की ऊँचाई देवालय की ऊँचाई के समान या न्यून होती है वह बहुत शुभ होता है। देवालय से उन्नत अथवा द्वितलीय भवन देव प्रतिमाओं के सामने या समीपस्थ बनाया जाना अपेक्षित नहीं होता, अर्थात् ऐसा विचार त्याग दिया जाना चाहिए।

अथ प्रकारान्तरेण वास्तुप्रदीपे (मत्स्यपुराण 253, 13-16) —

अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वानुलिप्ते च सर्व्वशः।
धृतं वरशरावस्थङ्कृत्वा वर्त्तिचतुष्टयम्॥ 13॥
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थम्पूर्वन्तत्सर्व्वदिङ्मुखम्।
दीपान्पूर्वादि सङ्गृह्य वर्णानामनुपूर्वशः॥ 14॥
वास्तुः सामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः।

शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च॥ 15॥

अरत्निमात्र इति। अरत्निमात्रे निष्कनिष्ठेन मुष्टिना हस्तमात्रे के (अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः), गर्ते, सर्वशः समन्तात्, स्वानुलिप्ते स्वेनात्मना अनुलिप्ते विलिप्ते (स्थाने), धृतं वरशरावस्थं श्रेष्ठवर्द्धमानकस्थं (शरावो वर्द्धमानक इत्यमरः), वर्तिचतुष्टयं वर्तिचतुष्टयान्वितं, सर्वदिङ्मुखं सर्वतोमुखं कृत्वा भूपरीक्षार्थं पूर्वं वर्णानामनुपूर्वशः द्विजादिवर्णचतुष्टयानामनुक्रमशः, पूर्वादिदीपान् संगृह्य गृहीत्वा, ज्वालयेत् प्रज्वालयेत्। एवं यो दीपः सर्वतः समन्ताद्दीप्यते तस्य वास्तुसामूहिक (इति) नाम मुनिभिः कथ्यते। स दीपः प्रासादेषु गृहेषु च सर्ववर्णानां शुभदः स्यात्।

भाषा— भूमि की परीक्षा के लिए एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उस सब ओर से भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ कर दे। तदोपरान्त एक कच्चे पूर्वे में घी भरें। उसमें चार बत्तियाँ जलाए और उसे उसी गड्ढे में रख दे। उन बत्तियों को भी क्रमशः चारों ही दिशाओं की ओर रखी जानी चाहिए। यदि पूर्व दिशा की बत्ती अधिक काल तक जलती रहे तो उक्त भूमि ब्राह्मण के लिए शुभदायी है। इसी तरह उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर जलती रहने वाली बत्तियाँ क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए श्रेष्ठ भूमि होने की द्योतक जानें। यदि वह वास्तुदीपक चारों ही दिशाओं में जलता रहे तो प्रासाद एवं साधारण गृह निर्माण के लिए वह भूमि समस्त वर्णों के लिए शुभप्रदायक होती है।

अथ प्रकारान्तरेण वास्तुराजवल्लभे (1, 15-16) —

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम्।
क्षेत्राधिपं चाष्ट दिगीशदेवान्सुपुष्पधूपैर्बलिभिः सुखाय॥ 16॥
खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्धने।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः
पादोनार्द्धविहीनकेऽथ निभृते मध्याधमेष्टाम्बुभिः॥ 17॥

परीक्षितायामिति। परीक्षितायां पूर्वोक्तपरीक्षाकृतायां भुवि भूमौ, चण्डिकया पार्वत्या, समेतं सह, विघ्नराजं गणेशं, तथा क्षेत्राधिपं क्षेत्रस्वामिनं, अष्टदिगीशदेवान् दिक्पालांश्च, सुखाय कल्याणाय, पुष्पधूपबलिभिः समर्चयेत् सम्पूजयेत्। ततः भूमिपरीक्षणे भूमिपरीक्षायां, करमितं हस्तपरिमितं खातं कृत्वा, तत् खातं तन्मृदा खातमृत्तिकया पूरयेत्। अथ तत्फलं निगद्यते हीन इति। रजोहीने रजोऽल्पे सति, हीनफलमल्पफलं, समे समफलं, रजोवर्द्धने रजोऽधिके लाभो भवेत्। अथान्या परीक्षा निगद्यते। [illegible] जलपूर्णं कुर्यात्। आशतपदं शतपदं यावद् गत्वा, पुनः भूयः, फलं परीक्ष्यम्। तत्र पादोने जले मध्यमं फलं, अर्द्धविहीनकेऽर्धोने जले, अधममनिष्टं फलं, अम्बुभिः निभृते पूर्णे खाते, इष्टं शुभं फलं स्यात्।

पूर्वपश्चिमदिग्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकं स्मृतम्।
दक्षिणोत्तरदिग्मूढं सर्वनाशकरं भवेत्॥

विश्वकर्मीय अपराजितपृच्छा में कहा गया है कि भूमि के चतुरस्र बनाते समय कभी दिग्मूढ़, दिशाओं में भूल नहीं आने देना चाहिए। जो वास्तु पूर्व-पश्चिम दिशा में दिग्मूढ़ होता है अर्थात् गलत दिक्साधनयुक्त होता है, उसका फल स्त्रीजन के नाश का कारण बनता है। इसी तरह दक्षिण-उत्तर में जो वास्तु दिग्मूढ़ हो, वह भी सर्व नाशकारक होता है।

विसूत्रं च भवेत्तच्चेत् सूत्रसन्तापकारकम्।
प्रासादस्य प्रमाणेन सूत्रैः क्षेत्रं प्रसाधयेत्॥
प्रासादे भित्तिसंयुक्तो गृहे भित्तिस्तु बाह्यतः।
कर्त्तव्यो मण्डपैर्युक्तो जगत्यायाम एव च॥

जो वास्तु विसूत्र हो, सीधवत सूत्र में न होकर टेढ़ा-मेढ़ा हो, वह सूत्रधार को सन्तापकारक होता है। अतः प्रासाद, मन्दिर के प्रमाणानुसार ही सूत्रधारों को उस भूमि क्षेत्र को ठीक-ठीक साधना चाहिए। यह ध्यान रहे कि प्रासाद, मन्दिरों में भित्ति से संयत अर्थात भीति के नाप के साथ ही मण्डप का नाप और जगती, पीठिका का नाप होता है, परन्तु मकानों, भवनों में भित्ति के नाप के बाहर मण्डप का नाप और जगती पीठ का नाप होता है।

अथ केनचिदुक्तम्-

प्रथमे सुसमे क्षेत्रे प्राचीं संसाधयेत्स्फुटम्।
सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततो निष्पादयेद्गृहम्॥ 2॥

प्रथमेति। प्रथमे पुरा, सुसमे क्षेत्रे समायां भूमौ, स्फुटं स्पष्टं, प्राचीं पूर्वादिदिशं, सिद्धान्तोक्तप्रकारेण सिद्धान्तोक्तरीत्या, संसाधयेत्। ततोऽनन्तरं, गृहं निष्पादयेत् कुर्यात्।

भाषा— सबसे पहले भूमि को इकसार करे और पूर्वादि दिशाओं के ज्ञान के लिए सिद्धान्त ग्रन्थों में कही गई विधि का अनुकरण करते हुए ही उक्त भूमि पर गृह निर्माण कार्य करें।

विशेष— भूमि शुद्धि के लिए मनु का कथन है कि सम्मार्जन करना, गोमूत्र, गङ्गाजल आदि का छिड़काव कर लीपना-पोतना, सींचना, खोदन और गायों को लाकर बान्धना— इन पाँच प्रकारों से भूमि की शुद्धि होती है— सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च। गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः॥ *(मनुस्मृति 5, 124)*

अथ दिक्साधनमाह—

तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ श्रीभास्कराचार्यैः (3, 8-9) —

वृत्तेऽम्भस्सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमा-
द्भाग्रं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरैन्द्र्यौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्या हता-
ल्लम्बज्यासमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता॥ 3॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा॥ 4॥

व्याख्या— जलवत्समीकृतायां भूमाविष्टप्रमाणं वृत्तं विलिख्य, तस्य केन्द्रे द्वादशाङ्गुलशङ्कुं संस्थाप्य, तस्य शङ्कोश्छाया तस्मिन्वृत्ते यत्र प्रविशति पूर्वाह्णे, अपराह्णे, यत्र निर्गच्छति, तत्र पश्चिमपूर्वदिशौ भवतः।

मन् काले छायाप्रवेशो जातः, यस्मिन्काले छायानिर्गमस्तत्कालिकयोः क्रान्तिज्ये साध्ये, तयोरन्तरात्तस्याश्छायायाः कर्णगुणाल्लम्बज्याभक्ताद्यल्लब्धमङ्गुलादिकं फलं तेनैन्द्री-दिगुत्तरतश्चालिता स्फुटा भवतीति यद्युत्तरेऽयने वर्तते। यदि दक्षिणाऽयने तदा दक्षिणतः, एवं स्फुटा प्राची पश्चिमेति। तन्मत्स्याद्दक्षिणोत्तरा सुलभेति।

अथ प्रकारान्तरेणाह— ध्रुवमवलम्बसूत्रेण विद्ध्वा ध्रुवाभिमुखकीलकः सौम्या स्वस्थानकीलको याम्या तन्मत्स्यतः पूर्वापरेति।

अथैकस्मादपिच्छायाग्रतः — तच्चैवमभीष्टकाले शङ्कोर्भाग्रं चिह्नयित्वा तस्या-श्छायाया वक्ष्यमाणप्रकारेण भुजं कोटिं चानीय भुजकोटिमिते शलाके गृहीत्वा शङ्कुमूलाद्यथा दिग्गतां कोटिशलाकां छायाग्राद्यस्तदिग्गतां भुजशलाकां च तथा भुवि न्यसेद्यथा शलाकयोः संयुतिः स्यात्। एवं कृते कोटिः प्राच्यपरा भवति बाहुश्च याम्योत्तरेति।

वृत्तेऽम्भ इति। स्पष्टार्थज्ञानं ग्रन्थकर्तुर्व्याख्यया सम्यग् भवति, अथ विशेष-ज्ञानायोपपत्तिरत्र निगद्यते। द्युज्याचापांशव्यासार्धजनितवृत्तनिष्ठानामुन्नतघटिकानामग्रं पूर्वाह्णे सममण्डलेन यावदन्तरं तावदेवापराह्णे तावतीनामिष्टघटिकानामग्रं भवति। अतस्तच्छायाग्र-बिन्दुभ्यां दिग्ज्ञानमुपपद्यते। परं तत्कालान्तरेण यदर्कक्रान्त्यन्तरं तेनान्तरितं भवति, अतस्तत्सन्धेयम्। तच्चैवम्- तस्मिन्काले यानि कर्णवृत्ताग्राङ्गुलानि पूर्वाह्णे चापराह्णे तेषामन्तरं विधेयम्। तत्र लाघवार्थं तत्कालिकक्रान्त्योरेवान्तरं कृतम्। ततोऽग्रान्तरकरणायानुपातः- यदि लम्बज्याकोट्या त्रिज्याकर्णस्तदा क्रान्तिज्यया केति लब्धाऽग्रा। एवमन्यकालिक-क्रान्तिज्ययाऽग्रा मानमानेतव्यम्। तयोरन्तरमग्रान्तरं स्यात्। ततोऽन्योऽनुपातः- यदि त्रिज्या

व्यासार्धे एतावदन्तरं लभ्यते तदा कर्णव्यासार्धे किमिति लब्धं कर्णवृत्ताग्रान्तरम्। अत्र तुल्यत्वाद्गुणभाजकयोस्त्रिज्यानाशे कृते सत्युपपन्नं 'तत्कालापमजीवयोस्तु विवरादि' त्यादि। यद्युत्तरमयनं वर्तन उत्तरतोऽर्के चलिते शङ्कोर्मार्गं दक्षिणतो याति तदुत्तरतश्चालनीयम्। एवं दक्षिणेऽयनेऽपि दक्षिणतश्चालनीयम्। अत उपपन्नमैन्द्री स्फुटा चालितेति।

भाषा— पानीतार की तरह समीकृत भूमि पर वृत्त की रचना करे। उसके केन्द्र में 12 अङ्गुल प्रमाण वाला शङ्कु स्थापित करे। सूर्योदय से पूर्वाह्न से पहले-पहले वृत्त में जहाँ तक छाया पहुँचे, वह पश्चिम एवं दोपहर के बाद जहाँ से छाया निकले, वह बिन्दु पूर्व दिशा का द्योतक होगा। ज्ञातव्य हैं कि इस तरह से पश्चिम बिन्दु का निर्णय किया जाता है किन्तु क्रान्तिगति के अनुरूप पूर्वोक्त पूर्व बिन्दु का मान स्थूलगत होता है।

इसी प्रकार स्थूल बिन्दु को जानने के लिए छाया प्रवेश तथा निर्गम दोनों समयों के क्रान्तिज्याओं का अन्तर ज्ञात करे और छाया कर्ण से गुणा करे, इष्ट लम्ब ज्या से भाग दे और जो प्राप्त हो उसके बराबर अङ्गुलादि अयन की दिशा में बिन्दु का संचालन करे, इस प्रकार से वास्तविक पूर्व बिन्दु की जानकारी होगी।

पश्चिम एवं पूर्व दोनों ही बिन्दुओं से यदि मत्स्योत्पादन करे अर्थात् पूर्व एवं पश्चिम बिन्दु से सम्पृक्त रेखा के आधे के ऊपर रेखागणित के नियमानुसार चापकाटकर लम्ब डाले तो वास्तविक दक्षिण-उत्तर रेखा होगी।

इसके अतिरिक्त उत्तर ध्रुव को वेधकर उत्तर दिशा का ज्ञान करे अथवा वृत्त मध्यस्थ शङ्कु का एक समय का ही छायाग्र ज्ञातकर उसी इष्टकाल का भुज एवं कोटि करे, भुज एवं कोटि के तुल्य शलाका लेकर शङ्कु से दिशा के अनुसार कोटि व छायाग्र से विपरीत दिशा की भुज एवं शलाका का विन्यास इस प्रकार किया जाए कि शलाका का अग्र यानी यष्ट्यग्र का योग हो सके, ऐसा होने पर कोटि पूर्वा-पर एवं भुज दक्षिण-उत्तर होगा।

विशेष— वैदिक ज्योतिष के काल से ही शङ्कु से छाया, मुहूर्त आदि की गणना करने की परम्परा रही है। अथर्ववेदीयज्यौतिषम् में सर्वप्रथम शङ्कुच्छाया प्रमाण से ही पन्द्रह मुहूर्तों को ज्ञात करने का वर्णन हुआ है। प्रातःकाल में जब सूर्य का आधा बिम्ब दिखाई दे जाए तब 12 अङ्गुल लम्बाई का एक सीधा, स्निग्ध तथा लम्ब-गोल नोकदार) शङ्कु (खूँटी या कील) को पृथ्वी पर सीधा खड़ा करे। उस समय इस शङ्कु की छाया पृथ्वी पर पश्चिम की ओर 90 + 6 = 96 अङ्गुल प्रमाण होगी। प्रतिदिन इस समय से 'रौद्र' नामक मुहूर्त्त प्रारम्भ होता है। मध्याह्न होने तक तक यह छाया क्रमशः घटती रहती है। जब यह छाया प्रमाण घटकर 61 अङ्गुल का रह जाए, तब रौद्र मुहूर्त्त का अवसान होता है। जब शङ्कुच्छाया 60 से 13 अङ्गुल पर्यन्त रहे, तब तक 'श्वेत' नामक दूसरा

मुहूर्त्त रहता है, 12 अङ्गुल शङ्कुच्छाया से लेकर 7 अङ्गुल तक तीसरा मुहूर्त्त 'मैत्र' नामक होता है। छाया के 6 अङ्गुल से 1 अङ्गुल कम छाया से 'सावित्र' नामक पाँचवाँ मुहूर्त्त प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार 4 अङ्गुल शङ्कुच्छाया होने पर 'वैराज' नामक छठा मुहूर्त्त प्रारम्भ होता है। जब छाया घटकर 3 अङ्गुल रह जाती है, तब 'विश्वावसु' नामक सातवाँ मुहूर्त्त प्रारम्भ होता है और जब शङ्कुच्छाया 2 अङ्गुल से न्यून हो जाए तब 'अभिजित्' नामक आठवाँ मुहूर्त्त प्रारम्भ होता है। जब अभिजित् का मध्यकाल होता है, जब छाया शून्य हो जाती है अथवा फिर उत्तर या दक्षिण दिशा की ओर हो जाती है। उस समय शङ्कुच्छाया शंकु के मूल में ही होती है। मध्याह्न काल के पश्चात् शङ्कुच्छाया भी दिशा पूर्व की ओर होने लगती है। जब तक यह 1 अङ्गुल से अधिक होगी तो 'रोहिण' नामक नवाँ मुहूर्त्त प्रारम्भ होगा, जो 3 अङ्गुल तक रहेगा, 4 अङ्गुल की छाया हो जाने पर दसवाँ 'बल' नामक मुहूर्त्त समाप्त होता है, 5 अङ्गुल की शङ्कुच्छाया तक ग्याहरवाँ 'विजय' नामक मुहूर्त्त होता है। इसके अनन्तर जब तक पूर्वा शङ्कुच्छाया 6 अङ्गुल तक रहेगी, तब तक बारहवाँ 'नैर्ऋत' नामक मुहूर्त्त तथा 12 अङ्गुल तक तेरहवाँ 'वारुण' मुहूर्त्त होता है। इसके बाद सूर्यास्त तक 'भग' नामक पन्द्रहवाँ मुहूर्त्त होता है। सूर्यास्त के समय छाया पूर्व दिशा की ओर 96 अङ्गुल होती है। ये सभी प्रातः काल से सूर्यास्त तक के 10 + 2 + 3 = कुल 15 मुहूर्त्त बतलाए गए हैं। इसी प्रकार से ये मुहूर्त्त रात्रि में भी इसी क्रम से हुआ करते हैं—

नवति षडङ्गुलांश्चैव प्रतीचीन्ताम्प्रकाशयेत्। पुरस्तात्सन्धिवेलायां मुहूर्त्तो रौद्र उच्यते॥ श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मैत्रो वै द्वादशाङ्गुलः। षट्सु सारभटो ज्ञेयः सावित्रः पञ्चसु स्मृतः॥ चतुर्षु चैव वैराजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा। मध्याह्ने चाभिजिन्नाम यस्मिञ्छाया प्रतिष्ठति॥ प्राचीं वै गामिनीञ्छायां रोहणिस्त्रिषु वर्तते। बलश्चतुर्षु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः॥ नैर्ऋतस्तु षडङ्गुल्यो वारुणो द्वादशाङ्गुलः। सौम्यः षष्टिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा॥ एते मुहूर्त्ता व्याख्याता दश द्वौ च तथा त्रयः। अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि न संशयः॥ *(अथर्वज्योतिष 6-11)*

अथ सुगमोपायेन दिग्ज्ञानमुक्तं ग्रहलाघवे श्रीगणेशदैवज्ञैः (4. 21)—

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्धति मेरुदक् च याम्या॥ 5॥

मल्लारिटीकायां — अथ सर्वत्र नलिकाबन्धादिकुण्डमण्डपादिविधौ च दिक्-साधनोपयोगोऽस्त्यतो दिक्साधनं कथयति। जलवत्समीकृतायां भूमौ वृत्तेऽभीष्टकर्कटेन कृते सति केन्द्रस्थितस्य वृत्तमध्यस्थस्य शङ्कोर्द्वादशाङ्गुलस्य छायाग्रं क्रमशो विशति इहापरा पश्चिमदिक्। यत्रापैति दिनशेषकाले वृत्ताद्यत्र बहिर्गच्छति तत्र चिह्ने पूर्वा दिक्। ताभ्यां पश्चिमपूर्वदिग्भ्यां सिद्धो यस्तिमिर्मत्स्यस्मान्मत्स्यमुखपुच्छसूत्रादुदगुत्तरा याम्या दक्षिणा स्यात्।

एवं यद्दिने त्रिंशन्मितमेव दिनमानं तद्दिवस एवामुना प्रकारेण दिक्साधनमन्यथा तु भुजं विना दिक्साधनं न भवति।

वृत्ते समभूगत इति। जलेन समीकृतायां भूमावभीष्टकर्कटकेन कृते वृत्ते केन्द्रस्थितस्य वृत्तमध्यस्थितस्य, शङ्कोर्द्वादशाङ्गुलशङ्कोश्छायाग्रं क्रमशो यत्र विशति प्रविशति इहापरा पश्चिमा दिक्। यत्रापैति दिनावशेपसमये वृताद्यत्र बहिर्निर्गच्छति तत्र चिहे पूर्वा दिक्। ताभ्यां पश्चिमपूर्वदिग्भ्यां सिद्धो यस्तिमिर्मत्स्यस्तस्मात्मत्स्यमुखपुच्छसूत्रादुदगुत्तरा याम्या दक्षिणा स्यात्। एवं यद्दिने त्रिशन्मितमेव दिनमानं तद्दिवस एवानेन प्रकारेण दिक्साधनमन्यथा तु भुजं विना दिकसाधनं न भवति।

भाषा— इकसार (समतल) भूमि पर बने हुए वृत्त में केन्द्रीय भाग में स्थित शङ्कु की सूर्योदयकाल में जहाँ छाया प्रवेश करे और अस्तकाल में जहाँ से निकले यानी स्पर्श करे, उन दोनों ही बिन्दुओं में जाने वाली रेखा पूर्वा-पर होती है। अर्थ यह है कि छाया का प्रवेश बिन्दु पश्चिम एवं निर्गमन बिन्दु पूर्व दिशा का द्योतक होता है। इन दोनों ही चापों द्वारा बने हुए मत्स्य के मुख-पुच्छ को मिलाने वाली रेखा दक्षिणोत्तर होगी। अर्थ यह है कि पूर्वा-पर के मध्य बिन्दु पर किया हुआ लम्ब दक्षिण एवं उत्तर दिशा को बताने वाला होगा।

अथ नक्षत्रवशेन दिग्ज्ञानमुक्तं मुहूर्तमार्तण्डे (6, 5) —

प्राक् साध्योज्जयिनीस्थलाद्यमदिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यन्तरा।
सौम्येतोऽग्न्युदयादुदग्ध्रुवमुखाद्दिङ्मूढके स्यान्मृतिः॥ 6॥

व्याख्या — उज्जयिनीस्थलाद्यमदिशि दक्षिणस्यां दिशि त्वाष्ट्रं चित्रा अनिलं स्वाती, अनयोरन्तरं मध्यं तस्मात्प्राची साध्या। अयमर्थः- सम्भवे सति रात्रौ पूर्वाभिमुख उपविश्य युगपन्मात्रोदितां नलिकयावलोकनं नलिकाग्राल्लम्ब्यं भूमिपर्यन्तं भूमौ मुक्त्वा चिह्नं कृत्वा तथैव अचलस्सन् तेनैव नेत्रेण स्वातीमवलोकयेत्। तथैव नलिकाग्राल्लम्ब्यं भूमिपर्यन्तं मुक्त्वा लम्बनिपाते चिह्नं कृत्वा तथैव भूमौ चिह्नं कुर्यात्। पुनस्तत्र तथैव सूत्रं प्रसार्य मध्ये चिह्नं शङ्कुं निधाय, तस्मात्पश्चिमचिह्नपर्यन्तं रज्जुं प्रसारयेत्। तत्र तत्सूत्रमेव प्राची भवति। एवमुज्जयिन्या दक्षिणतः प्राचीसाधनम्।

अथोत्तरतः प्राचीसाधनं यथा-

अत उज्जयिन्याः सौम्य उत्तरभागे, अग्न्युदयात्कृत्तिकोदयात्प्राची साध्या। एतदुक्तं भवति, पूर्वं नलिकया युगपन्मात्रोदितां कृत्तिकामालोक्य नलिकामूलाग्राभ्यां लम्बौ मुक्त्वा मुक्त्वा भूमौ चिह्नद्वयं कृत्वा तयोरुपरि प्राचीसूत्रम्।

अथोत्तरसाधनम्-

उदगिति। ध्रुवमुखादुदक् उत्तरा दिक्, इदं सर्वेषां साधारणम्।

अत्र व्याख्या ग्रन्थकर्तुरतिस्पष्टा, विशेषज्ञानाय मयोपपत्तिरुच्यते। चित्रास्वातीनक्षत्रे पूर्वापरवृत्ताद्विभिन्नदिग्गते तुल्यान्तरे वेधेन स्फुटं दृश्येते। तस्मात्तुल्यनतांशे उदितं तन्नक्षत्रद्वयं नलिकाग्रसंलग्नं विधाय, ततो जलवत्समीकृतायां भूमौ नलिकाग्रमूलाल्लाम्बौ कार्यौ। अथ लम्बमूलद्वये यत्सूत्रं निबध्यते तन्नक्षत्रद्वयस्याग्राप्रमाणयोर्योगतुल्य, अर्थान्नक्षत्रैकस्य द्विगुणिताग्राप्रमाणसमानं स्यात्। तस्माल्लम्बमूलद्वयनिबद्धसूत्रर्द्धोपरि या लम्बरूपा रेखा सा पूर्वापरा स्यात्। अस्यार्द्धकारिणी लम्बरूपा रेखा दक्षिणोत्तरा स्यादेवमवन्ती समाख्यात्नगराद्याम्यदिश्येव। यतस्तन्नक्षत्रद्वयं तत्र प्रत्यक्षं सुखेन दृश्यं भवति, नक्षत्रद्वयस्य याम्यदिग्गतत्वात्। उत्तरायां दिशि कृत्तिकानक्षत्रावलोकनादिक्साधनं भवति। तद्यथा- पूर्ववद्वेधेन कृत्तिकानक्षत्रं पूर्वबिन्दावुदितं दृश्यते तेन नलिकाग्रनिष्ठं तन्नक्षत्रं कृत्वा नलिकाग्रमूलाभ्यां लम्बौ कार्यौ। तल्लम्बमूलद्वयनिबद्धसूत्रं पूर्वापरं स्यात्। अथ याम्योत्तरं सूत्रं पूर्वज्ज्ञेयम्। अथैवं नलिकाग्रसंस्थमुत्तरध्रुवं कृत्वा नलिकाग्रमूलाभ्यां विहितलम्बद्वय निबद्धसूत्रं याम्योत्तराख्यं स्यात्तदर्द्धोपरि लम्बरूपं सूत्रं पूर्वापराख्यं बोध्यमित्युपपन्नं सर्वम्।

भाषा— उज्जयिनी (उज्जैन) से दक्षिण दिशा के देश में चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र के मध्य से पूर्व दिशा का ज्ञान करना चाहिए। इसी प्रकार उज्जयिनी से उत्तर दिशा में कृतिका नक्षत्र के उदय से पूर्व दिशा का ज्ञान करना चाहिए। ध्रुव ताराभिमुख होकर उत्तर दिशा का ज्ञान करे। इस प्रकार का दिशा का साधन करके ही गृह का निर्माण करना चाहिए, दिशा क ज्ञान के अभाव में कार्य सम्पादन करने पर उसका फल मृत्यु जानना चाहिए।

विशेष— जैसे उज्जैन से दक्षिण में कल्पित 'क' स्थान से दिक्साधन किया जाना हो तो रात्रिकाल में चित्रा नक्षत्र के बिम्बोदय होने पर नलिका से वेध करे और नलिकाग्र से लम्बसूत्र समान भूमि पर डाला गया हो तो 'प' बिन्दु पर गिरेगा। वहाँ चिह्न बनाए। इसी प्रकार अन्य नक्षत्र स्वाती के उदित होने पर जितने उन्नतांश पर चित्रा का वेध किया गया था, उतने ही उन्नतांश पर स्वाती को वेधकर नलिकाग्र से लम्बसूत्र 'फ' बिन्दु में गिरा, वहाँ पर चिह्न कर दोनों चिह्नों के बीच 'ब' बिन्दु पूर्व को पूर्व दिशा माना गया। उज्जैन से उत्तरभाग में 'य' बिन्दु से पूर्वदिशा को ज्ञात किया जाना है तो निशाकाल में कृतिका के उदित होने पर वेध करे, लम्बसूत्र 'र' बिन्दु में डाला गया, वहाँ का चिह्न पूर्व दिशा को बताएगा। उत्तर को ज्ञात करने के लिए ध्रुव संज्ञक तारे को नलिका से वेध करे और लम्बसूत्र जहाँ गिरेगा, वही उत्तर दिशा स्वीकार्य होगी क्योंकि यह सिद्ध है कि ध्रुव सबके ही उत्तर में अवस्थित होता है।

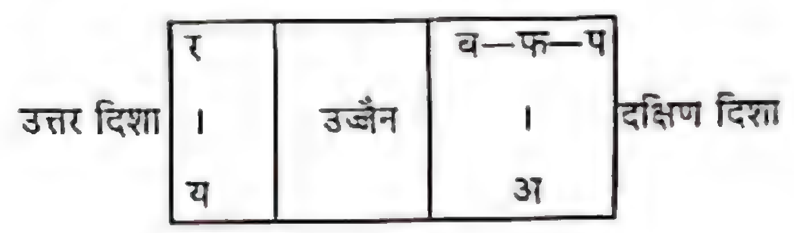

इसी प्रकार नारायणभट्ट ने मुहूर्तमार्तण्ड में शुल्बसूत्र का निम्न श्लोक उद्धृत किया है— कृत्तिका श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्। एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रादिते पुरे॥ (कात्यायनशुल्ब 34) अर्थात् कृतिका, श्रवण, पुष्य, चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र का अन्तर पूर्व दिशा का द्योतक है। इन नक्षत्रों का वेध 86 अङ्गुल क्षितिज से ऊपर होने पर किया जाना अपेक्षित है। कात्यायनशुल्बसूत्र में शङ्कुविधि से छायागमन-निर्गम, वृत्त के आधार पर पूर्वादि दिशाओं को ज्ञात करने की विधि दी गई है— समे शङ्कुं निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयोः शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कू निहन्ति सा प्राची। तदनन्तर रज्ज्वाऽभ्यस्य पाशौ कृत्वा शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य दक्षिणायम्य मध्ये शङ्कुमेवमुत्तरतः सोदीची। रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोति। श्रोण्यंसनिरञ्छनसङ्ख्या- समासभङ्गेपु लक्षणानि। प्राच्यन्तयोः शङ्कू निहन्ति। श्रोण्यंसयोश्च। शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य निरञ्छनेन गृहीत्वा दक्षिणपूर्वां दिशं हरन्ति। एवमुत्तरतः। विपर्यस्येतरतः। स समाधिः सर्वत्र। (कण्डिका 1, 1-11) किन्तु, नक्षत्रवेध अब प्रासङ्गिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि आकाशीय स्थिति व गति प्रदूषणादि के कारण समान नहीं होती है।

अथं वेधं विना दिग्ज्ञानप्रकारो यथा —

अथ चुम्बमणिफलके वृत्ताकारभित्तिमेकाङ्गुलोन्नतिं मृद्भिः सम्पाद्य तदन्तरं स्वच्छ जलं क्षिपेत्। अथैका लौहजा पट्टिका मत्स्याकारा सूक्ष्मरूपा मध्ये सच्छिद्राऽग्रितसा तत्र क्षेप्या, तत्र धातुघटितपात्रमध्यस्थं लौहकीलं स्थिरं कृत्वा तदुपरि पाट्टका स्थाप्या सा तु स्वत एव ध्रुवाभिमुखी भवेत्, सैवोत्तरा दक्षिणा च तन्मत्स्यो मत्स्यकरणात्पूर्वापरा दिगिति।

विना वेध की विधि के सहारे केवल चुम्बकीय विधि से भी उत्तर-दक्षिण का सहज ज्ञान हो सकता है। इन्हीं दो दिशाओं पर प्रकार से चापादि की रचना कर पूर्व-पश्चिम का भी ज्ञान किया जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि पूर्वकाल में शङ्कुविधि और ध्रुव तारादि की स्थिति से दिशाओं का ज्ञान किया जाता था किन्तु वर्तमान में चुम्बक, दिशासूचक यन्त्र से यह ज्ञान आसानी से किया जा सकता है। यद्यपि वराहमिहिर के काल (निधन 580 ई.) तक चुम्बक अस्तित्व में आ चुका था किन्तु कमलाकर भट्ट के सिद्धान्ततत्त्वविवेक के काल से चुम्बकीय विधि से आसानी से दिशाओं को पहचाना जाने लगा था। इससे उत्तर-दक्षिण ही नहीं, पूर्वा-पर दिशाओं के ज्ञान को भी सममण्डलीय कहा जाता था— सच्चुम्बकादेव सुशिल्पविज्ञाः कुर्वन्ति दिग्ज्ञानमितोऽन्यथैव। पूर्वापरा याऽत्र कृता प्रकारैर्ज्ञेया बुधैः सा सममण्डलीया॥ (सिद्धान्त. त्रिप्रश्नाधिकार 378)

अथ ध्रुवमत्स्यताराद्वयदर्शनद्वारा दिग्ज्ञानमुक्तं वास्तुराजवल्लभे (1, 11) —

ꞌ तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते

दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या ककुप्।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययोर्जाता
यत्र युतिस्तु शङ्कुतलयो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे॥ 8॥

तारेति। निशाकाले दिक्शोधन प्रकारं कथ्यते। मार्कटिका आकाशस्य चतुतारा विशेष, ध्रुवस्य उत्तरस्थ ध्रुवतारा, समतां मार्कटिका च ध्रुवस्य स अदिश्य, ततो अवलम्ब कृतम्। दीपाग्रेण प्रज्वलित दीपकस्य वर्तिकायां पूर्वोक्त अवलम्बनः स एकीकृतं तदनन्तर सूत्रपातम्। एवं विधय मण्डले छायामार्गाश्रित याम्योत्तर दिश च ज्ञातव्यम्। तथा चाऽपराजितपृच्छायां (63, 30-32):— अथ रात्रौ ध्रुवमसाध्यं दक्षिणोत्तरम्। मण्डलोभयपक्षे च मध्ये स्थाप्यं त्रिदीपकम्॥ एकसूत्रे यदा त्रीणि दीपशिखाग्रकाणि च। पूर्वसंस्थं ध्रुवसाध्यमपरस्थं च दीपकृत्॥ शस्तं तु मीनपातैश्च पूर्वापरादिसाधनम्। विकर्णकर्णगा साध्या ध्रुवशङ्कुप्राच्युद्भवः॥

भाषा— ध्रुव तारे से ऊपर मार्कटिका नाम की दो तारिकाएँ जब भ्रमण के दौरान तारे के साथ सीधी रेखा में आएँ, तो उस ओर ही उत्तर दिशा होती है, मार्कटिका की दोनों तारिकाओं तथा अवलम्ब के एक सूत्र में होने पर अवलम्ब के पीछे कलश पर दीपक रखने से यदि दोनों एक सूत्र में दिखें तो दीपक वाली दिशा दक्षिण होगी। दिशा के लिए 32 अङ्गुल का वृत्त बनाकर उसके बीच में 12 अङ्गुल का शङ्कु रखें, जहाँ उसकी छाया वृत्त में प्रवेश करे, वहां पश्चिम और जिधर सूर्योदय हो वह पूर्व दिशा होती है। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने से उनके योग में की गई रेखा पूर्व-पश्चिम होगी, जबकि उत्तर-दक्षिण को मिलाने वाली रेखा याम्योत्तरा होती है।

तथा च मयमते (6, 6-13)—

शङ्कुं कृत्वा दिनादौ तु स्थापयेदात्तभूतले॥
शङ्कुद्विगुणमानेन तन्मध्ये मण्डलं लिखेत्।
पूर्वापराह्णयोश्छाया यदि तन्मण्डलान्तगा॥
तद्बिन्दुद्वयगं सूत्रं पूर्वापरदिशोच्यते।
बिन्दुद्वयान्तर भ्रान्तशफराननपुच्छगम्॥
दक्षिणोत्तरगं सूत्रमेवं सूत्रद्वयं न्यसेत्।
उदगाद्यपरान्तानि पर्यन्तानि विनिक्षिपेत्॥
सूत्राणि स्थपतिः प्राज्ञः प्रागुत्तरमुखानि च।
कन्यायां वृषभे राशावपच्छायात्र नास्ति हि॥
मेषे च मिथुने सिंहे तुलायां द्व्यङ्गुलं नयेत्।
कुलीरे वृश्चिके मत्स्ये शोधयेच्चतुरङ्गुलम्॥

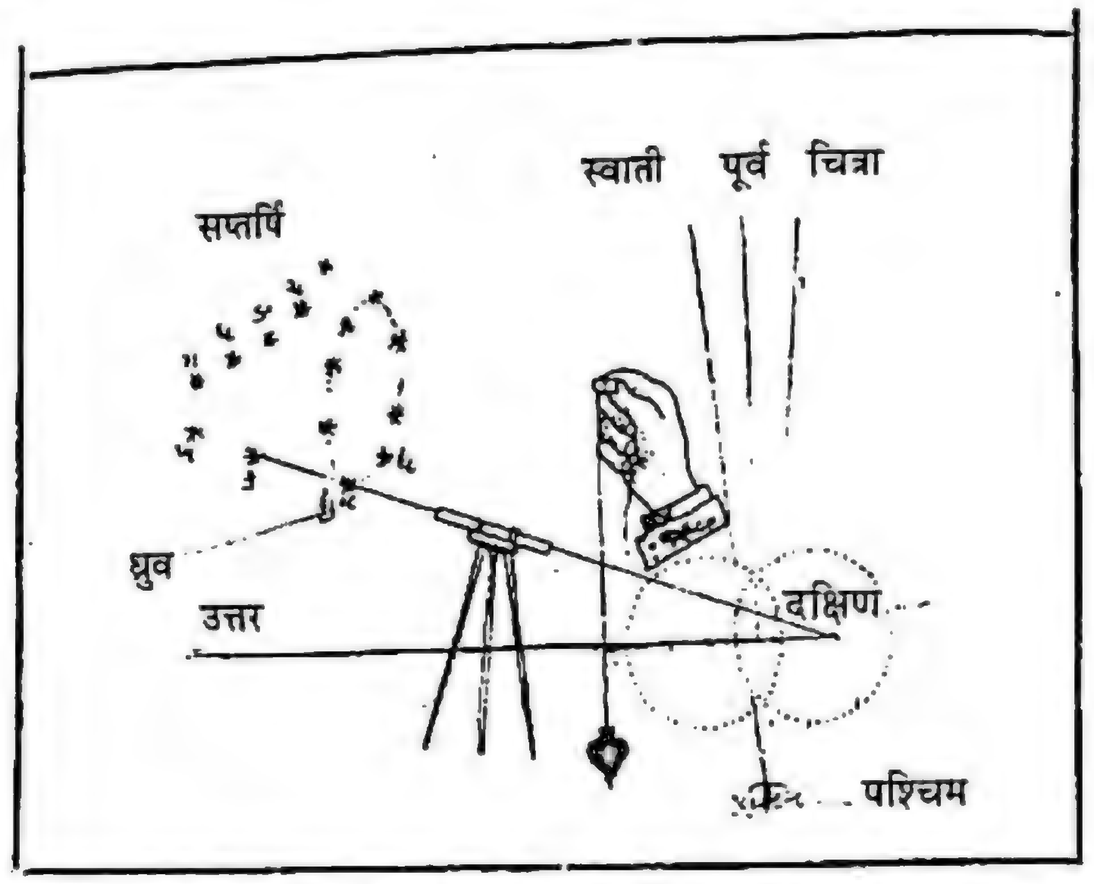

ध्रुव से मार्कटिक सहित दिशा साधन की प्राचीन विधि

धनुः कुम्भे षडङ्गुल्यं मकरेऽष्टाङ्गुलं तथा।
छायाया दक्षिणे वामे नीत्वा सूत्रं प्रसारयेत्॥

मय का कहना है कि दिनारम्भ पर उक्त शङ्कु को भूमि पर स्थापित करें। मध्य में शङ्कु से दोगुना प्रमाण का वृत्त बनाएँ। उस वृत्त पर सूर्य की छाया, दोपहर से पूर्व और बाद में जिस स्थान को इङ्गित करे, उसको चिह्नित कर दिया जाना चाहिए। यदि इन दोनों ही विन्दुओं को मिलाया जाए तो बनने वाली रेखा पूर्व-परा या पूर्व-पश्चिम होगी। उन दोनों ही विन्दुओं के बीच मत्स्याकृति बनाई जाए तो उससे शिखा-पुच्छ या उत्तर व दक्षिण दिशा का बोध हो सकता है। इस प्रसङ्ग में पूर्व व पश्चिम के विन्दु को केन्द्र बनाते हुए दो वृत्तों की रचना करें। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कन्या व वृष राशि में सूर्य के रहते अपच्छाया नहीं होती जबकि मेष, मिथुन, सिंह और तुला में अपच्छाया का प्रमाण दो अङ्गुल हो जाता है। इसी प्रकार कर्क, वृश्चिक और मीन में यह चार तथा धनु व कुम्भ राशि में सूर्य के रहते छह और मकरगत सूर्य में आठ अङ्गुल होती है। पूर्व व पश्चिम छाया में दायें व बायें उचित संशोधन करते हुए रेखा बनाकर दिशा ज्ञान करना चाहिए।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां दिग्ज्ञानाध्यायस्तृतीयः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में [illegible] तृतीय अध्याय पूर्ण हुआ॥ 3॥

अथ गृहचतुर्दिक्षु द्रुमरोपण-निर्णयाध्यायः चतुर्थः॥ 4॥

अथ सद्मनश्चतुर्दिक्षु वृक्षफलमुक्तं वास्तुराजवल्लभे (1, 28-30) —

वृक्षा दुग्धसकण्टाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वे कस्य हरेरवीशपुरतो जैनानु चण्ड्याः क्वचित्॥ 1॥

वृक्षा इति। दुग्धसकण्टकाः तथा च फलिनः [illegible] ये वृक्षास्ते गृहात् दूरतो दूरं त्याज्याः त्यक्तुं योग्याः। चम्पकपाटले शस्ते गृहसमीपे प्रशस्ते। तथा कदली, जाती, केतकी च शस्ता। यामात् प्रहरैकादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजा छाया गृहे न शस्ता। कस्य ब्रह्मणः गृहस्य पार्श्वे हरेर्विष्णोः, रवीशपुरतः रविः सूर्यः, ईशः शिवस्तयोः [illegible], [illegible] पुरतः अग्रे, जैनस्य मन्दिरस्यानु पश्चाद्भागे, चण्ड्याः, देव्याः मन्दिरस्य क्वचित् कुत्रचित् कस्मिन्नपि भाग इत्यर्थः। गृहनिर्माणं न शुभदम्। तथा च मण्डने— [illegible] नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्। प्रजाविनाशं फलिनः [illegible] गृहस्य [illegible] कलधौतपुष्पाः॥ *(राजवल्लभ. 1. 29)*

भाषा— घर के पास दूध वाले, काँटे तथा अधिक फल वाले वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए, ये वृक्ष दूर से ही [illegible] लेकिन चम्पा, पाटल, [illegible] तथा केतकी (केवड़ा) का रोपण करना चाहिए। जिस घर पर दिन के दूसरे [illegible] पहर में वृक्ष या मन्दिर की छाया पड़ती हो वह हितकारी नहीं है [illegible] प्रहर में पड़ने वाली छाया दोषरहित है। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और [illegible] के मन्दिर के सामने तथा जैन मन्दिर के सम्मुख [illegible] निर्माण नहीं करना चाहिए [illegible] चण्डीदेवी की स्थापना देवी मन्दिर [illegible] चाहिए।

वृक्षविशेषच्छेदननिषेधः गृहसमीपे शुभवृक्षः —

दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि विटपी नोच्छिद्यते शक्तितः
तद्वद्बिल्वशमो त्वशोकवकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ।
द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थकवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ॥ 2 ॥

दुष्ट इति। भूतसमाश्रितो दुष्टोऽपि विटपी वृक्षः शक्तितः न उच्छिद्यते। तद्वत् विल्वशमी, अशोकवकुलौ, पुन्नागसच्चम्पकौ, द्राक्षा, पुष्पकमण्डपं पुष्पवृतां वृक्षाणां मण्डपं, तिलकान् क्षुरकान् (तिलकः क्षुरकः श्रीमानित्यमरः), कृष्णां पिप्पलीं (कृष्णोप-कुल्या वैदेही मागधी चपला कणा। उपणा पिप्पली शौण्डी कालेत्यमरः), दाडिमीं करकां (समौ करकदाडिमावित्यमरः), वपेत् वपनं कुर्यात्। सौम्यादेरुत्तरतः सकाशात् कपित्थकवटौ कपित्थकश्च न्यग्रोध वटश्च कपित्थकवटौ दधित्यन्यग्रोधौ (कपित्थे स्युर्दधित्थग्राहिमन्मथाः इति, न्यग्रोधो बहुपाद्वट इति चामरः), औदुम्बराश्वस्थकौ औदुम्बरकुञ्जराशनौ, शुभदौ शुभदायकौ भवतः। एतदुक्तं भवति- गृहादुत्तरे कपित्थकः, पूर्वे वटः दक्षिणे औदुम्बरः पश्चिमेऽश्वत्थकः शुभद इति।

भाषा— दुष्ट तथा भूतहे वृक्षों को कभी नहीं काटना चाहिए। इसी तरह विल्व, खेजड़ा, आशापालक, मौलसरी, पुन्नाग व चम्पा को भी काटना वर्जित है। घर के सामने द्राक्ष-अँगूर, पुष्पदार बेल, चन्दन, पीपली, दाड़म इत्यादि का रोपण अच्छा माना गया है। इसी तरह आवास के उत्तर में कैथ, पूर्व में बड़ (बरगद), दक्षिण में उदुम्बर तथा पश्चिम दिशा में पीपल वृक्ष का आरोपण श्रेष्ठ माना गया है।

अथान्ये शुभाऽशुभवृक्षाः वास्तुप्रदीपे (31-36) —

क्षीरवृक्षा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा।
सकण्टका शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसञ्ज्ञकौ ॥ 3 ॥
अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः।
पुन्नागफलिनीनिम्बदाडिमाशोकजातिकाः ॥ 4 ॥
नागकेसरकं पुष्पं जपाकुसुमकेसरं।
जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवापराजिता ॥ 5 ॥
मधुविल्वाम्रभृङ्गाश्च नागराः ककुभादिकाः।
यत्र यत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ॥ 6 ॥
अश्वत्थकन्दं कन्दं च कदली बीजपूरकम्।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति ॥ 7 ॥
सर्वत्र पनसः शस्तो दक्षिणे सकलाः खलाः।

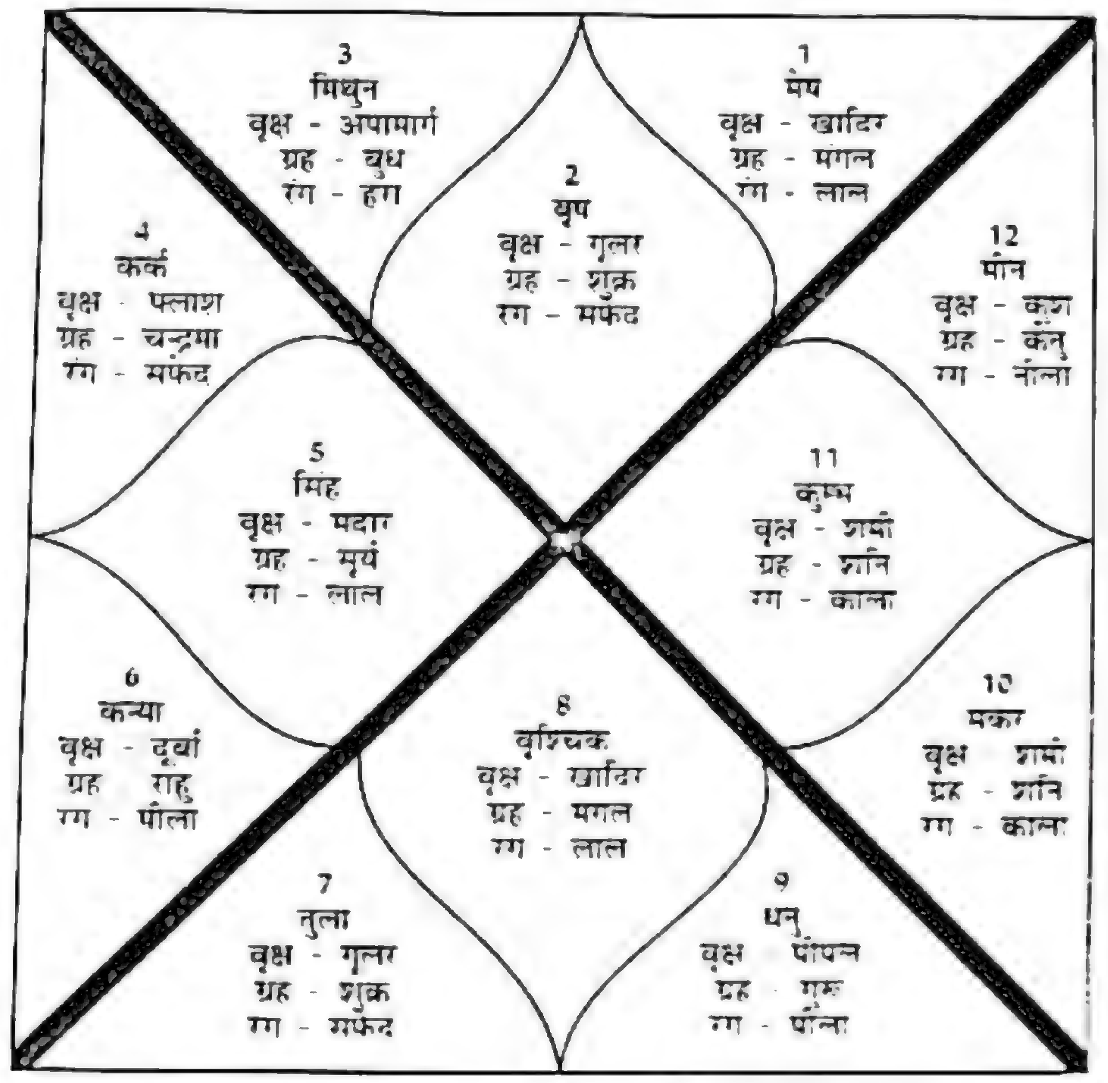

राश्यानुसार वाटिका विधान

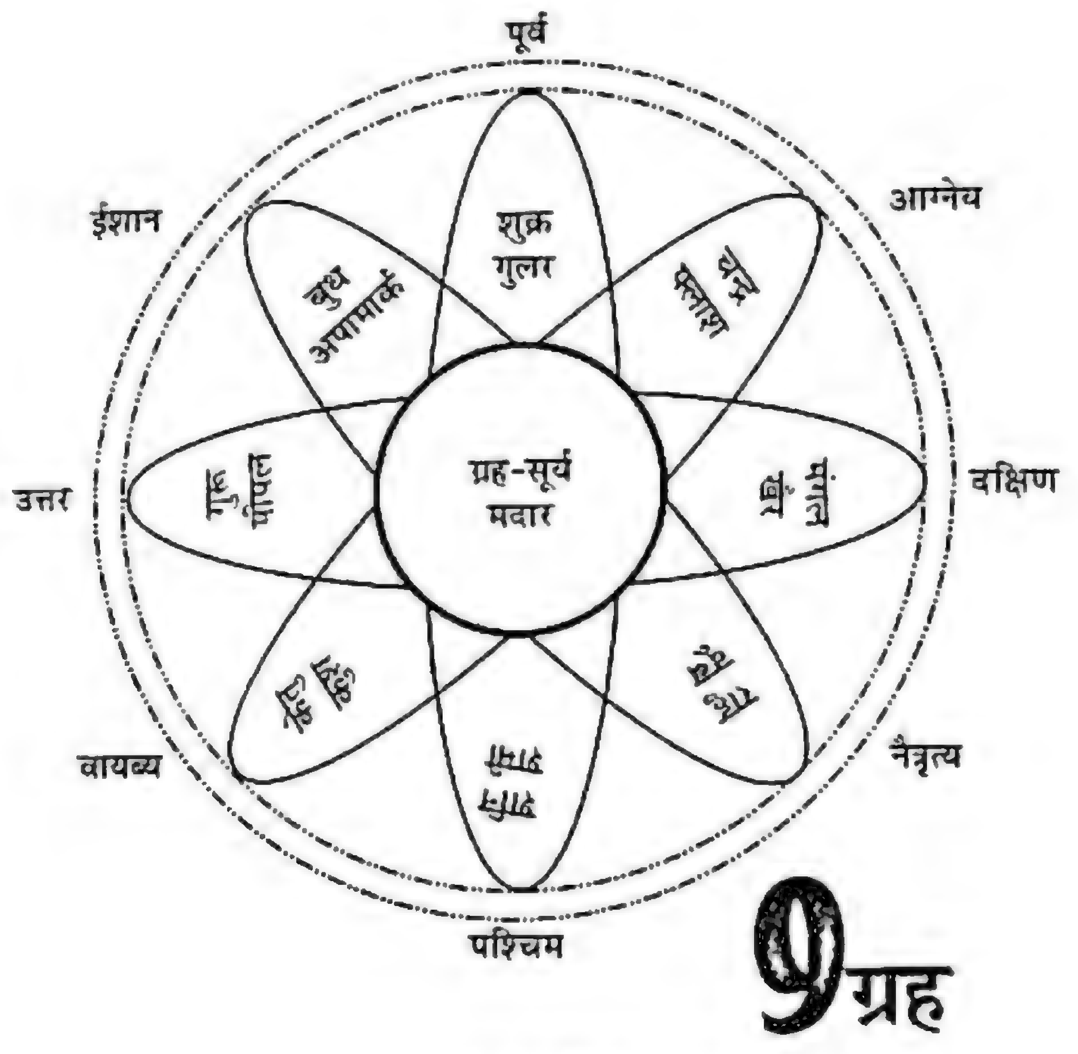

नवग्रह वाटिका

क्षीरवृक्षा इति। क्षीरवृक्षा दुग्धान्वितवृक्षाः, तथा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमाः- वटो न्यग्रोधः, अश्वत्थः, रक्तपुष्पद्रुमः ताम्रकुसुमद्रुमस्तेषां द्वन्द्वे वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमाः, सकण्टकाः कण्टकान्विताः, शाल्मकौ पिच्छिला च (पिच्छिला पूरणी मो चा स्थिरायुः शाल्मलिर्द्वयोरित्यमरः), प्लक्षोदुम्बरसञ्ज्ञकौ पर्कट्युदुम्बरनामकौ (प्लक्षो जटी पर्कटी स्यादित्यमरः) एते वृक्षाः अग्निकोणे सदा सर्वदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायका भवन्ति। पुन्नाग फलिनीनिम्बदाडिमाशोकजातिकाः - पुन्नागः केसरः (पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभ इत्यमरः) फलिनी प्रियङ्गुः (लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली इत्यमरः) निम्बः मन्दारः (पारिभद्रे भद्रे निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातक इत्यमरः) दाडिम प्रसिद्धो दाडिमवृक्षः, अशोकः जातिका मालती (सुमना मालती जातिरित्यमरः) एतेषां द्वन्द्वे पुन्नागफलिनीनिम्बदाडिमाशोकजातिकाः, नागकेसरकं पुष्पं चाम्पेयपुष्पं (चाम्पेयः केसरो नागकेसर इत्यमरः) जपाकुसुमकेसरे पुष्पे, जयन्ती, चन्दनं, वचाच अपराजिता मधु-बिल्वाम्रभृङ्गाश्च नागराः नारिकेलादयश्च यत्र यत्र ककुभादिकाः स्थिताः तत्र तत्र शुभाः भवन्ति। अश्वत्थकन्दं च कन्दं, कदली, बीजपूरकं यस्य मानवस्य गृहे प्ररोहन्ति आविर्भवन्ति स गृही न प्ररोहति नोन्नति प्राप्नोति। पनसः सर्वत्र सर्वस्यां दिशि शस्तः शुभदः। दक्षिणे सकलाः वृक्षाः खला दुष्टा भवन्तिः।

भाषा— खिरनी और अन्य दूध वाले वृक्ष, बबूल आदि कण्टक वाले वृक्ष, शाल्मली (सेमर), प्लक्ष (पाकड़), उदुम्बर (गूलर) ये वृक्ष यदि मकान से अग्निकोण में स्थित रहें तो सर्वदा दुष्टफल देने वाले, पीड़ाकारी एवं मृत्यु देने वाले होते हैं। पुन्नाग, फलिनी, निम्ब, दाडिम (अनार), अशोक व आशापालक, जाती (चमेली), नागकेशर, जपा (अड़हल), केशर, जयन्ती, रक्त चन्दन, वचा, अपराजिता, मधु (महुआ), बिल्व, आम, भृङ्ग (दालचीनी), नागर और नारियल ये वृक्ष चाहे जिस दिशा में स्थित हों, शुभदायक ही होते हैं। इसके विपरीत अश्वत्थ या पीपल, कदम्ब, कदली और नीबू जिस गृह में होते हैं, वह गृहपति उन्नति नहीं करता है। कटहल का वृक्ष सभी दिशाओं में प्रशस्त होता है। अन्य मत है कि दक्षिण में सभी वृक्ष अप्रशस्त माने जाते हैं।

विशेष— ब्रह्मवैवर्तपुराण के कृष्णजन्मखण्ड *(अध्याय 103)* में वृक्षों की मङ्गलमयता व वर्जनीयता का वर्णन मिलता है। विश्वकर्मा से श्रीकृष्ण कहते हैं कि गृहस्थों के आश्रम में नारियल का वृक्ष धन प्रदायक होता है। वह यदि शिविर के ईशानकोण या पूर्व दिशा में हो तो पुत्रप्रद होता है। पूर्व में आम का वृक्ष हो तो वह सम्पत्ति देने वाला होता है। बेल, कटहल, जम्बीर, नीम्बू तथा बेर के वृक्ष पूर्व में होने पर सन्तानदायक, दक्षिण में धनदाता तथा सर्वत्र सम्पत्ति प्रदान करने वाले होते हैं। इनसे गृहस्थ की उन्नति होती है। जामुन, केला और आँवला के वृक्ष पूर्व में बन्धुप्रद तथा दक्षिण में मित्रता को बढ़ाने वाले होते हैं और सर्वत्र शुभप्रद माने जाते हैं। नगर में

वृक्ष निषिद्ध हैं जो कि जंगली प्रजाति हों। वट वृक्ष रहना अनुचित है क्योंकि उससे चोरी की आशङ्का रहती है। सेमल का पेड़ भी नगर में उचित नहीं है। इमली का वृक्ष भी उचित नहीं है। वह बुद्धि एवं विद्या का विनाशक है। खर्जूर व अन्य काँटेदार वृक्ष अनुचित है। अन्नों में चना, शाकों में लौकी, कुम्हड़ा, अलाम्बु, पलाश, ककंटी, हल्दी, अदरक, हरितकी, आमलकी व ईख तथा वृक्षों में अशोक, सिरिस, कदम्ब को हमेशा शुभ माना गया है।

वास्तुविषयक अन्य ग्रन्थों में समराङ्गण सूत्रधार, वास्तुविद्या, मनुष्यालयचन्द्रिका, राजवल्लभ वास्तुशास्त्र, वास्तुसार मण्डनम्, मयमतम्, मानसारम्, विश्वकर्माप्रकाश, बृहत्संहिता, अपराजितपृच्छा, मानसोल्लास, शिल्पदीपक, वास्तुमञ्जरी आदि में भी इस प्रकार की अवधारणाएँ विद्यमान हैं। द्राविड़ वास्तुग्रन्थ मनुष्यालयचन्द्रिका (1, 22) में कहा गया है कि गृह की पूर्व दिशा में बकुल और वट का रोपण शुभ होता है। दक्षिण दिशा में उदुम्बर अथवा गूलर और चिञ्चा या इमली का पेड़ लगाना शुभ माना जाता है। गृह की पश्चिम दिशा में पीपल सप्तच्छद के वृक्ष शुभ माने गए हैं। उत्तर दिशा में नाग संज्ञक वृक्ष और प्लक्ष या पाकड़-पारस पीपल शुभ होते हैं और पूर्व दिशा में विशेष रूप से कटहल व सुपारी, नालिकेर और आम शुभ होते हैं।

यही मान्यता ईशानशिवगुरुदेवपद्धति की है कि न्यग्रोध, उदुम्बर, पीपल, प्लक्ष के पेड़ पूर्वादि क्रम से शुभ होते हैं। सर्वत्र केसर, आम, पुन्नाग, नाग, दाड़िम, पनस, चम्पक, पूग, श्रीफल आदि शोभित करने वाले हैं। इसी प्रकार का मत वास्तुविद्याकार *(2, 33)* का है—

क्रम	दिशा	रोपणयोग्य वृक्ष
1.	पूर्व	बकुल, बरगद और पनस
2.	दक्षिण	गूलर, इमली और सुपारी
3.	पश्चिम	पीपल और सप्तच्छद
4.	उत्तर	नाग, प्लक्ष और आम

वृक्षायुर्वेद और समराङ्गणसूत्रधार में आया है कि अपने गृह परिसर में बेर, केला, दाड़िम, बीजपूरक, नीम्बू आदि का कभी रोपण नहीं करना चाहिए। जहाँ पर इनका रोपण होता है, उस गृह में वंश नहीं फलता है—

बदरी कदली चैव डाडिमी बीजपूरिका।

प्ररोहन्ति गृहं यत्र तद् गृहं न प्ररोहति॥ *(वृक्षायुर्वेद 29, समराङ्गण. 48, 131)*

मत्स्यपुराणकार का मत है कि यदि कोई वृक्ष अशुभ हो तो उसे काटे नहीं, उसके

पास अन्य कोई शुभ वृक्ष लगा देना उचित है— न च्छिन्द्याद् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान्॥ *(मत्स्य. 255, 22)*

आजकल ग्रहवाटिका, देववाटिका और नक्षत्रवाटिकाओं का विकास भी नगरों में किया जाने लगा है। उदयपुर के प्रसिद्ध गुलाबबाग में ग्रह और नक्षत्र वाटिकाओं की स्थापना की गई है। इस प्रसङ्ग में ज्योतिष, पुराणों में अनेकत्र विवरण मिलता है। वामनपुराण में देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति का प्रसङ्ग मिलता है। पुराण का मत है कि आश्विन मास में विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई और उसी समय अन्य देवताओं के विभिन्न अङ्गों से नाना वृक्ष जातियों का उद्भव हुआ इसीलिए इन देवताओं की प्रीति उनके वृक्षों में रहती है। *(वामन. 18, 1-10)*

वामनपुराण ने वृक्षों की उत्पत्ति की पूरी सूची दी है- कामदेव के हाथ के आगे के भाग से कदम्ब की उत्पत्ति हुई, मणिभद्र से वट, शिव के हृदय से धतूर, ब्रह्मा के देह के मध्य भाग से खदिर, विश्वकर्मा के देह से कण्टकी, पार्वती के करतल से कुन्द-गुल्म, गणेश के कुम्भदेश से सिन्धुवारक, यमराज के दक्षिणपार्श्व से काला गूलर, रुद्र से अडुसा, स्कन्द से बन्धुजीवा, सूर्य से पीपल, कात्यायनी से शमी, लक्ष्मी के हाथ से बिल्व, शेषनाग की पूँछ व पीठ से श्वेत-श्याम दूर्वा तथा साध्य के हृदय से हरितचन्दन का उद्भव हुआ। देववाटिका में इन वृक्षों का रोपण किया जा सकता है।

पुराणकार का मत है कि इन वृक्षों में उनके देवताओं की स्वाभाविक प्रीति रहती है। ऐसे में इन वृक्षों के रोपण से उनके देवताओं की कृपा प्राप्त की जा सकती है। अतः इन पेड़-पौधों का वाटिका आदि स्थानों पर आरोपण किया जाना चाहिए। उक्त देवताओं के व्रतार्थियों और कृपा चाहने वालों के लिए यह एक कर्तव्य से कम नहीं है। पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में शिव द्वारा आजगव नाम धनुष सन्धान से त्रिपुर दानव के वध के बाद पृथ्वी पर रुद्र के पसीने के गिरने से रुद्राक्ष की उत्पत्ति की कथा दी गई है। रुद्राक्ष की चौदह प्रजातियों का विवरण भी आया है जो क्रमशः एक से लेकर चौदह मुख तक के बीज पैदा करते हैं।

पद्मपुराण में आँवले का महत्व एक कथा के साथ बताया गया है कि आँवला के सेवन से व्यक्ति की आयु बढ़ती है। उसका जल पीने से धर्म का सञ्चय होता है। उसके द्वारा स्नान करने से व्यक्ति की दरिद्रता का नाश होता है और समस्त ऐश्वर्य मिलता है। जिस घर में आंवला होता है, वहाँ पर दैत्य-दानव नहीं जाते। आंवले में विष्णु व लक्ष्मी का निवास माना गया है।

इसी पुराण में आगे शिव के मुख से कार्तिकेय के प्रति तुलसी की महिमा बताई गई है कि सब प्रकार के पत्तों और पुष्पों में तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गई है। विष्णु ने

पूर्वकाल में सम्पूर्ण लोकों का हित करने की इच्छा से तुलसी का रोपण किया था। जहाँ तुलसी का वन (वृन्दावन) है, वहां श्रीकृष्ण का सामीप्य है। ब्रह्मा और लक्ष्मी भी वहां पर समस्त देवताओं सहित प्रतिष्ठित है। अतः तुलसी के पौधे का पूजन, ध्यान, रोपण व धारण करना चाहिए—

पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः।
स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥ *(58, 131-132)*

ज्योतिष की मान्यता है कि वृक्षों की पूजा से नक्षत्रों की शान्ति होती है। नारद का मत ज्योतिर्निबन्धकार शूरमहाठ शिवराज और वृहदैवज्ञरञ्जनकार रामदीन दैवज्ञ ने उद्धृत किया है। इन ग्रन्थों के अनुसार वृक्षों की उत्पत्ति नक्षत्रों के अनुसार हुई है ऐसे में नक्षत्र दोष रहने पर उक्त वृक्ष की पूजा करने से शान्ति होती है– अरियोनिश्चारिवृक्षः पीडनीयः प्रयत्नतः। *(ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 43, 73)*

नक्षत्रानुसार वृक्ष का सम्बन्ध इस प्रकार है– अश्विनी में बाँस या वीश, भरणी में फालसा, कृत्तिका में गूलर, रोहिणी में जामुन, मृगशिरा में खैर, आर्द्रा में बहेड़ा, पुनर्वसु में बाँस, पुष्य में पीपल, आश्लेषा में नागकेसर, मघा में बरगद, पूर्वा फाल्गुनी में ढाक, उत्तरा फाल्गुनी में पाकड़ या प्लक्ष, हस्त में अरीठा, चित्रा में बेल, स्वाती में अर्जुन, विशाखा में पाह या कटाय, अनुराधा में मौलसरी, ज्येष्ठा में देवदारु या अरीठा, मूल में रालका या समस्त वृक्ष, पूर्वाषाढ़ा में जामुन या जलवेंत, उत्तराषाढ़ा में कटहल, श्रावण में आक, धनिष्ठा में जटामांसी या छोंकरा, शतभिषा में कदम्ब, पूर्वा भाद्रपद में आम, उत्तरा भाद्रपद नीम या सोनपाठा और रेवती में महुआ की उत्पत्ति हुई है। ऐसे में किसी भी नक्षत्र के अशुभ होने पर उस वृक्ष की पूजा करने से वही लाभ लिया जा सकता है जो कि रत्नधारण करने से लिया जा सकता है।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां गृहचतुर्दिक्षु वृक्षरोपण निर्णयाध्यायश्चतुर्थः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में गृह के चतुर्दिशाओं में वृक्षारोपण निर्णय नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ 4॥

अथ वास्तुपूजनविवेकाध्यायः पञ्चमः॥ 5॥

तत्र वास्तुपूजादिग्विचारो वास्तुप्रदीपे (गृह. वि. 101) —

सिंहादलेः कुम्भधराद् वृषाच्च त्रिभे त्रिभेऽर्के च बुधैर्निरुक्ता।
[1]रक्षामरुच्छम्भुकृशानुदिक्षु शुभाय कर्तुः खलु वास्तुपूजा॥ 1॥

व्याख्या — सिंहादित्रये सिंह कन्या च तुला रवौ सति नैर्ऋत्यकोण वास्तुपूजा कार्या। वृश्चिकादित्रये वृश्चिक धनु च मकर रवौ वायव्यकोणे वायव्यकोणे वास्तुपूजा कार्या। कुम्भादित्रये कुम्भ मीन च मेष रवौ ईशानकोणे वास्तुपूजा कार्या। वृषादित्रये वृष मिथुन च कर्क रवौ अग्निकोणे वास्तुपूजा कार्या।

भाषा— यदि सूर्य सिंह से लेकर कन्या और तुला राशिगत हो तो नैर्ऋत्य कोण में वास्तुपूजन किया जाना चाहिए। सूर्य यदि वृश्चिक, धनु और मकर राशिगत हो तो वायव्य कोण में; कुम्भ, मीन एवं मेष राशिगत हो तो ईशान कोण में और वृष, मिथुन एवं कर्क राशियों में सूर्य हो तो आग्नेय कोण में वास्तुपूजन किया जाना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्रम् —

क्रम	सूर्य की राशियाँ	पूजा योग्य कोण
1.	सिंह-कन्या-तुला	नैर्ऋत्य कोण
2.	वृश्चिक-धनु-मकर	वायव्य कोण
3.	कुम्भ-मीन-मेष	ईशान कोण
4.	वृष-मिथुन-कर्क	आग्नेय कोण

अथ वास्तुपुरुषस्योत्पत्ति तत्पूजाफलं चाह-वास्तुराजवल्लभे: (2, 1)—

सङ्ग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः स्वेदो महेशात्क्षितौ-
तस्माद्भूतमभूच्च भीतिजननं द्यावापृथिव्योर्महत्।

---

1. 'रक्षोमरुच्छम्भुकृशानदिक्षु मुखायविशो खलु वास्तुपूजा॥' इति पाठ।

तद्देवैः सहसा निगृह्य निहतं भूमावधोवक्त्रकं
देवानां वचनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव पूज्यो बुधैः ॥ 2 ॥

सङ्ग्रामेति। अन्धकरुद्रयोः अन्धकासुरमहेशयोः, संग्रामे युद्धे, महेशात् शिवात्, क्षितौ पृथिव्यां, स्वेदो धर्मोदकम्, पतितम्। तस्मात्स्वेदात् भूतं जन्तुविशेषोऽभूत् सञ्जातः, किम्भूतं द्यावापृथिव्योः महदधिकं भीतिजननं भयकारकम्। तद्भूतं, दैवैरमरैः, सहसा निगृह्य सङ्गृह्य, भूमौ क्षितौ, अधोवक्त्रकं अधोमुखं, निहितं निक्षिप्तम्, देवानाममराणां, वचनाद्वाक्यात्, वरदानादित्यर्थः, वास्तुपुरुषोऽभूत्। तेनैव हेतुना, बुधैः पण्डितैः, असौ पूज्यः पूजनीयः।

भाषा— प्राचीन काल में अन्धकासुर नामक राक्षस हुआ था जिसके साथ युद्ध करते समय भगवान् महादेव को पसीना आ गया। इसकी एक बूँद पृथ्वी पर गिरी तो उसमें से एक भयानक प्राणी प्रादुर्भूत हुआ। देवताओं ने मिलकर उसे औंधे मुँह पटक दिया तथा उस पर दृढ़ता से निवास किया। उस प्राणी को ही कालान्तर में वास्तुपुरुष कहा गया।

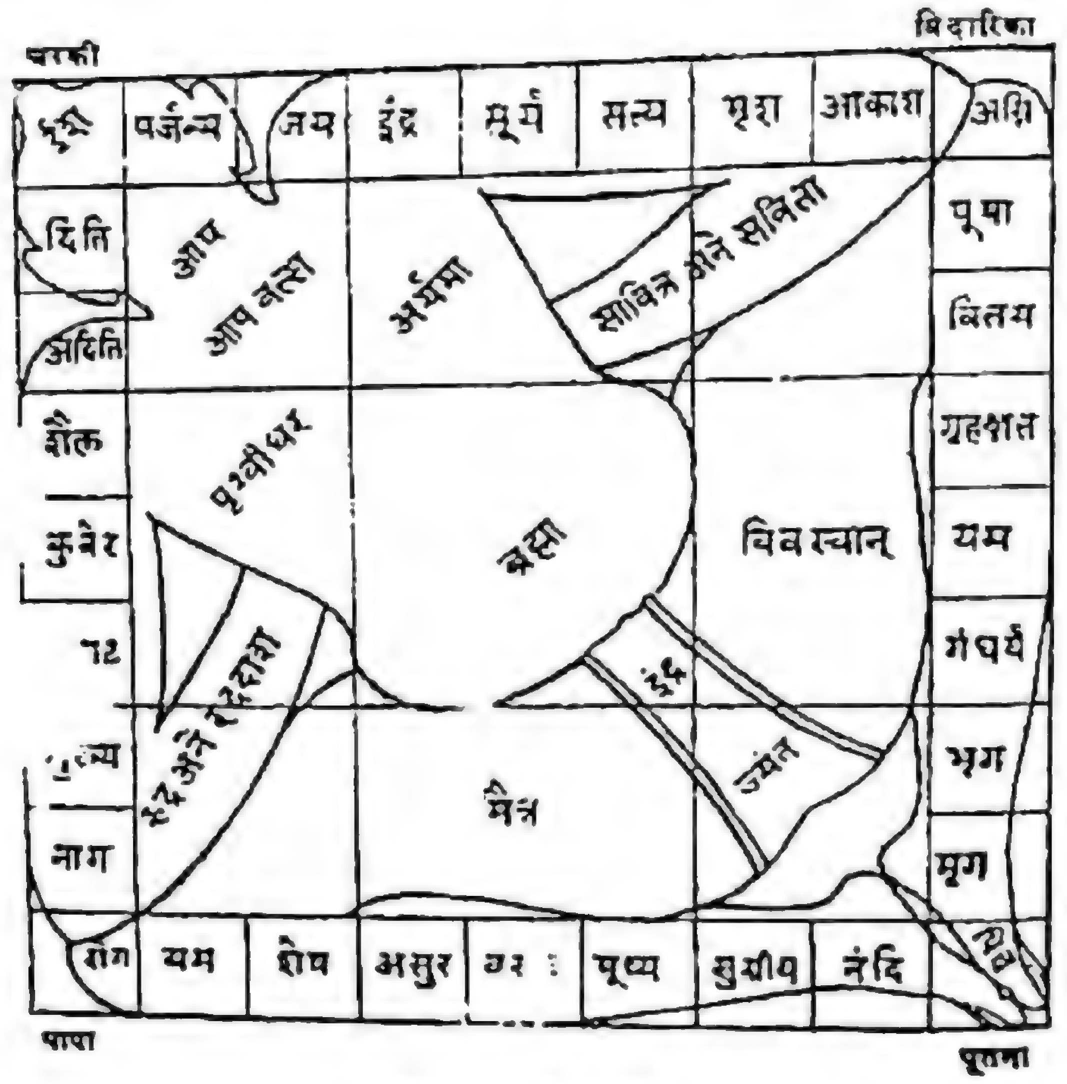

वास्तुपुरुष की स्थिति

विशेष— पुराण और साम्प्रदायिक ग्रन्थों में भी वास्तुपुरुषोत्पत्ति का कथानक मिलता है। यथा—

वास्तुपुरुषकथावस्तुसङ्क्षेपः— पुरा किल देवासुरे युद्धे विष्णुसाह्येन पराजितानां स्वशिष्याणां विजयाय सलक्षणम् छागमभिचारविधानेन जुह्वतः शुक्रस्य स्वेदाम्भःकणिकायामग्नौ पतितायां तत एको महासुरोऽतिभीषणाकारः समुद्भूत्। छागाननत्वाच्छागासुर इति प्रख्यातः स चासुरसम्राट स्वपितुः शुक्रस्याज्ञया देवान् भुजबलेन विद्राव्य तदाश्रयाणां लोकानामपि महत् कदनमुपजनयन्नवर्तत। अथ शुक्रतपःप्रभावात् क्षणे-क्षणे वर्धिष्णुनामुना वीर्योत्सिक्तेन महासुरेण बहु कदर्थिता देवाः कालपर्ययात् किञ्चिदपि प्रतिकर्तुमपारयन्तो दुष्टदमनदीक्षितं भगवन्तं त्रिपुरान्तकं शरणमापुः। ततः स्वभक्तेभ्यो द्रुह्यतेऽस्मै क्रूराय क्रुध्यन् कृपानिधिर्महादेवोऽस्य प्रशमनाय स्वतृतीयनेत्रात् सर्वसंहारक्षमं प्रलयानलमुत्थाप्य तमभि प्राहिणोत्। ज्वालामालया व्याप्तदिगन्तराले तस्मिंश्च कालानले त्रिलोकीं भ्रमन्तमपि तमभिद्रुत्य दग्धुमुपस्थिते स छागासुरो भीतभीतः प्रशान्तमनाः शरणकामनया तनीयसीं तनुमाश्रित्य महेश्वरस्योदरं प्रविवेश। तेन तुष्टो भगवानस्मै अभयं प्रदाय शुक्ररूपेण स्वोदरात् तं निर्गन्तुमाज्ञापयत्। तथा निर्गतत्वात् तदाप्रभृति शुक्र इति प्रथितः स भगवन्तं दण्डवत् प्रणत एव सन् क्षोणीतले वस्तुं, स्वशरीरे ब्रह्मादिका नवस्थापयितुं च वरमयाचत। *(वास्तुविद्या 4. 47)*

एक आख्यान के अनुसार पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में विष्णु के पक्ष के देवता तब पराजित हो गए जब कि शुक्राचार्य ने अपने शिष्यों की सहायता के लिए अपने पसीने की बूँदों से छागरूपेण महान् असुर को उत्पन्न किया। वह क्षण-क्षण विस्तार हो पाता जाता था। ऐसे में देवताओं ने त्रिपुरारी शङ्कर की शरण ली और उनसे इस असुर से मुक्ति की याचना की। शङ्कर ने अपने तृतीय नेत्र को खोला जिससे वह असुर भयाक्रान्त होकर भागने लगा। कई उपायों के बाद उसे भूमितलस्थ किया गया। इसी अवसर पर ब्रह्मादि देवताओं ने उसे मानवद्वारा निर्मित भवन, प्रासाद आदि के लिए कृत वास्तुयज्ञ के दौरान बलि आदि मिलने का वरदान दिया—

तदनुसारेण भगवानपि—'वस्तुं वरं त्वया।
वृतोऽहं यत् ततो नाम्ना वास्तुकोऽसि तथास्तु ते।
वसन्तु च त्वयि प्रीताः शतानन्दादिदेवताः॥
अद्यप्रभृति भूलोके देवं वास्तुकं मानुषम्।
कुर्वते वास्तु वासार्थं प्रथमं त्वां यजन्तु ते॥
पुरेषु भूमदीपेषु [illegible]।
त्वं च त्वद्देहसंस्थाश्च पूज्याः [illegible]

एवं मयैव विहितं कुर्वतां वास्तुपूजनम्।
तदायतनवेश्मादौ वसतां सन्तु सम्पदः॥[1]
अकृत्वा वास्तुयजनं प्रासादभवनादिकम्।
कृतं तदासुरं सर्वं भूयात् तत्र च यत् कृतम्॥' *(ईशानशिवगुरुदेवपद्धति क्रियापाद, उत्तरार्ध 26, 117-123)* इति तस्मै वरं दत्तवान्। तच्छरीरे वस्तुं देवान् न्ययोजयच्च। तेन स महेशं प्रणत एवाद्यापि क्षोणीतले शेत इति। एषा च कथा शैवसम्प्रदायप्रवृत्तानां गुरुदेवादीनां मतमनुसृत्य विवृता। वराहमिहिरस्तु—

'किमपि किल भूतमभवद् रुन्धानं रोदसी शरीरेण।
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम्॥
यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव।
तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास॥' *(बृहत्संहिता 52, 2-3)*

ईशानशिवगुरुदेव के मतानुसार वास्तुपुरुष को नामाभिधान के साथ ही शिव से यह वरदान मिला था कि तुम्हारे पर शतानन्दादि देवता प्रीतिपूर्वक निवास करेंगे। तुम्हारे पर ही देवता और मनुष्य आश्रय लेंगे। वे बसने पूर्व यज्ञादि करेंगे। पुष्प, धूप, दीप, बलि आदि प्रदान करते रहेंगे। आश्रय देवताओं का क्रमानुसार पूजन करेंगे और वास्तु-पूजन कृत्य का सम्पादन करेंगे। यदि वे यह कृत नहीं करेंगे तो वहाँ पर असुरों का निवास हो जाएगा।

वराहमिहिर ने वास्तुपुरुष की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी है कि पुराकाल में अपने शरीर से पृथ्वी और आकाश को ढाँक देने वाले किसी अज्ञात व्यक्ति का उद्भव हुआ। उसको देवताओं ने पकड़कर नीचे मुख करते हुए पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। उस काल में जो देवता उसके जिस अङ्ग को ग्रहण किए हुए थे, उन्होंने उसी अङ्ग में अपना स्थायी स्थान कर लिया। उस देवमय अपरिचित व्यक्ति को ब्रह्मा ने वास्तुपुरुष की संज्ञा प्रदान की।

अथ वास्तुपुरुषपूजनमावश्यकमाह वास्तुराजवल्लभे: (2, 2) —

प्रासादे भवने तडागखनने कूपे च वाप्यां वने
जीर्णोद्धारपुरेषु यागभवनप्रारम्भनिर्वर्तने।
वास्तोः पूजनकं सुखाय कथितं पूजां विना हानये
'तस्माद्यत्नपरेण तत्करजतः सम्पूजनीयः सता॥ 3॥

प्रासाद इति। प्रासादे प्रासादनिर्माणे, भवने गृहनिर्माणे, तडागखनने, कूपे कूपखनने,

---

1. 'पादौ रक्षसि के शिवेऽहिकरयोः सन्धौ च कोणद्वये॥' इति प्रकाशितपाठे।

वाप्यां वापीनिर्माणे, वने वननिर्माणे, जीर्णोद्धारपुरेषु, यागभवनप्रारम्भनिर्वर्तने यज्ञगृहारम्भावसाने, वास्तोः वास्तुपुरुषस्य, पूजनकं पूजनं, सुखायं कल्याणाय, कथितम्। पूजां विना हानये क्षत्यै भवति।

भाषा— सामान्यतः प्रासाद या देवालय, भवन, तालाब, कूप, बावली के खनन, वाटिकार्थ वृक्षारोपण, जीर्णोद्धार, नगर निवेश, यज्ञमण्डप जैसे कार्यों के प्रारम्भ और समापन पर वास्तुपूजा से सुख मिलता है और ऐसा नहीं करने से हानि उठानी पड़ती है। (यहाँ ज्ञातव्य है कि वास्तुपुरुष उलटा सोया हुआ है। उसके पाँव नैर्ऋत्य कोण में तथा दोनों तलवे संयुक्त होते हैं। सुषुप्तावस्था में वास्तुपुरुष का सिर ईशान कोण में, कोहनियाँ तथा घुटने (सन्धियाँ) अग्नि और वायव्य कोण में स्थित होते हैं)।

अथ वास्तुपूजने पदव्यवस्थामाह वास्तुराजवल्लभे: (2, 3) —

क्षेत्राकृतिर्वास्तुरिहार्चनीयस्त्वेकांशतो भागसहस्रयुक्तः।
साधारणोऽष्टाष्टपदोऽपि$_{64}$ तेषु चैकाधिकाशीतिपदस्तथैव$_{81}$ ॥ 4॥

क्षेत्राकृतिरिति। क्षेत्राकृतिः वास्तुः वास्तुपुरुषः इहात्रार्चनीयः पूजनीयः, क्षेत्राकृतिः कीदृश इत्यत आह-एकांशत एकांशात्, भागसहस्रयुक्तः सहस्रेण भागेन युक्तः। तेषु पूर्वप्रतिपादितेषु अष्टाष्टपदः साधारणः, तथैव चैकाधिकाशीतिपदोऽपि साधारण एवेत्यर्थः।

भाषा— वास्तुपूजन के लिए निर्धारित क्षेत्र की आकृति के अनुसार ही वास्तुपद विन्यास करना चाहिए। पूजा के लिए यह वास्तुपद एक पद से लेकर एक हजार पद पर्यंत तक की आकृति वाला बनता है। साधारणतया 64 और 81 पद के वास्तु की आकृति की पूजा करना तो आवश्यक ही है।

चतुःषष्टिपद-वास्तुचक्रम्

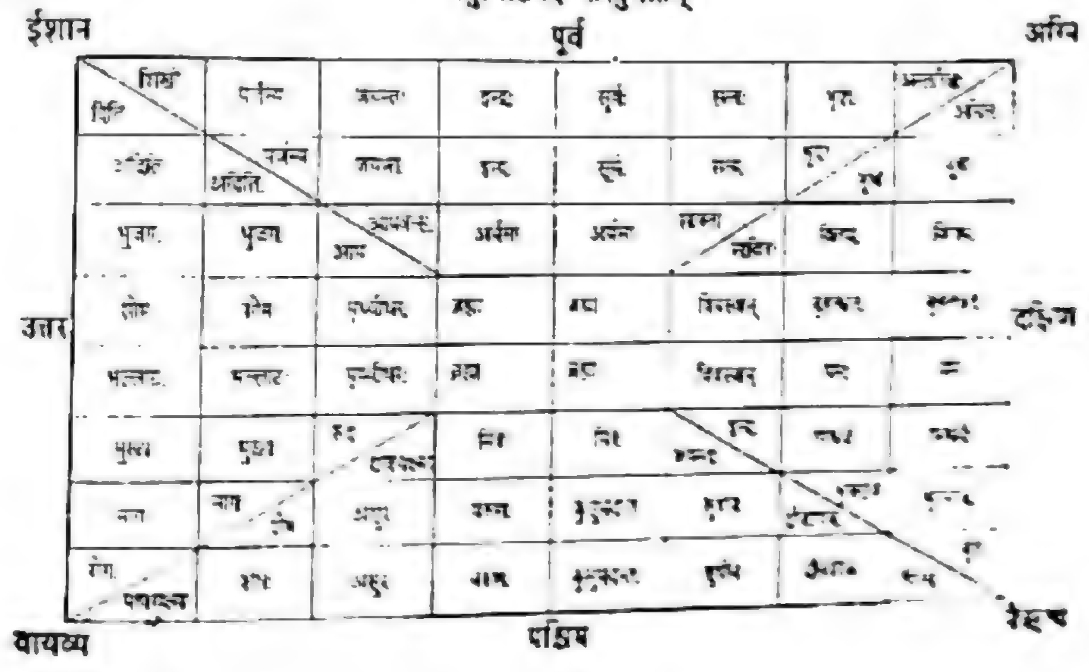

तत्र विशेषमाह कस्मिन् कर्मणि कीदृशो वास्तुपुरुषः पूजनम् (2, 4)—

ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुष्षष्टिकै-
रेकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवाब्ध्यंशकैः।
प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे
कूपे षण्णवचन्द्रभागसहिते वाप्यां तडागे वने॥ 5॥

व्याख्या— ग्रामे, राजमन्दिरे, नगरनिर्माणे, चतुषष्टिकैः पदैर्वास्तुपुरुषः पूज्यः। एकाशीतिपदैः समस्तभवने। नृपादिसाधारणपुरुषाणां भवनारम्भे वास्तुपुरुषः एकाशीतिपदैः पूज्यः। जीर्णगृहे जीर्णोद्धारे क्रियमाणे एकोनपञ्चाशदंशकैः पूज्यः। प्रासादारम्भे शतांशकैः पूज्यः। सकलेऽपि शतांशकैः पूज्य इति।

भाषा— नियम यह है कि ग्राम स्थापना करने पर, राजमहल निर्माणावसर और नगर निवेश के अवसर पर 64 पद के वास्तुपूजन का विधान है। इसी तरह सभी प्रकार के गृह के लिए 81 पद वास्तु, जीर्णोद्धार के प्रसङ्ग में 49, मन्दिर-मण्डप के लिए 100 तथा कुएँ, तालाब व वन-उद्यान के निर्माण प्रसङ्ग में 196 पद के वास्तु का पूजन करना चाहिए।

अथ वास्तुपुरुषाङ्गेषु पूज्यदेवा उक्ता वास्तुराजवल्लभे (2, 5-6) —

ईशो मूर्ध्नि समाश्रितः श्रवणयोः पर्य्यन्यनामादिती
आपस्तस्य गले तदंशयुगले प्रोक्तौ जयश्चादितिः।
उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि
पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः॥ 6॥
सावित्रः सविता च दक्षिणकरे वामे द्वयं रुद्रतो
मृत्युमत्रगणस्तथोरुविषये स्थान्नाभिपृष्ठे विधिः।
मेढ्रे शक्रजयौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ
पूषा नन्दिगणादिसप्त विबुधा गुल्फे पदे पैतृकाः॥ 7॥

ईश इति। तस्य वास्तुपुरुषस्य, मूर्ध्नि शिरसि, ईशो महादेवः, श्रवणयोः कर्णयोः पर्यन्यनामादिती स्थाप्ये, एकत्र पर्य्यन्यनामा देवः अपरत्र दितिः स्थाप्या। गले आपः स्थाप्याः। तदंशयुगले तस्यांशद्वये जयोऽदितिश्चस्थाप्यौ। स्तनयुगे स्तनद्वये, अर्यमभूधरौ स्थाप्यौ। आपवत्सः हृदि हृदये। इन्द्रादिपञ्चसुरा दक्षिणभुजे स्थाप्याः। वामे भुजे च नागादयः स्थाप्याः। दक्षिणकरे सावित्रः सविता च स्थाप्यः। वामे करे रुद्रतो द्वयं स्थाप्यम्। तथा ऊरुविषये मृत्युः मैत्रगणश्च स्थाप्यौ। नाभिपृष्ठे विधिः स्यात्। मेढ्रे शक्रजयौ स्थाप्यौ। जानुयुगले तौ वह्नि रोगौ स्मृतौ। गुल्फे पूषानन्दिगणादिसप्तविबुधाः स्थप्याः। पदे पैतृकाः स्थाप्याः।

भाषा— वास्तुपुरुष के सिर पर ईश की स्थिति होती है और दोनों कर्णों पर पर्जन्य, गले में आपदेव, दोनों कन्धों पर जय एवं अदिति, दोनों स्तनों पर अर्यमा व भूधर, हृदय पर आपवत्स, दायीं भुजा पर इन्द्र सहित पाँच देव, बायीं भुजा पर नाग सहित पाँच देव, दायें हाथ पर कोहनी तक सावित्र और सविता, बायें हाथ पर रुद्र व रुद्रदास, उरु पर मृत्यु व मैत्रगण, नाभि के पृष्ठ भाग पर कमर से थोड़ा ऊपर (चूंकि वास्तुपुरुष उल्टा सोया है) ब्रह्मा, उपस्थ पर इन्द्र तथा जय, दोनों जानुओं में अग्नि एवं रोग का, दोनों गुल्फों पर पूषा एवं नन्दी गणादि सात देव तथा एड़ियों पर पितृदेव की स्थापना की जानी चाहिए।

अथैकाशीतिपदस्य प्राशस्त्यात्तदुद्धारपूर्वकं पूज्यदेवतास्तत्रैवोक्ताः (2, 7-12)-

ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्य्याः सत्यो भृशाकाशक एव पूर्वे।
वह्निश्च पूषा वितथाभिधानो गृहक्षतः प्रेतपतिः क्रमेण॥ 8॥
गन्धर्वभृङ्गौ पितृमातृसञ्ज्ञौ द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः।
जलाधिनाथोऽप्यसुरश्च शेषः सपापयक्ष्मापि च रोगनागौ॥ 9॥
मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैलास्तथैव बाह्ये ह्यदितिर्दितिश्च।
द्वात्रिंशदेवं क्रमतोऽर्चनीयास्त्रयोदशैवं त्रिदशाश्च मध्ये॥ 10॥
प्रागर्यमा दक्षिणतो विवस्वान् मैत्रोऽपरे सौम्यदिशो विभागे।
पृथ्वी..ऽर्च्यस्त्वथ मध्यतोऽपि ब्रह्मार्चनीयः सकलेषु नूनम्॥ 11॥
आपापवत्सौ शिवकोणमध्ये सावित्रकोऽग्नौ सविता तथैव।
कोणे महेन्द्रोऽथ जयस्तृतीये रुद्रोऽनिलेऽर्च्योऽप्यथ रुद्रदासः॥ 12॥
ईशानबाह्ये चरकी द्वितीये विदारिका पूतनिका तृतीये।
पापाभिधा मारुतकोणके तु पूज्याः सुरा उक्तविधानतस्तु॥ 13॥

ईशस्त्विति। पूर्वे पूर्वस्यां दिशि ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्याः सत्यो भृशाकाशकः एव निश्चयेनार्चनीयः। दक्षिणे वह्निश्च पूषावितथाभिधानः गृहक्षतः प्रेतपतिः गन्धर्वभृङ्गौ मृगपितृसंज्ञौ क्रमेणार्चनीयौ। पश्चिमे द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः जलाधिनाथः असुरश्च शेषः सपापयक्ष्मा च रोगनागौ समर्चनीयौ। उत्तरे मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैला अर्चनीयाः बाह्येऽदितिर्दितिश्चार्चनीया। एवं द्वात्रिंशद्देवाः क्रमेणाऽर्चनीयाः। एवं त्रयोदश त्रिदशा मध्येऽर्चनीयाः।

प्रागर्यमा पूर्वस्यां दिशि अर्यमा, दक्षिणतो दक्षिणे विवस्वान् सूर्यः, अपरे पश्चिमे मैत्रः सौम्यदिशो विभागे उत्तरदिशि पृथ्वीधरः अर्च्यः। सकलेषु कर्मसु मध्ये [illegible] ब्रह्मा अर्चनीयः।

शिवकोणमध्ये ईशानकोणमध्ये [illegible]

सविता, तृतीये कोणे नैर्ऋत्यकोणे महेन्द्रोऽथ जयः, अनिले वायव्यकोणे रुद्रः अथ रुद्रदासः अर्च्यः।

ईशानबाह्ये चरकी, द्वितीयेऽग्निकोणे विदारिका, तृतीये नैर्ऋत्यकोणे पूतनिकामारुतकोणके वायुकोणे पापाभिधा उक्तविधानतः सुराः पूज्याः।

भाषा— इस प्रकार पूर्वादि क्रम से ईशान कोण में ईश की पूजा करनी चाहिए जबकि इस कोण तथा पूर्व दिशा के बीच सात वर्गों में पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, भृश व आकाश की पूजा होगी। अग्नि कोण में अग्नि की, दक्षिण के बीच के सात वर्गों में पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्ग व मृग की पूजा करें। इसी तरह नैर्ऋत्य कोण में पितृदेव की तथा इसके व पश्चिम के बीच सात वर्गों में नन्दी या दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष व पापयक्ष्मा की पूजा एवं वायव्य कोण में रोग व इस कोण तथा उत्तर दिशा के सात वर्गों में नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति एवं दिति देवों की स्थापना कर पूजना चाहिए। इसी क्रम में उक्त 32 देवों की बाहर के वर्गों में तथा 13 देवों के मध्य के वर्गों में पूजा करनी चाहिए। ऊपर के वर्गों से नीचे के वर्गों की पूर्व दिशा में अर्यमा, दक्षिण में सूर्य, पश्चिम में मैत्र व उत्तर में भूधर के बाद अन्य सभी वर्गों में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए। ईशान कोण में आप तथा आपवत्स, अग्नि कोण में सावित्र तथा सविता, नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र और जय एवं वायव्य कोण में रुद्र, रुद्रदास की पूजा करनी चाहिए। उक्त क्रम से वास्तुमण्डल के बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्निकोण में विदारिका, नैर्ऋत्य में पूतना और वायव्य कोण में पाप नामक देव की पूजा करनी चाहिए।

एकाशीति-पद-वास्तु-चक्रम्

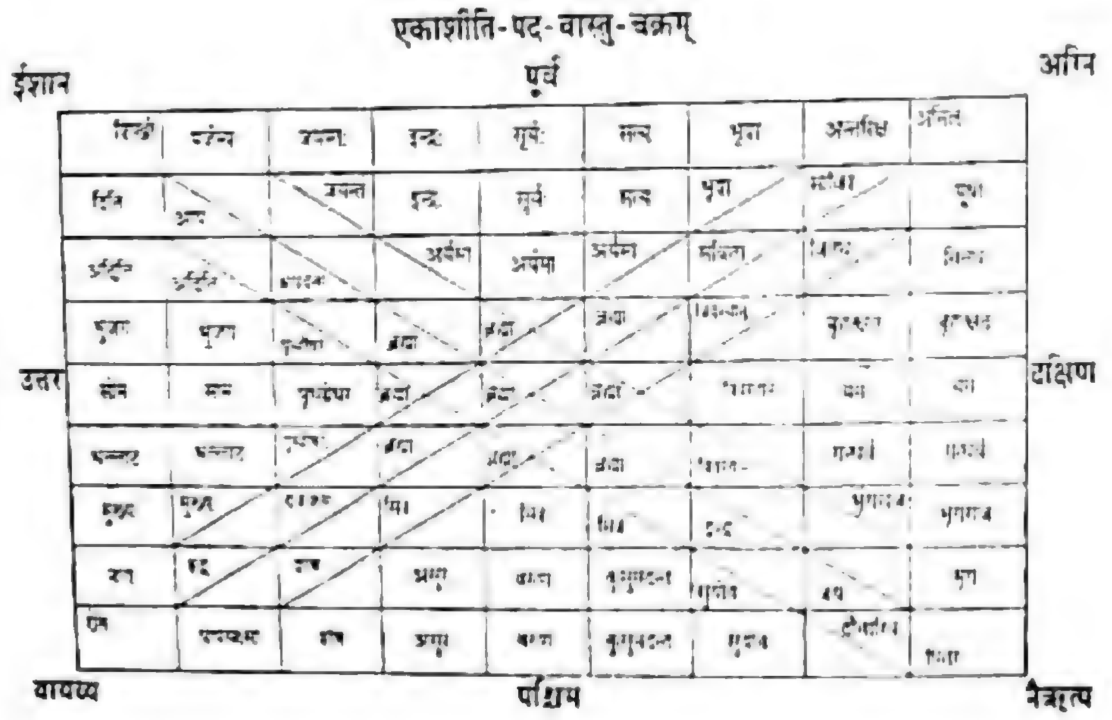

इत्यमनन्तर प्रसङ्गात् वास्तुदेवतानिघण्टुमाह (अपराजित. 56 1-17)—

निघण्टुः प्रोच्यते नानावास्तुपदनिवासिनाम्।

ईशादीनां च देवानां प्रदक्षिणमनुक्रमम्॥

विश्वकर्मा ने वास्तुपदों के निवासी नाना देवताओं के वास्तुपद के निवास को ईशादि देवताओं के प्रदक्षिणा क्रम से निघण्टु के रूप में बताया है।

ईशश्च शङ्करो देवः पर्जन्यो वृष्टिकारकः।

जयन्तः काश्यपो देवः स्वयं वृष्टिकरो मुनिः॥

(निघण्टु के अनुसार) ईश शङ्कर देव है; पर्जन्य वृष्टिकारक देव है; जयन्त काश्यपदेव भी स्वयं वृष्टिकर्ता मुनि है।

महेन्द्रश्च सुराधीश आदित्यश्च प्रभाकरः।

सत्यश्चैव स्वयं धर्मो भृशो मन्मथ उच्यते॥

महेन्द्र सुराधीश इन्द्र है और आदित्य प्रभाकर (सूर्य) है; सत्य तो स्वयं धर्मराज ही है तथा भृश को मन्मथ कामदेव कहते है।

नभोऽन्तरीक्ष आकाशमग्निस्तेजः समुद्भवः।

पूषा मातृगणाश्चैव चाधर्मो वितथाभिधः॥

नभ, अन्तरिक्ष, आकाश तथा अग्नि को तेज समुद्भव भी कहते हैं; पूषा को मातृगण और अधर्म को वितथ नाम दिया गया है।

गृहक्षतो बुधश्चैव यमः प्रेताधिपस्तथा।

गन्धर्वो नारदः प्रोक्तो भृङ्गराण् निर्ऋतः सुतः॥

गृहक्षत को बुध तथा यम को प्रेतों का राजा या प्रेताधिप भी कहते हैं; गन्धर्व को नारद व भृङ्गराट् को निर्ऋत सुत कहा है।

मृगोऽनन्तः स्वभूर्धर्मो विश्वेदेवास्तु पितरः।

दौवारिको भवेन्नन्दी सुग्रीवो मनुदेवता॥

मृग को अनन्तः स्वभूः को धर्मः विश्वेदेवों को पितर, दौवारिक को नन्दी, सुग्रीव को मनु देवता कहा है।

महाजवः पुष्पदन्तो वरुणः सलिलाधिपः।

असुरो राहुराख्यातः शोषः सौरिः शनिश्चरः॥

महाजव को पुष्पदन्त; वरुण को सलिलाधिप तथा असुर को राहु कहा है और शोष को सौरि या शनिश्चर भी कहते है।

पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो ज्वरो रोगश्च दूषकः।

नागस्तु वासुकिः प्रोक्तो मुख्यस्त्वष्टा च विश्वकृत्॥

पापयक्ष्मा को क्षयः ज्वर को रोगदूषक, नाग को वासुकी और मुख्य त्वष्टा को विश्वकृत कहा गया है।

भल्लाटश्चन्द्र इत्युक्तः सोमश्चैव कुबेरकः।

गिरिश्च हिमवान् शैलो ह्यदितिः श्रीः प्रकीर्तिता॥

भल्लाट को चन्द्र कहा है और सोम को कुबेर बताया गया है; गिरि को हिमवानशैल तथा अदिति को श्री के रूप में जानना चाहिए।

वृषध्वजो दितिः शर्व आपश्चैव धरार्णवः।

आपवत्स उमापत्यं ह्यर्यमा स्यात्तु भास्करः॥

दिति को वृषध्वज शर्व, आप को पृथ्वीपर का सागर कहा है; आपवत्स को उमापति और अर्यमा को भास्कर सूर्य कहा है।

सविता जाह्नवी गङ्गा सावित्री वेदमातृका।

विवस्वांस्तु भवेन्मृत्युरिन्द्र उक्तोऽमराधिपः॥

सविता को जाह्नवी, गङ्गा और सावित्री को वेदमाता तथा विवस्वान को मृत्यु कहा है। इन्द्र को अमरों (देवताओं) का राजा अमराधिप कहा है।

कालानल इन्द्रजयो मित्रश्च बलभद्रकः।

रुद्रं तथेश्वरं विद्याद्रुद्रदासस्तदात्मजः॥

कालानल को इन्द्रजय; मित्र को बलभद्रक; रुद्र को ईश्वर जानो और रुद्रदास को रुद्र का पुत्र समझना चाहिए।

पृथ्वीधरो भवेत् विष्णुर्हेमगर्भः पितामहः।

द्वादश त्र्यपरिधौ द्वात्रिंशद् बाह्यतस्तत:॥

पृथ्वीधर को विष्णु और हेमगर्भ को पितामह ब्रह्मा समझो। ये द्वादश तो ब्रह्मा की परिधि पर और बत्तीस परिधि के बाहर रहते हैं।

चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी।

पिलिपिच्छा तथा जृम्भा स्कन्दार्यमा दिशां प्रति॥

चरकी, विदारी, पूतना, पापराक्षसी, पिलिपिच्छा तथा जृम्भा, स्कन्द, अर्यमा, दिशा के प्रति,

विदिक्षु दिक्षु संस्थाने ह्यष्टौ कुर्यांच्च शासनीः।

आसां पदविधिर्नास्ति पूजां गृह्णन्ति केवलम्॥

विदिशा और दिशा के संस्थानों में— ये आठों ही शासन करते है। इनकी कोई पद विधि (इसके अतिरिक्त) नहीं है; ये केवल पूजा ही ग्रहण करते हैं।

इत्येवं च समाख्याता देवतानामनुक्रमात्।

निघण्टुपरिभाषाश्च वास्तुवेदसमुद्भवाः॥

इतने में ही सब देवताओं के अनुक्रम से निघण्टु परिभाषा वास्तुवेद से समुद्भव होने वालों के बारे में कह दिया गया है।

एतान् वास्तुपुरुषस्य अङ्गपदेनदेवता।[1]

यह समस्त वास्तुपुरुष के अङ्गीय पदों पर स्थापनीय देवताओं का रहस्य है।

अथ प्रसङ्गादेकाशीतिपदस्य क्षेत्रस्य विभागप्रदर्शनार्थमाह (बृहत्संहिता 53. 42)—

एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः।

अन्तस्त्रयोदशसुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोष्ठस्थाः॥ 14॥

एकाशीतिविभागेति। एकाशीति 81 विभागार्थे पूर्व-पश्चिम उत्तरयाम्ये दश दश रेखा पातनम्। अस्य अन्तस्थले त्रयोदश देवा च बाह्यकोष्ठके द्वात्रिंशद्देवा स्यादिति अन्वयार्थः।

भाषा— इक्यासी पदवास्तु की रचना के लिए पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर की ओर दस-दस रेखाएँ खींचें। इसी प्रकार से अन्दर 81 कोष्ठक हो जाएँगे। इन पद विन्यास में भीतर तेरह और बाहर की ओर बत्तीस देवताओं की स्थिति होगी।

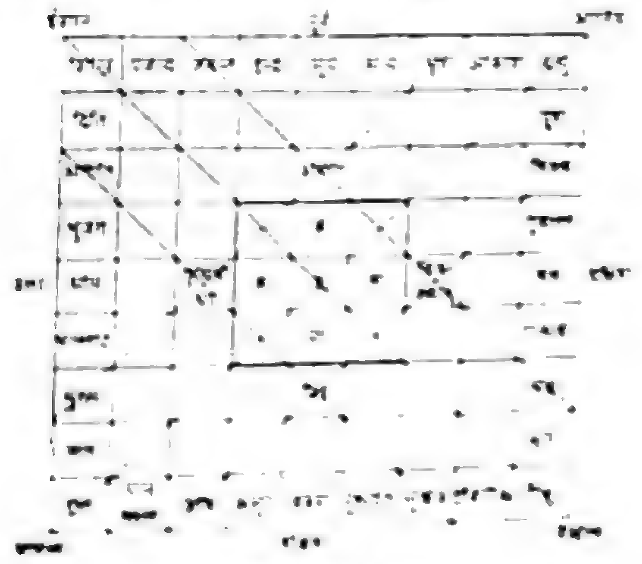

वास्तुपद देवता

विशेष — वास्तुशास्त्रों में मय ने बत्तीस वास्तुपदों का उल्लेख किया है। वास्तु उपयोगी पदों में क्रमशः 1. सकल पद विन्यास, 2. पेचक, 3. पीठ, 4. महापीठ, 5. उपपीठ, 6. उग्रपीठ, 7. चण्डित (स्थण्डिल का नाम), 8. मण्डूक, 9. परमशायिक, 10. आसन, 11. स्थानीय, 12. देशीय, 13. उभयचण्डित, 14. भद्र महासन, 15. पद्मगर्भ, 16. त्रियुत, 17. व्रतभोग, 18. कर्णाष्टक, 19. गणित, 20. सूर्य विशालक, 21. सुसंहित, 22. सुप्रतिकान्त, 23. विशाल, 24. विप्रगर्भ, 25. विश्वेश, 26. विपुलभोग, 27. विप्रतिकान्त, 28. विशालाक्ष, 29. विप्रभक्ति, 30. विश्वेशसार, 31. ईश्वरकान्त और 32. इन्द्रकान्त पद विन्यास कहा गया है—

सकलं पेचकं पीठं महापीठमतः परम् ॥
उपपीठमुग्रपीठं स्थण्डिलं नाम चण्डितम् ।
मण्डूकपदकं चैव पदं परमशायिकम् ॥
तथासनं च स्थानीयं देशीयोभयचण्डितम् ।
भद्रं महासनं पद्मगर्भं च त्रियुतं पदम् ॥
व्रतभोगपदं चैव कर्णाष्टकपदं तथा ।
गणितं पादमित्युक्तं पदं सूर्यविशालकम् ॥
सुसंहितपदं चैव सुप्रतीकान्तमेव च ।
विशालं विप्रगर्भं च वि[illegible]शं च ततः परम् ॥
तथा विपुलभोगं च पदं विप्रतिकान्तकम् ।

----

1. तथा च समराङ्गणसूत्रधारे—
योऽयं वह्निरिहोक्तः स सर्वभूतहरो हरः । पर्जन्यनामा यश्चायं वृष्टिमानम्बुदाधिपः ॥ जयन्तस्तु द्विनामाख्यः कश्यपो भगवानृषिः । महेन्द्रस्तु सुराधीशो दनुजानां विमर्दनः ॥ आदित्यं पुनरिच्छन्ति विवस्वन्तमहस्करम् । सत्यो भूतहितो धर्मो भृशः कामोऽपि मन्मथः ॥ योऽन्तरिक्षः स्मृतो देवस्तत्नभः समुदाहृतम् । मारुतो वायुरुद्दिष्टः पूषा मातृगणः स्मृतः ॥ अधर्मो वितथाख्यः स्यात् कन्दरप्रतिमः सुतः । गृहक्षतः पुनर्योत्र स चन्द्रतनयो बुधः ॥ प्रेताधिपो मतः श्रीमान यमो वैवस्वतश्च सः । गन्धर्वो भगवान देवो नारदः परिकीर्तितः ॥ भृङ्गराजमिहेच्छन्ति राक्षसं निर्ऋतेः सुतम् । यो मृगोऽस्मिन्ननन्तः स स्वयंभूर्धर्म इत्यपि ॥ आदिः प्रजापतिः स्रष्टा मनुः सुग्रीव ईरितः । पुष्पदन्तस्तु विनतातनयः स्यान्महाजवः ॥ वरुणः पाथसां नाथो लोकपालः स कीर्तितः । असुरो राहुरेकेन्दुमर्दनः सिंहिकात्मजः ॥ शोषस्तु भगवानेष सूर्यपुत्रः शनैश्चरः । पापयक्ष्मा क्षयः प्रोक्तो रोगस्तु कथितो ज्वरः ॥ भुजङ्गमानामधिपः श्रीमान् नागस्तु वासुकिः । त्वष्टा स्यान्मुख्यसंज्ञोऽत्र विश्वकर्माभिधश्च सः ॥ चन्द्रो भल्लाट इत्युक्तः कुबेरः सोमसंज्ञितः । चरको व्यवसायाख्यः श्रीरिहादितिसंज्ञिका ॥ दितिरत्रोच्यते शर्वः शूलभृद वृषभध्वजः । हिमवानपि इत्युक्त आपवत्स उमा स्मृता ॥ आदित्यस्त्वर्यमा वेदमाता सावित्र उच्यते । देवी गङ्गात्र विद्वद्भिः सवितेति प्रकीर्तिता ॥ मृत्युः शरीरहर्तासौ विवस्वानिति स स्मृतः । जयाभिधस्तु वज्रीति स्यादिन्द्रो बलवान हरिः ॥ मित्रो हलधरो माली रुद्रस्तूक्तो महेश्वरः । राजयक्ष्मा गुहः प्रोक्तः क्षितिधरोऽनन्त उच्यते ॥ चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी । रक्षायोनिभया होतो देवतानुचरोविदुः ॥ इत्येषु वास्तुदेवानां निघण्टुः परिकीर्तितः । (समराङ्गण. 14, 14 31)

विशालाक्षपदं चैव विप्रभक्तिकसञ्ज्ञकम् ॥
पदं विश्वेशसारं च तथैवेश्वरकान्तकम् ।[1]
इन्द्रकान्तपदं चैव द्वात्रिंशत् 32 कथितानि वै ॥ (मयमतम् 7, 1-7)

इसके अतिरिक्त मानसार *(7, 1-25)*, शिल्परत्न *(पूर्वभाग 6, 1-7)* में भी इतनी ही संख्या है। समराङ्गण में 81 पद, 100 एवं 64 पदीय वास्तु का वर्णन है जो कि प्रधानभेद कहा गया है—

एकाशीतिपदो यः स्यात्तथा शतपदश्च यः ।
चतुःषष्टिपदो यश्च वास्तुरत्नः त्रिधोदितः ॥ *(समराङ्गण. 13, 1)*

अपराजितपृच्छा *(57, 1-3)* में कहा गया है कि 1. स्वस्तिक, 2. पुष्पक, 3. नन्द, 4. षोडशाक्ष, 5. कुलतिलक 6. सुभद्र, 7. मरीचिगण, 8. भद्रक, 9. कामद, 10. भद्र और 11. सर्वतोभद्र। इन ग्यारह वास्तुपदों से ऊपर कोई पद नहीं करने चाहिए क्योंकि इन्हीं एकादश वास्तुपदों को ही परमेश्वर द्वारा कहा गया है। यथा—

स्वस्तिकं पुष्पकं नन्दं षोडशाक्षं चतुर्थकम् ।
पञ्चमं कुलतिलकं सुभद्रं षष्ठमेव च ॥
सप्तमो मरीचिगणो भद्रकं स्यात्तथाष्टमम् ।
नवमं कामदं प्रोक्तं दशमं भद्रमुच्यते ॥
सर्वतोभद्रनामाख्यमतऊर्ध्वं न कारयेत् ।
वास्तून्येकादशैव स्युः प्रोक्तानि परमेश्वरैः ॥

इनका विवरण इन श्लोकों *(तत्रैव 57, 4-6)* में आया है—

पदमेकं स्वस्तिकं स्यात्पुष्पकं पञ्चतुष्टयम् ।
नन्दं नवपदं प्रोक्तं षोडशं षोडशपदैः ॥

इनमें से स्वस्तिक एक पद का होता है। पुष्पक पाँच पद तथा नन्द नव पद का कहा है और षोडश पदवास्तु सोलह पदों का होता है।

पञ्चविंशतिभिः कुलं षट्त्रिंशद्भिः सुभद्रकम् ।
एकोनपञ्चाशत्पादैर्मरीचिगण उच्यते ॥

कुलतिलक पच्चीस पदों का और सुभद्रक छत्तीस पदों का तथा [illegible] उनपचास पद का कहा गया है।

भद्रकं तु चतुः षष्टिरेकाशीतिश्च कामदम्।

शतपदैस्तु भद्राख्यं सहस्रैः सर्वतोद्भवम् (सर्वतोभद्रकम्) ॥

भद्रक चौंसठ पद का और कामद इक्यासी पद तथा सौ पद का भद्र संज्ञक और सर्वतोभद्र पदवास्तु हजार पदों का होता है।

अपराजितपृच्छा के आधार पर ही राजवल्लभ *(अध्याय 2)* एवं वास्तुमण्डन, वास्तुमञ्जरी आदि में एक से हजार तक के वास्तुपदों का विवरण दिया गया है। यह बहुत उपयोगी है अतः विद्यार्थियों के हित में अपराजित का पाठ *(58, 1-35)* सानुवाद उद्धृत किया जा रहा है—

स्वस्तिकं च प्रवक्ष्यामि तच्चैकपदसंश्रितम्।

त्रयोदश सुरा मध्ये द्वात्रिंशद् बाह्यतः स्थिताः ॥

तथा कूटं त्रिभिः कृत्वा मध्ये ब्रह्मा नवांशके।

तृतीयांशेष्वर्यमाद्या त्र्यंशेषु कर्णदेवताः ॥

तासामूर्ध्वे बाह्यतश्च द्वात्रिंशत्परिधौ क्रमात्।

इदं च स्वस्तिकं प्रोक्तं सर्वशान्तिकरं नृणाम् ॥

इति स्वस्तिकवास्तु।

एक पद वाले स्वस्तिक वास्तु के बारे में कहा गया है कि इसके मध्य में तेरह देवता वास करते हैं और बत्तीस देवता इसके बाहर की ओर स्थित रहते हैं। इसमें तीन कूट बनाए और नवांश के मध्य में ब्रह्मा तथा तृतीयांश में ईश्वर अर्यमा आदि और तृतीयांश में कर्ण देवताओं को रखे और उनके ऊपर की ओर बाहर की तरफ बत्तीस देवताओं को परिधि पर क्रमानुसार स्थित करें। इस तरह स्वस्तिक वास्तु को सभी लोगों के लिए सर्वप्रकार की शान्ति के लिए उपयुक्त कहा गया है।

अथातः पुष्पकं वक्ष्ये वेदाश्रं च चतुष्पदम्।

ब्रह्मणः पदमेकं तु तत्पादेष्वर्यमादयः ॥

अर्यम्णः पदमानेन चाष्टौ ताः कर्णदेवताः।

मूलपदषोडशांशे शेषा बाह्ये प्रकीर्तिताः ॥

इति पुष्पकवास्तु।

अब पुष्पक वास्तु के बारे में कहता हूँ जो चार भुजाओं वाला एवं चतुष्पद वाला होता है। इसके एक पद में ब्रह्मा और एक बाद में ईश्वर अर्यमा आदि स्थित होते हैं।

अर्यमा के पद के मान के अनुसार ही आठों कर्ण देवता वहाँ होते हैं। मूल पद षोड़श अंश का और शेष बाहर की ओर कहे गए हैं।

नन्दे ब्रह्मा पदं चैकं ब्रह्मत्र्यंशेन चार्यमा।

तत्त्र्यंशैः कर्णदेवाश्च द्वात्रिंशच्च तदर्धतः ॥

इति नन्दवास्तु।

अब नन्द वास्तु के बारे में कहता हूँ। नन्द वास्तु के एक पद में ब्रह्मा और ब्रह्मा के पद के तृतीयांश में अर्यमा और उसके भी तृतीय अंश में कर्ण देवता और बत्तीस देवता उससे आधे आधे भाग में होंगे।

षोडशाख्ये पदं ब्रह्मा ह्यर्यमार्धे तु कर्णगाः।

कर्णार्धे बाह्यतो देवास्तदर्धार्धे कर्णाष्टकम् ॥

इति षोडशाख्यवास्तु।

षोडशाख्य में एक पद ब्रह्मा और आधे भाग में अर्यमा तथा कर्ण देवता स्थित हैं। कर्णार्ध के बाहर देवता उससे भी आधे आधे भाग में आठ कर्ण देवता होते हैं।

ब्रह्मार्यमैकैकपदं तदर्धं कर्णषोडश।

चतुर्थांशपदाः सर्वे तद्वास्तु तिलकं भवेत् ॥

इति कुलतिलकवास्तु।

ब्रह्मा का एक पद और उसका आधा सोलह कर्ण देवता के लिए ये सभी चतुर्थांश पद वाले होते हैं यह तिलक वास्तु है।

चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा द्विपदाश्चार्यमादयः।

कर्णाश्चार्धपदाः सर्वे त्र्यंशोनेषु च शेषकाः ॥

इति सुभद्रवास्तु।

चार पद में ब्रह्मा और दो पदों में अर्यमा आदि देवता कर्ण देवता आधे पद वाले और अन्य सभी शेष देवतागण तृतीयांश के होते हैं। यह सुभद्र वास्तु के लक्षण हैं।

चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा त्रिपादा अर्यमादयः।

कर्णाः सपादाश्चैकोनं कर्णबाह्येऽर्धपादकाः ॥

षडंशोनपदाः शेषाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्यया।

मरीचिगणमित्युक्तं सत्पसप्तपदात्मकम् ॥

चार पाद का ब्रह्मा तीन पाद का अर्यमादिदेवता, कर्ण देवता सवाये पद के और कर्ण देवता के बाहर के देवता आधे पद के, षडंश कम एक पाद के शेष सभी चौबीस संख्या के मरीचिगण सात सात पद वाले कहे गये हैं।

चतुः षष्टिपदं वक्ष्ये वास्तु पुरनिवेशने।

विभक्तिपदसंस्थानं देवतानामनुक्रमात्॥

चतुष्पदो भवेद् ब्रह्मा तत्समा अर्यमादयः।

अर्यमार्धे कर्णगाश्च कर्णार्धे चतुर्विंशतिः॥

बाह्यकर्णे स्थिताश्चाष्औ लाङ्गले पदमर्धकम्।

ईदृशं भद्रकं प्रोक्तं चतुःषष्टिपदस्थितम्॥

इति भद्रकवास्तु।

वास्तु पुर निवेशादिका के चौंसठ पदों के बारे में कहता हूँ। उनके देवताओं के नाम भी विभक्ति पद संस्थानों को क्रम वर्ग कहता हूँ। चार पदों में ब्रह्मा और उसी के समान चार पदों में अर्यमादि और अर्यमा से आधे पद के कर्णदेवता और कर्णदेवता के आधे पदों में चौबीस देवता तथा कर्ण देवता के बाहर की और आठ लाङ्गल आधे पद के स्थित करें। इस तरह चौंसठ पद वाला भद्रकवास्तु कहा गया है।

ब्रह्मा नवपदो मध्ये षट्पदा अर्यमादयः।

द्विपदा मध्यकर्णाद्या द्वात्रिंशदेकपादकाः॥

इति कामदवास्तु।

ब्रह्मा मध्य के नव पदों में और छह पदों में अर्यमादि दो पदों के मध्य में कणादि और अन्य बत्तीस देवता एक पद वाले कहे गए वाले कहे गये हैं, ऐसा कामद वास्तु होता है।

ततः शतपदं वक्ष्ये पूज्यं प्रासादमण्डपे।

ब्रह्माद्याः सकलाश्चैवाष्टपादा अर्यमादयः॥

द्विपदा ब्रह्मकर्णेऽष्टौ बाह्येऽष्टौ सार्धपादकाः।

शेषाश्चैकपाद ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्यया॥

इति शतपदं भद्राख्यवास्तु।

अब इसके बाद शतपद वास्तु के बारे में कहता हूँ जो प्रासाद मन्दिरों और मण्डपों में पूज्य होता है। इसमें ब्रह्मादि सभी आठ पद वाले अर्यमादि दो पदों वाले तथा ब्रह्म

कर्ण देवता आठ और बाहर के आठ देवता आधे पद के, शेष सभी एक पद वाले चौबीस संख्या में होते हैं।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशद्भिर्विभाजिते।

षट्पञ्चाशत्पदैर्युक्तान्येकादश शतानि हि॥

चौकोर किए गए क्षेत्र को बत्तीस खण्डों में विभाजित करें। इसी तरह चौकोर किए गए अन्य क्षेत्र को छप्पन खण्डों में तथा एक अन्यकों ग्यारह सौ खण्डों मे विभाजित करें।

मध्यस्थाने लिखेत् पद्मं वेदगर्भ इति स्मृतम्।

ब्रह्मान्ते च भवेद्वीथी चत्वारिंशत्पदैः क्रमात्॥

इस क्षेत्र के मध्य में पद्म का चित्र बना दें। इसे वेदगर्भ कहा गया है। ब्रह्मा के अन्त में चालीस पदों की एक वीथी क्रम से बनाएँ।

अर्यम्णोऽन्ते भवेद्वीथी शतं च द्वादशोत्तरम्।

वीथीकर्णे समस्तैवं पदमुक्तिः क्रमोदिता॥

सप्तदशमण्डलेषु चाद्ये पद्मं निपायेत्।

तदनन्तरपङ्क्तौ च ब्रह्मा षण्णवतिपदः॥

अर्यमा के अन्त में भी एक सौ बारह खण्डों की वीथी बनाए और वीथी के समस्त कर्णों पर पदमुक्ति क्रमवार बनाएँ। सत्रह मण्डलों में आदि से पद्म बनावें इसके बाद अन्तर पंक्तियों में छानवें पदों में ब्रह्मा बना दें।

तदन्ते वीथिका कार्या चत्वारिंशत्पदान्विता।

अशीतिभिश्च चत्वारोऽर्यमाद्याश्च चतुर्दिशम्॥

चत्वारिंशत्पदैरर्धैरष्टौ स्युर्ब्रह्मकर्णतः।

तदन्तर्वीथिका कार्या शतं च द्वादशोत्तरम्॥

इसके अन्त की चालीस पदों की वीथी का बनाएँ तथा अस्सी पदों को भी बनाए जिसमें चारों अर्यमादि चारों दिशाओं में बनाएँ। चालीस पदों के अर्ध में आठों ब्रह्मा कर्ण पर बनाएँ। इसके अन्तरवीथी का एक सौ बारह पदों को बनाएँ।

तद्बाह्ये च भवेद्वीथी द्वात्रिंशदधिकं शतम्।

कोणे लोप्याश्च षट्पादाश्चतुर्षु चतुर्विंशतिः॥

उसके बाहर की जो वीथी हो, वह एक सौ बत्तीस पदों की हो तथा चारों कोणों पर छह पदों का लोप करके इस तरह चौबीस पदों का लोपकर दे।

ईशाद्या रुद्रदासान्ता लता वीथ्यन्तरे गताः।
एवं पदानि जायन्ते षट्त्रिंशदधिकं शतम्॥
बाह्यकर्णे तु चत्वारः प्रस्थाप्या नवभिः पदैः।
सप्त सप्त तदाश्रिता योज्या अष्टाष्टभिः पदैः॥
तन्मानानुक्रमाद्योज्याः शेषा अष्टपदास्तथा।
एवं सहस्रपदैर्युक्तं सर्वतोभद्रलक्षणम्॥

इति सहस्रपदं सर्वतोभद्रवास्तु।

ईशादि से रुद्रदासान्त तक इन वीथियों के अन्तर में लता जाती है। इस प्रकार एक सौ छतीस पद बनते हैं। चारों ब्राह्म कर्णों पर नव पदों की प्रस्थापना करें तथा उनके अश्रित आठ-आठ पदों की सात-सात ओर प्रस्थापित करें। उन्हीं के मानानुक्रम से शेष आठो पदों को भी जोड़े इस तरह हजार पदों वाला सर्वतोभद्र लक्षण का वास्तु बनता है।

इत्यमनन्तर विशेषोच्चय—

ईशस्तथा च पर्जन्यो जयो माहेन्द्र एव च।
आदित्यः सत्यभृशौ चाऽन्तरक्षिान्ताऽष्ट पूर्वतः॥
अग्निः पूषा च वितथो गृहक्षतो यमस्तथा।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगान्ताश्चाष्ट दक्षिणे॥
पितरो दौवारिकश्च सुग्रीवः पुष्पदन्तकः।
वरुणश्चासुरः शोषः पापयक्ष्मा तु पश्चिमे॥
रोगोनागस्तुमुख्यश्च भल्लाटः सोम एव च।
गिर्यदितिर्दितिश्चैवाष्टावुत्तरदिशि क्रमात्॥

इसी प्रकार ईश, पर्जन्य, जय, महेन्द्र, आदित्य, सत्य, भ्रश और अन्तरिक्ष— ये आठों पूर्व दिशा की ओर; अग्नि, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यमगन्धर्व, भृङ्गराज और मृग— ये आठों दक्षिण दिशा की ओर; पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष और पापयक्ष्मा पश्चिम दिशा की ओर; रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, गिरि, अदिति, दिति— ये आठों क्रम से उत्तर दिशा की ओर होती हैं।

ब्रह्मकर्णे तथा चाष्टावीशान्यादि क्रमेण तु।
आपश्चैवापवत्सश्च ईशकर्णे तु संश्रितौ॥
सविता चैव सावित्री आग्नेय्यां तु समाश्रितौ।
इन्द्र इन्द्रजयश्चेव नैर्ऋत्यां ब्रह्मणः स्थितौ॥

ब्रह्मकर्ण पर इसी तरह अट्ठाइस क्रमवार इस तरह बनाएँ— ईशान कोण पर आप और आपवत्स संश्रित हो। आग्नेयकोण पर सविता और सावित्री समाश्रित हो। ब्रह्मा के नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र और इन्द्रजय स्थित हों।

रुद्रश्च रुद्रदासश्च संस्थितौ वायवीदिशि।
मरीचिश्च विवस्वांश्च मित्रश्च पृथिवीधरः॥
पूर्वादिक्रमयोगेन संस्थिताश्च चतुर्दिशम्।
एवमादिक्रमयोगः सर्वेषां वास्तुमण्डले॥

वायव्य कोण की दिशा में रुद्र और रुद्रदास संस्थित हो। इसी तरह मरीचि, विवस्वान, मित्र और पृथ्वीधर भी पूर्वादि क्रम से योग बनाते हुए चारों दिशाओं में संस्थित हो। इस प्रकार सभी वास्तुमण्डलों में आदिक्रम योग होता है।

एवं वास्तुपुरुषपूजनं कथयित्वा क्षेत्रप्रमाणशुद्धिर्ग्रन्थान्तरे—

चरणात्कर्णपर्य्यन्तं दण्डं सरलवंशजम्।
पूर्वतः पश्चिमं यावदुत्तराद्दक्षिणं तथा॥ 15॥
तयोश्च दण्डयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्य तम्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन शुभाशुभम्॥ 16॥
प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत् फलमादिशेत्।
द्वितीये चर्म्मकारस्य क्षुत्पिपासाकुलो गृही॥ 17॥
तृतीये ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत्।
चतुर्थे शूद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम्॥ 18॥
पञ्चमे योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम्।
षष्ठे तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ 19॥
सप्तमे क्षत्रियस्थानं सदा युद्धकरं नृणाम्।
अष्टमे चक्रिणः स्थानं मरणं रोगकारकम्॥ 20॥

व्याख्या - यो वासं कर्तुमिच्छति तस्य दक्षिणपादाङ्गुष्ठमारभ्य दक्षिणकर्णपर्य्यन्तं वंशदण्डं कुर्य्यात्। तेन दण्डेन पूर्वतः पश्चिमं, उत्तरतो दक्षिणान्तं क्षेत्रं [illegible]

गजभक्ते सति यदवशिष्टं तेन रजकादिस्थानं ज्ञेयम् एकशेषे रजकस्थानं फलं तु पञ्चदशदिनं शुभमं, पुनः पञ्चदशदिनपर्य्यन्तमशुभम्, अत्रायमर्थः- यावच्चन्द्रो युवा तावच्छुभफलं, यावद्बालस्ता-वन्मध्यमं, यावद्वृद्धस्तावदशुभमिति। ततोऽन्यशेषेऽन्यत्फलं वदेदिति।

चरणादिति। चरणात्पादात्, कर्णपर्य्यन्तं श्रवणं यावत्, सरलवंशजं सरलवंशोत्पन्नं, दण्डं यष्टि विधायैति शेषः। ततः पूर्वतः पूर्वदिशः सकाशात्, पश्चिमं पश्चिमदिशं यावत्, तथा उत्तरादुत्तरदिशः सकाशात्, दक्षिणं यमदिशं यावत् मापनं कुर्य्यात्। तयोः पूर्वमापितयोः दण्डयोः दण्डसंख्ययोर्योगं कृत्वा, तं योगं भूमौ पृथिव्यां विलिख्य, अष्टभिर्भागं हरेत्। शेषाङ्केन शेषाङ्कवशेन, शुभाशुभं शुभाशुभफलं ज्ञेयम्। तत्फलमाह-प्रथममिति। प्रथम-मेकशेषाङ्कं यत्र तद्रजकस्थानं निर्णेजकस्थानं (निर्णेजकः स्याद्रजक इत्यमरः) ज्ञेयम्। तत्रस्थाने फलं चन्द्रवत् सोमवत् (यथा चन्द्रो मासान्तर एव परमक्षयवृद्धिमाप्नोति तथैव तत्र वासकर्ता शीघ्रमेव ह्रासवृद्धिमवाप्नोति)। द्वितीये युग्ममिते शेषे सति, तच्चर्मकारस्य चर्मजीविनः स्थानं स्यात्, तत्र वासे कृते गृही वासकर्ता क्षुत्पिपासाकुलः क्षुत्पिपासा- भ्यामाकलो भवेत्। तृतीये त्रिःपरिमिते शेषे सति तद्ब्राह्मण स्थानं ज्ञेयं, तत्र वासे महत् जनोद्रासकर जनानामुद्रासकरं भवति। चतुर्थे युगमिते शेषे सति तच्छुद्रकस्थानं ज्ञेयं, तत्र वासे वासकर्तुः धनधान्यप्रदायकं स्यात्। पञ्चमे पञ्चमिते शेषे सति तद्योगिनः स्थानं स्यात्, तत्स्थानं महद्बहु औदास्यकारकं भवति। षष्ठे षट्परिमिते शेषे सति तद्गोपकस्थानं स्यात्, तत्सर्वसिद्धिप्रदायकं सकलकामनासिद्धिदायकं भवति। सप्तमे सप्तमिते शेषे क्षत्रिय-स्थानं राजन्यस्थानं तत्स्यात्, तत्सदा सततं नृणां मानवानां युद्धकरं भवति। अष्टमे अष्टमिते शेषे सति तच्चक्रिणः स्थानं स्यात्, तत्र वासे मरणं मृत्युर्भवति, तथा रोगकारकं च तत्स्थानं भवति।

भाषा — जिस क्षेत्र में निर्माण करना हो, उसके मापन प्रमाण के लिए गृहकर्ता को चाहिए कि वह अपने दाहिने पाँव के अङ्गूठे से लेकर दाहिने कान तक लम्बा एक सीधा बाँस लेवें। इससे वह पूर्व से पश्चिम और वैसे ही उत्तर से दक्षिण तक भूमि का मापन करे। इस बाँस के प्रमाण से वह कुल लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण लें और उसे लिखे। योग करने से जो कुल आया हो, उसमें आठ का भाग दें और जो शेष बचे, उसके आधार पर उक्त भूमि की शुभाशुभता पर विचार करे। यदि उक्त विधि से, आठ से भाजित करने पर एक शेष बचता हो तो उसे रजक स्थान कहना चाहिए और चन्द्रमा के समान वहाँ का फल जाने अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं, वैसे ही वहाँ वैभव न्यूनाधिक होता रहेगा। यदि दो बचे तो चर्मकार स्थान कहे और इसका फल भूख व प्यास से गृहपति आकुल रहेगा। यदि शेष तीन बचे तो ब्राह्मण स्थान कहें, इसका फल गृहपति को मुख्यतः उदास रखने वाला होता है। चार शेष बचते हों तो शूद्रक स्थान कहा जाएगा। इसका फल धन-धान्य प्रदान करने वाला माना गया है। इसी प्रकार यदि पाँच का अङ्क शेष बचे तो योगी का स्थान होगा। यह स्थान उदासी का

कारण होता है। यदि छह शेष बचे तो गोप का स्थान होगा और यह सर्वसिद्धि प्रदान करने वाला होता है। अगर सात शेष बचे तो वह क्षत्रिय स्थान कहा जाता है और इसका फल लोगों में सदा ही युद्ध होना माना जाता है। आठ शेष रहने पर कुम्हार का स्थान होगा और इसका फल मरण एवं रोगकारक होता है।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां वास्तुपूजनविवेकाध्यायः पञ्चमः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में वास्तुपूजन विवेक नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ 5॥

अथ नृपादिगृहपरिमाणनिर्णयाध्यायः षष्ठः ॥ 6 ॥

तत्र नृपादीनां गृहविचारो बृहत्संहितायाम् (53, 4) —

उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥ 1 ॥

व्याख्या- अथ नृपगृहस्य विस्तृतिरष्टाधिकशतं (108), सपादविस्तृति (135) दैर्घ्यमिति। एवं नृपगृहमुत्तमं भवति। अथवा अष्टाधिकशतानि अष्टाष्टोनानि पृथुत्वे सपादानि दैर्घ्ये ज्ञातव्यानीति। यथाष्टाधिकशतमष्टभिरूनं (100) विस्तारः, सपादं (125) दैर्घ्यमिति। पुनरष्टभिरूनं (92) सपादं (115) विस्तृतिदैर्घ्ये। पुनः (84), (105), पुनः (76), (95)। तथा च भट्टोत्पलविवृत्यां काश्यप आह— अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम्। कार्यं प्रमाणमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु॥ विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत्। एवं पञ्चनृपः कुर्यात् गृहाणां च पृथक् पृथक्॥ इति। एवं पञ्च गृहाणि प्रत्येकस्याचार्येणाभिहितानि। अत ऊनाधिकता न शोभनेति।

उत्तममिति। नृपगृहं राजवेश्म, उत्तमं प्रधानं, अष्टाभ्यधिकमष्टोत्तरहस्तशतं पृथुत्वेन विस्तारेण कार्यम्। अन्यानि चत्वारि गृहाणि अष्टाष्टोनानि अष्टभिरष्टभिरूनानि कार्याणि। अत्रैतदुक्तं भवति-प्रथमं नृपगृहमष्टाधिकं हस्तशतं विस्तीर्णम्। द्वितीयं शतम्। तृतीयं द्विनवतिः। चतुर्थ चतुरशीतिः। पञ्चमं षट्सप्ततिरिति। प्रत्येकस्य गृहस्य यत्पृथुत्वमुक्तं तत्सपादं चतुर्भागेनाधिकं तस्य दैर्घ्यं कार्यमित्यर्थः। यथा प्रथमगृहे पञ्चत्रिंशदधिकं शतम्। द्वितीयं पञ्चविंशत्यधिकम्। तृतीयं पञ्चदशाधिकम्। चतुर्थं पञ्चोत्तरं शतम्। पञ्चमं पञ्चनवतिरित्येवं ज्ञेयम्।

भाषा— (यहाँ सिद्धपिण्ड के अनुसार राजाओं के उत्तम, उच्च मध्यम, निम्न मध्यम, अधम व अधमाधम— इन पाँच हर्म्यों का प्रमाण कहा जा रहा है) राजभवन में विस्तार 108 हाथ का रखना प्रशस्त है और अन्य चार गृहों में उत्तरोत्तर आठ-आठ हाथ कम करके विस्तार रखे जबकि सपाद विस्तार से दीर्घ कल्पित करे। यथा- 1. उत्तम गृह में 135 हाथ का दैर्घ्य तथा 108 हाथ का विस्तार होगा, 2. द्वितीय गृह में 100 हाथ विस्तार होने पर 125 हाथ दीर्घ होगा, 3. तीसरे गृह में 92 हाथ विस्तार पर 115 हाथ

दैर्घ्य, 4. चौथे गृह में 84 हाथ विस्तार और 105 हाथ दैर्घ्य होगा जबकि 5. पाँचवें गृह में 76 हाथ विस्तार का प्रमाण तथा 95 हाथ दैर्घ्य रखा जाएगा।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

दीर्घ हस्त	135	125	115	105	95
अङ्गुल	0	0	0	0	0
विस्तार हस्त	108	100	92	84	76

एवं पञ्चप्रकाराणि राजगृहमभिधाय सेनापतिगृहमाह वराहमिहिरः (53, 5) —

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः।
पञ्चैवं विस्ताराः षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥ 2 ॥

व्याख्या- सेनापतिगृहाणां चतुःषष्टिः षड्भिः षड्भिर्हीना सती पञ्चधा विस्तार इति, षडंशसमन्वितो विस्तारो गृहदैर्घ्यमिति। अतो विस्ताराः- (64), (58), (52), (46), (40), दैर्घ्याणि:- (74,16), (67,16), (60,16), (53,16), (46,16), क्रमेण भवन्तीति।

षड्भिरिति। चतुःषष्टिर्हस्ताः षड्भिः षड्भिर्हीनां सेनापतिसद्मनां मन्त्रिगृहाणां पृथुत्वं भवति। तद्यथा-प्रथमगृहस्य चतुःषष्टिर्विस्तारः, द्वितीयस्याष्टपञ्चाशत्, तृतीयस्य द्वापञ्चाशत्, चतुर्थस्य षट्चत्वारिंशत्, पञ्चमस्य चत्वारिंशदिति। एवमनेन प्रकारेण पञ्च गृहाणि भवन्ति। विस्ताराः षड्भागसमन्विता दैर्घ्यमिति। प्रत्येकस्य गृहस्य यो विस्तार उक्तः स एव षड्भागाधिको दैर्घ्यं भवति। अत्र सर्वत्रेयं परिभाषा हृदि स्थाप्या, तद्भागहारेण भागमपहृत्य हस्ता लभ्यन्ते, शेषाच्चतुर्विंशतिगुणितादङ्गुलानि, तच्छेषात् षड्गुणिता द्व्यङ्गुलानीति सर्वत्र।

भाषा— सेनापति के लिए प्रथम गृह का विस्तार 64 हाथ रखा जाएगा एवं वह अपने छठे अंश से युक्त दीर्घता लिए होगा। इस प्रकार छह हाथ विस्तार में न्यून क्रमानुसार अन्य चार गृहों का विस्तार वाला होगा जबकि विस्तार छह भाग युक्त चार अन्य गृहों का दीर्घ होगा। यथा— प्रथम गृह 64 हाथ विस्तार, दीर्घ = 74 हाथ व 16 अङ्गुल, 2. द्वितीय गृह 58 हाथ विस्तार, दीर्घ = 67 हाथ 16 अङ्गुल, 3. तृतीय गृह 52 हाथ विस्तार, दीर्घ = 60 हाथ 16 अङ्गुल, 4. चतुर्थ गृह 46 हाथ विस्तार, दीर्घ = 53 हाथ 16 अङ्गुल एवं 5. पञ्चम गृह 40 हाथ विस्तार, दीर्घ = 46 हाथ 16 अङ्गुल। इस प्रकार सेनापति के उत्तम, उच्च मध्यम, निम्न मध्यम, अधम और अधमाधम- ये पाँच प्रकार के गृह होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	64	58	52	46	40
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हस्त	74	67	60	53	46
अङ्गुल प्रमाण	16	16	16	16	16

अथ सचिव-राजमहिषीगृहप्रमाणमाह (53, 6) —

षष्टिश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतं दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम्॥ 3॥

व्याख्या- अङ्कविन्यास एव व्याख्या तद्यथा- सचिवगृह विस्तार:- 60, 56, 52, 48, 44। दीर्घता: - 67, 63, 58, 54, 49।

राजमहिष्यादेस्तदर्धतो ज्ञेया: —

विस्तार: - 30, 28, 26, 24, 22। दीर्घता: - 33, 31, 29, 27, 24।

षष्टिश्चतुरिति। सचिवस्य मन्त्रिण:, पञ्च वेश्मानि गृहाणि यानि तेषां षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीना पृथुत्वं भवति। तद्यथा- प्रथमगृहस्य षष्टि:, द्वितीयस्य षट्पञ्चाशत्, तृतीयस्य द्वापञ्चाशत्, चतुर्थस्याष्टचत्वारिंशत्, पञ्चमस्य चतुश्चत्वारिंशदिति। अथ प्रत्येकस्य गृहस्य यो विस्तार: स एव स्वाष्टांशयुतोऽष्टभाग संयुक्तस्तस्य दैर्घ्यं भवति। तदर्धतो राजमहिषीणाम्, महिष्य: प्रधानस्त्रिय: तासां नृपमहिषीणां, तदर्धत: सचिवगृहप्रमाणार्धेन गृहाणि कार्याणीत्यर्थ:। एतदुक्तं भवति— सचिवस्य यानि पञ्च गृहाण्युक्तानि तेषा यो विस्तारो यच्च दैर्घ्यम, तदर्धे राजमहिषीणां गृहाणि कार्याणीत्यर्थ:। तद्यथा— प्रथमगृहस्य पृथुत्वं त्रिंशत्, द्वितीयस्याष्टविंशति:, तृतीयस्य षड्विंशति:, चतुर्थस्य चतुर्विंशति:, पञ्चमस्य द्वाविंशतिरिति। स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं सर्वेषां कार्यमिति।

भाषा— सचिवों (मन्त्रियों) के गृह पाँच प्रकार के होते हैं। प्रथम गृह साठ हाथ के विस्तार में, क्रमिक रूप से 4-4 हाथ छोटे विस्तार के अन्य चार गृह होंगे एवं सर्वत्र विस्तार का आठवाँ अंश अधिक दीर्घ होगा।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	60	56	52	48	44
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	67	63	58	54	49
अङ्गुल प्रमाण	12	0	12	0	12

सचिवों के उपर्युक्त गृहों के आधे प्रमाण से राजमहिषी (राजमाता, पटरानी) के पाँच गृह होते हैं। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

विस्तार हाथ	30	28	26	24	22
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	33	31	29	27	24
अङ्गुल प्रमाण	18	12	6	0	18

अथ युवराज-युवराजानुजगृहमाह तत्रैव (53, 7) —

षड्भि: षड्भिश्चैवं युवराजस्यापिवर्जिताऽशीति:।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम्॥ 4॥

व्याख्या- युवराजस्यगृह विस्तार:- 80, 74, 68, 62, 56; दीर्घता:- 106, 68, 90, 82, 74।

युवराजानुजस्य: —

विस्तार:- 40, 37, 34, 31, 28; दीर्घता:- 53, 49, 45, 41, 37।

षड्भिरिति। एवमनेन प्रकारेण युवराजस्याशीति: षड्भि: षड्भिरपवर्जिता पञ्चानां गृहाणां पृथुत्वं भवति। तद्यथा-प्रथमस्याशीतिर्हस्ता विस्तार: द्वितीयस्य चतु:सप्तति:, तृतीयस्याष्टषष्टि:, चतुर्थस्य द्विषष्टि:, पञ्चमस्य षट्पञ्चाशत्। प्रत्येकस्य गृहस्य विस्तार: स्वत्र्यंशेन आत्मीयत्रिभागेन युतो दैर्घ्यं भवति। एवं पञ्च गृहाणि तदनुजानामिति। तस्य युवराजस्यानुजानां पश्चाज्जातानां कनीयसां भृत्यानां तदर्धै: पृथुत्वदैर्घ्यात्पञ्च गृहाणि कार्याणि। तद्यथा- प्रथमस्य पृथुत्वं चत्वारिंशत्, द्वितीयस्य सप्तत्रिंशत्, तृतीयस्य चतुस्त्रिंशत्, चतुर्थस्यैकत्रिंशत्, पञ्चमस्याष्टाविंशति:, त्र्यंशान्वितं सर्वेषां दैर्घ्यमिति।

भाषा— युवराज के अस्सी हाथ विस्तार एवं अपने तृतीयांश से युक्त दीर्घ प्रमाण के प्रथमादि गृह होंगे, प्रथमादि गृहों के विस्तार में उत्तरोत्तर छह हाथ हीन करके अन्य चार गृह कल्पित किए जाएँगे।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	80	74	68	62	56
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	106	98	90	82	74
अङ्गुल प्रमाण	16	16	16	16	16

इसी प्रकार युवराज के अनुजों, कुँवरपद वालों के पाँच गृह युवराज के गृह के आधे प्रमाण से बनाए जाएँगे।

स्पष्टार्थचक्रम्—

विस्तार हाथ	40	37	34	31	28
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	53	49	45	41	37
अङ्गुल प्रमाण	8	8	8	8	8

अथ सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाकञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानां गृहमानमाह (53, 8) —

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवर-राजपुरुषाणाम्।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम्॥ 5॥

व्याख्या- नृपसचिवगृहप्रमाणान्तरतुल्यं सामन्तादीनां गृहप्रमाणम्। सामन्ता माण्डलिका लघुसीमाबद्धाधिकारयुक्ता राजानः। विस्तारः- 48, 45, 40, 36, 32। दीर्घता:- 68, 62, 57, 51, 46।

नृपसचिवान्तरमिति। नृपगृहाणां पञ्चानां सचिवगृहैः पञ्चभिः सह यदन्तरं तत्सामन्तानां माण्डलिकानां नृपाणां प्रवराणां प्रधानानां राजपुरुषाणां च गृहं कार्यम्। अत्रैतदुक्तं भवति - नृपसचिवयोः परस्परं विस्तारस्य विस्तारेण सहान्तरे कृते दैर्घ्यस्य दैर्घ्येण स सहान्तरे कृते यद् भवतित तत्पृथुत्वं दैर्घ्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणां च कार्यम्। तथा नृपमानस्य युवराजस्य मानेन सह यो विशेषोऽन्तरं भवति तत्कञ्चुकिनां महत्तरकपतीनां वेश्यानां साधारणस्त्रीणां कलाज्ञानां कलाशास्त्रप्रवीणनां गेयवाद्यनृत्यचित्रपुस्तकपत्रच्छेदकर्मविदां च गृहं कार्यमिति।

भाषा— राजा एवं मन्त्री के पाँचों गृहों के अन्तर क्रम से माण्डलिक राजा एवं प्रधान राजपुरुषों का गृह होना चाहिए। राजा एवं युवराज के पाँचों गृहों के अन्तर तुल्य कञ्चुकी, वेश्या एवं कलाविदों (कलाकारों) के भी पाँच-पाँच गृह हो सकते हैं। (इसमें किञ्चित् प्रमाणभेद रखा जा सकता है)।

सामन्तप्रवरराजपुरुषगृह स्पष्टार्थचक्रम्—

विस्तार हाथ	48	44	40	36	32
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	67	62	56	51	45
अङ्गुल प्रमाण	12	0	12	0	12

कञ्चुकीवेश्याकलाविज्ञानां गृह स्पष्टार्थचक्रम्—

विस्तार हाथ	28	26	24	22	20
अङ्गुल हाथ	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	28	26	24	22	20
अङ्गुल प्रमाण	8	8	8	8	8

अथ दैवज्ञपुरोहितभिषजां गृहप्रमाणमाह (53, 10) —

चत्वारिंशद्धीनाचतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति।
षड्भागयुतो दैर्घ्यं [1]दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः॥ 6॥

व्याख्या— दैवज्ञभिषक्पुरोहितानां वास्तुप्रमाणमाह। विस्तारः— 40, 36, 32, 28, 24। दीर्घता:— 46, 42, 37, 32, 28।

चत्वारिंशद्धीनेति। अथ दैवज्ञभिषक् पुरोहितानां च। दैवज्ञः सांवत्सरिकः। भिषग्वैद्यः। पुरोहितः पुरोधाः (पुरोधास्तु पुरोहित इत्यमरः)। एषां चत्वारिंशच्चतुश्चतुर्भिर्हीनां गृहपञ्चकस्य विस्तारः। तद्यथा-प्रथमगृहस्य विस्तारश्चत्वारिंशत्, द्वितीयस्य षट्त्रिंशत्, तृतीयस्य द्वात्रिंशत्, चतुर्थस्याष्टाविंशतिः, पञ्चमस्य चतुर्विंशतिः। सैव चत्वारिंशत् षड्भागयुता दैर्घ्यं कार्यम्। प्रत्येकस्य गृहस्य यो विस्तारः स एव स्वषड्भागाधिको दैर्घ्यं भवति।

भाषा— दैवज्ञ, पुरोहित, वैद्यराज के गृहों के लिए प्रथम गृह का मान विस्तार 40 हाथ होगा जबकि शेष चार गृहों का विस्तार 4-4 हाथ क्रमशः कम होता जाएगा एवं प्रत्येक गृह के विस्तार में उसी का छठा अंश जोड़कर दैर्घ्य रखा जाएगा।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	40	36	32	28	24
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	46	42	37	32	28
अङ्गुल प्रमाण	16	0	8	16	0

अथ प्रसङ्गादध्यक्षाधिकृतादीनां पञ्चगृहाण्याह (53, 9) —

अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषां कोशरतितुल्यम्।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम्॥ 7॥

---

1. 'दैवज्ञभिषक्पुरोहितानाञ्च' इति प्रकाशित पाठः।

व्याख्या— अध्यक्षाः गज अश्व गोशालाध्यक्षास्तत्तत्कार्यप्रधानाः। कर्मान्ताध्यक्षा अन्यंकार्ये नियुक्ता अधिकारिणः। शालाध्यक्षाः चत्वारिंशद्धीनाश्चतुर्भिश्च पञ्च यावदिति। विस्तारः— 20, 18, 16, 14, 12। दीर्घता:— 39.4, 35.16, 32.4, 28.16, 25.4।

अध्यक्षाधिकृतानामिति। अश्वशाला-गजशाला-गोशाला-सूपकारादि-शालाध्यक्षाणां तत्राधिकृतानां तथान्येषामन्यत्र कर्मादावधिकृतानामधिकारे स्थापितानां नियोगिनां सर्वेषां कोशरतितुल्यं कोशगृहप्रमितं रतिगृहप्रमितं वा गृहं कुर्यात्। युवराजमन्त्रिविवरमिति। युवराजगृहमानस्य मन्त्रिगृहमानेन सह यद्विवरमन्तरं तत्कर्मान्तेरेषु कर्मशालासु येऽध्यक्षास्तेषां षट्कर्मपतीनां दूतानां च गृहं कुर्य्यात्। अत्र केचिदाचार्याः सामन्तमन्त्रिविवरमिति पठन्ति। सामन्तस्य मन्त्रिगृहमानेन सहान्तरे यत्तेन मानेनेति।

भाषा— अश्वशाला, हाथीखाना, गोशाला और अन्य पाचकादि कार्यों के अध्यक्षों का तथा अन्यान्य कार्यों में संवारत अधिकारीजनों के निवास के लिए गृह सदा कोश एवं रतिगृह के बराबर होना चाहिए। इसी प्रकार युवराज (पाठान्तर, अन्य मत से सामन्त मन्त्री) एवं मन्त्री के गृहों का जो हाथ प्रमाणगत अन्तर हो, वहीं कर्मान्तरों में लगे अधिकारी, अध्यक्षों, दूतों के गृह का प्रमाण होगा। कर्माध्यक्षों के गृहों का प्रमाण उपर्युक्त कार्यशालाओं के अध्यक्षों के गृहों के मान का होगा।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	20	18	16	14	12
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	39	35	32	28	25
अङ्गुल प्रमाण	4	16	3	16	4

एतेषां गृहाणामुच्छ्रायविधिस्तत्रैव (53, 11) —

वास्तुनि यो विस्तारः स एव ह्युच्छ्रायनिश्चयः शुभदः।
शालैकेषु गृहेष्वपि विस्ताराद् द्विगुणितं दैर्घ्यम्॥ 8॥

व्याख्याः- गृहे यो व्यासो विस्तारः स एवोच्छ्रायो गृहस्येति। विस्तारतुल्य-मुच्छ्रायस्यौच्चयस्य प्रमाणमित्यर्थः। विस्ताराद् द्विगुणितं दैर्घ्यमिति। एकशालगृहेऽयं विधिरिति। अथवा गृहविस्तारस्य षोडशांशसहितहस्तचतुष्टय उच्छ्रायः 'विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो गृहोच्छ्रायः' इति 'बृहत्संहितावचनात्।

---

1. 'रत्नकोशवचनात्' इति प्रकाशित पाठः। परञ्च वराहमिहिरे— विस्तारषोडशांश सचतुर्हस्तो भवेद् गृहोच्छ्रायः। द्वादशभागेनोनू (नो) भूमौ भूमौ समस्तानाम्। (बृहत्संहिता 53, 22) अस्यार्थः— गृह के विस्तार के 16वें भाग में चार हाथ मिलाकर जितना प्रमाण होता है, उतना गृह की निचली मंजिल का मान रखा जाना चाहिए। उसमें 12 अंश कम कर दूसरी मंजिल की ऊँचाई कल्पित करे। तीसरी मंजिल की ऊँचाई दूसरी मंजिल से बारह भाग कम करके रखी जानी चाहिए।

वास्तुनीति। वास्तुनि भवने, यो विस्तार उक्तः स एवोच्छ्रायनिश्चयः औच्च्यप्रमाणं, शुभदः शुभफलद इति। यथा नृपस्य प्रथमगृहमष्टाधिकं हस्तशतं विस्तारादुक्तम्। तथाऽष्टाधिकं हस्तशतमेवोच्छ्रितं कार्यमिति। एकशालागृहेषु च विस्ताराद् द्विगुणं दैर्घ्यं कार्यमिति। तथा च काश्यपः— चतुःशालगृहेष्वेवमुच्छ्रायो व्याससम्मितः। विस्तारं द्विगुणं दैर्घ्यमेकशालयुतस्य च॥

भाषा- गृह का जो विस्तार हो, वही उसकी ऊँचाई रखी जानी चाहिए। यह प्रशस्त होता है। एकशाला वाले गृह में लम्बाई चौड़ाई की दुगुनी हो, यह अपेक्षित है। (काश्यप का भी उच्छ्रिति के सम्बन्ध में यही मत है कि चतुश्शाला के गृह में ऊँचाई व्यास के बराबर सम्मत है, विस्तार से दुगुना प्रमाण एकशाल गृह में हो सकता है)।

अथ चातुर्वर्ण्यानां गृहस्य विस्तारदैर्घ्यमाह वराह. (53, 12-13) —

चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत्स्याच्चतुर्हीना।
आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीव हीनानाम्॥ 9॥
सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम्।
षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम्॥ 10॥

व्याख्या- ब्राह्मणादीनां चतुर्वणानां गृहविस्तारा: 32, 28, 24, 20, 16। दैर्घ्यन्तु विस्तारः सदशांशो ब्राह्मणस्य, क्षत्रियस्याष्टांशयुतं दैर्घ्यं, वैश्यस्य षड्भागयुतं दैर्घ्यं, शूद्रस्य पादयुतं दैर्घ्यमिति। विशेषोच्चय— ब्राह्मणस्य द्वात्रिंशदारभ्य षोडशान्तं पञ्चगृहाणि। क्षत्रियस्य अष्टाविंशतिमारभ्य षोडशान्तं चत्वारि। वैश्यस्य चतुर्विंशतिमारभ्य षोडशान्तं त्रीणि गृहाणि। शूद्रस्य विंशतिमारभ्य षोडशान्तं गृहद्वयमेवेति।

चातुर्वर्ण्य इति। चतुर्वर्णानां भावश्चातुर्वर्ण्यं चत्वारो वर्णाः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः यत्र तस्मिंश्चातुर्वर्ण्ये ब्राह्मणादिके व्यासो विस्तारो द्वात्रिंशत् सा चतुश्चतुर्हीना, आषोडशादिति षोडशयावदिति। द्वात्रिंशच्चतुश्चतुर्भिर्हीना तावत्कार्या यावत् षोडशेति। अत्रैतदुक्तं भवति, ब्राह्मणस्य प्रथमगृहव्यासो द्वात्रिंशद्धस्ताः, अन्यानि चत्वारि चतुर्भिश्चतुर्भिर्हीनानि कार्याणि। क्षत्रियस्य प्रथमगृहव्यासोऽष्टाविंशतिहस्ताः, अन्यानि त्रीणि चतुर्भिश्चतुर्भिर्हीनानि कार्याणि। वैश्यस्य प्रथमगृहं चतुर्विंशतिः अन्ये द्वे चतुर्भिश्चतुर्भिर्हीने। शूद्रस्य प्रधानगृहं विंशतिर्हस्ताः अपरं षोडश इति। एवं ब्राह्मणस्य पञ्च गृहाणि, क्षत्रियस्य चत्वारि, वैश्यस्य त्रीणि, शूद्रस्य द्वे। अतः परं निकृष्टं न्यूनतरमल्पतरमतीवहीनानां चाण्डालश्वपाकादीनां कार्यमिति।

विप्राणां ब्राह्मणानां, व्यासो यद्विस्तारमानमुक्तं तदेव दशांशं स्वदशभागयुतं दैर्घ्यं कार्यं पञ्चत्वपि गृहेषु।

एवं क्षत्रियस्याष्टांशयुतमष्टभागाधिकम्, वैश्यस्य स्वषड्भागयुतम्। शूद्रस्य पादयुतं चतुर्भागाधिकमित्यर्थः।

भाषा— ब्राह्मादि चारों वर्णों के सामान्य जनों के गृहों का विस्तार 32 हाथ तथा उसमें चार-चार हाथ कम करके अन्ततः 16 हाथ तक रखना चाहिए। इससे कम चौड़ाई का गृह निम्न जाति वालों का होगा। ब्राह्मणों के गृह की लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा दस भाग अधिक, क्षत्रियों की आठ भाग अधिक, वैश्यों की छह भाग अधिक और शूद्रों की चार भाग अधिक रखी जानी चाहिए।

विशेष— यहाँ ब्राह्मण के पाँच गृह 32 से 28, 24, 20 एवं 16 हाथ तक, क्षत्रिय के चार गृह 28 से 16 हाथ तक, वैश्य के तीन गृह 24 से 16 हाथ तक और शूद्र के दो गृह 20 से 16 हाथ तक होंगे। ब्रह्मशम्भुपद्धति में भी कहा गया है—

द्वात्रिंश$_{32}$द्धस्तविस्तीर्णं भवेद् ब्राह्मणमन्दिरम्।
प्रत्येकं क्षत्रियादीनां चतुर्हस्त$_{4}$विहीनकम्॥ *(वास्तुसौख्यं 189)*

इसी प्रकार किरणाख्यतन्त्र का मत भट्टोत्पल ने वृहत्संहिता के वास्तु अध्याय में उद्धृत किया है।

विप्रगृहार्थे गृह स्पष्टार्थ चक्रम्

विस्तार हाथ	32	28	24	20	16
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	35	30	26	22	17
अङ्गुल प्रमाण	4	19	9	0	14
व्यङ्गुल	48	12	36	0	24

क्षत्रियार्थे गृह स्पष्टार्थ चक्रम्-

विस्तार हाथ	28	24	20	16
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	31	27	22	18
अङ्गुल प्रमाण	12	0	12	0

वैश्यार्थे गृह स्पष्टार्थ चक्रम्

विस्तार हाथ	24	20	16
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0
दीर्घ हाथ	28	23	18
अङ्गुल प्रमाण	0	8	18

शूद्रार्थे गृह स्पष्टार्थ चक्रम्-

विस्तार हाथ	20	16
अङ्गुल प्रमाण	0	0
दीर्घ हाथ	25	20
अङ्गुल प्रमाण	0	0

अथ कोशभवनस्य प्रमाणं राजपुरुषस्य च गृहप्रमाणमाह (53, 14) —

नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने।
सेनापतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राजपुरुषाणाम्॥ 11॥

नृपसेनापतीति। नृपस्य राज्ञो गृहमानस्य प्रागुक्तस्य सेनापतिगृहमानेन प्रागुक्तेनैव सह यदन्तरं तेन मानेन कोशभवनं च कार्यम्। कोशभवनं गञ्जः, रतिभवनं क्रीडागृहं अनयोस्तुल्यं प्रमाणम्। सेनापतेश्चातुर्वर्ण्यस्य च यद्विवरमन्त तेन मानेन राजपुरुषाणां कार्यम्।

यद्यत्र ब्राह्मणो राजपुरुषो भवति तदा ब्राह्मणवास्तुमानं सेनापतिवास्तुमानादपास्य यदवशिष्यते तेन मानेन गृहपञ्चकं कार्यम्। एवं क्षत्रियादीनां विज्ञेयम्। किन्तु सेनापतिगृहस्य द्वितीयस्य क्षत्रियवास्तुमानेन सहान्तरं कृत्वा शेषं क्षत्रियराजपुरुषस्य प्रधानगृहम्। एवं तृतीयस्य द्वितीयेन, चतुर्थस्य तृतीयेन, पञ्चमस्य चतुर्थेनेति। एवं तृतीयेन सेनापतिगृहेण सहान्तरं वैश्यस्य प्रधानगृहं, चतुर्थेन शूद्रस्येति।

भाषा— राजा एवं सेनापति के गृहों के अन्तर के बराबर कोश गृह (कोशालय, खजाना, टकसालादि संग्रह) एवं रति भवन को बनाया जाए। सेनापति एवं चार वर्णों के गृहों के अन्तर के बराबर अपने-अपने वर्ग के राजपुरुषों का भवन होना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्रम्-

विस्तार हाथ	44	42	40	38	36
अङ्गुल प्रमाण	0	0	0	0	0
दीर्घ हाथ	60	57	54	51	48
अङ्गुल	8	8	8	8	8

अथ पारशवादीनां गृहमानमाह (53, 15) —

अथ पारशवादीनां तु स्वमानसंयोगदलसमं भवनम्।
हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम्॥ 11॥

अथ पारशवादीनामिति। अथानन्तरं ये ब्राह्मणेन शूद्रायां जातास्ते पारशवाः। एवं वैश्यायां जातो भूर्जकण्टकः। क्षत्रियायां जातो मूर्धावसिक्तः। एतेषां पारशवादीनां

स्वमानसंयोगदलसमं भवनं कार्यम्। स्वमानस्यात्मीयमानस्य द्वयोरेव मातापित्रोः संयोगादैक्यं कृत्वा तस्य दलमर्धं तत्तुल्यं पारशवादेर्भवनं गृहं कार्यम्। एतदुक्तं भवति— ब्राह्मणस्य यन्मानं यच्च शूद्रस्य तयोरैक्यं कृत्वा अर्धदलंकार्यम्। तन्मानं पारशवगृहस्य। वैश्यायाः क्षत्रियायाः पुत्राणामेवमपि। सर्वेषां नृपादीनां पारशवन्तानां स्वमानादात्मीयमानाद्धीनमधिकं वा वास्तु न शुभकरमिति।

भाषा— पारशव इत्यादि जातियों को माता-पिता के वर्णजनित उपर्युक्त मान के योगदल के समान गृह का मान होना चाहिए। यथा- पिता ब्राह्मण एवं माता शूद्र वर्ण की है तो ब्राह्मण व शूद्र के गृहमान के योग के समान मान हो सकता है। उक्त कहे गए मान से न्यूनाधिक मान वाला गृह सभी को अशुभदायक सिद्ध होता है।

विशेष- इस श्लोक के प्रसङ्ग में टोडरानन्दोक्त वास्तुसौख्यं के रचयिता नीलकण्ठ दैवज्ञ[1] ने कहा है कि ब्राह्मण एवं शूद्र से उत्पन्न सन्तान पारशव कही जाती है। (मनुस्मृति आदि में जैसा कि आया है) आदि शब्द से अन्यान्य अनुलोम एवं प्रतिलोम सम्बन्धों से जन्म लेने वाले वर्णसङ्कर जातियों का बोध होता है। उनके माता-पिता की जाति के अनुसार जो भी भवन का मान होता है, उसे जोड़कर उचित मान या फिर आधे मान से गृह निर्माण किया जा सकता है, ऐसे गृह शुभ कहे गए हैं, जैसी कि उस काल की मान्यता रही है। *(वास्तुसौख्य श्लोक 192 की टीका)*

पारशवादीनां गृह स्पष्टार्थ चक्रम्—

विस्तार हाथ	20	16
अङ्गुल प्रमाण	0	0
दीर्घ हाथ	23	18
अङ्गुल	12	19
व्यङ्गुल	0	12

---

1. हालाँकि टोडरानन्द ग्रन्थ का रचनाकार विद्वानों ने शहंशाह अकबर के दरबारी, प्रधानमन्त्री टोडरमल्ल को माना है और कतिपय मातृकाओं में इस बात को पुष्पिकादि में स्पष्ट भी किया गया है किन्तु विदर्भ देशस्थ अनन्तदैवज्ञ के पुत्र नीलकण्ठ के पुत्र गोविन्ददैवज्ञ (शकाब्द 1491) के कथन को नहीं भूलना चाहिए जिसने मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधाराटीका में दो-तीन स्थलों पर इस बात की पुष्टि की है कि टोडरानन्द की रचना का श्रेय उसके पितृचरण नीलकण्ठदैवज्ञ (ताजिकनीलकण्ठीकार) को है। यथा- पितृचरणैश्च टोडरानन्दे राहुचारविलासे प्रसङ्गेनाभ्यधायि...। (पीयूषधारा टीका 4, 6)
एवं— तथा मण्डलभेदेनाप्यशुभफलानि गर्गसंहितायामभिहितानि तानि सर्वाण्यपि पितृचरणकृत टोडरानन्दे राहुचारविलासतोऽवधार्याणि नात्राप्रस्तुतं लिख्यतेऽस्माभिः। (तत्रैव)
एवं— वसिष्ठसंहितायामस्मत्पितृचरणकृते टोडरानन्दे च सामान्यविशेषभावमहिता द्रष्टव्या। (तत्रैव 6, 3?)

अथ पश्चाश्रमिणां गृहमाह (53, 16)—

पश्चाश्रमिणाममितं धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च।
नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ॥ 12 ॥

पश्चाश्रमिणाममिति। पशूनां चतुष्पदानां आश्रमिणां प्रव्राजकानां, च अमितं अपरिमितं यथेष्टपरिमितं गृहस्य। तथा धान्यगृहस्य धान्यानि यत्र स्थाप्यन्ते, आयुध-गृहस्यायुधानि यत्र स्थाप्यन्ते, वह्निगृहस्य चाग्निशालायाः, रतिगृहस्य क्रीडावेश्मनः, एषाममितमपरिमितं प्रमाणम्। शास्त्रकारा वास्तुज्ञानविदो हस्तशतात्परतः उच्छ्रितं नेच्छन्ति, हस्तशतादूर्ध्वमुच्छ्रितं गृहं न कार्यम्। 'वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः' (श्लोक 8) इत्यस्यायमपवादः। तथा च गर्गः— शतहस्तोच्छ्रितं कार्यं चतुःशालगृहं बुधैः। अपि तत्त्वेकशालं तु शुभदं तत्प्रकीर्तितम्॥ (सविवृत्ति बृहत्संहितायां भट्ट उत्पलोद्धृतम्)

भाषा— पशुधन (के लिए गोष्ठ या गोठा, खिड़क) एवं श्रमण (संन्यासी) के आवास-विहार, धान्य के कोठार, आयुधागार, अग्निशाला एवं रतिगृह को प्रमाण रहित अर्थात् इच्छा के अनुसार बनवाया जा सकता है तथापि शास्त्रवेत्ता सौ हाथ से अधिक ऊँचाई को ठीक नहीं मानते हैं।

विशेष— इस प्रसङ्ग में गर्ग ने कहा है कि बुद्धिमान् को सौ हाथ से ऊँचा चार कक्ष का गृह बनवाना चाहिए। एक कमरे का गृह इच्छानुरूप बनवाया जा सकता है, ऐसा शुभ कहा गया है।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां नृपादिगृहपरिमाण निर्णयाध्यायः षष्ठः ॥ 6 ॥

इस प्रकार जीवनाथ झा दैवज्ञ कृत वास्तुरत्नावली नामक ग्रन्थ में राजाओं व अन्य जनों के गृहों का परिमाण संज्ञक छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ 6 ॥

अथ गृहद्वारनिर्णयाऽध्यायः सप्तमः ॥ 7 ॥

तत्र द्वारनिर्णयो यथा वास्तुप्रदीपे[1] —

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागन्तु दक्षिणे।
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥ 1 ॥

नवभागमिति। गृहं भवनं, नवभागं समाननवविभागं कृत्वा, तेषु दक्षिणे पञ्चभागं, उत्तरे वामे त्रिभागं कार्यम्। शेषं शेषस्थानं द्वारं प्रकीर्तितम्।

भाषा— भूखण्ड पर जिस दिशा में भवन निर्मित करना हो, उस ओर की लम्बाई के समानतः नौ भाग करे। इनमें से पाँच भाग दाहिनी ओर तथा तीन भाग बायीं ओर त्याग दें और शेष एक (बायीं ओर से चतुर्थ) भाग में द्वार का निवेश करना प्रशस्त होता है।

अथ पूर्वादिचतुर्दिक्षु द्वारनिवेशनफलान्याह (बृहत्संहिता 53. 69-73) —

नवगुणसूत्रविभक्ताम्यष्टगुणेनाऽथवा चतुःषष्टेः।
द्वाराणि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः ॥ 2 ॥

द्वारफलं पूर्वे—

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरताऽनृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥ 3 ॥

दक्षिणद्वारफलं —

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भैक्ष्यपानसुतवृद्धिः।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ 4 ॥

पश्चिमद्वारफलं—

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्नं सुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत्।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरं ॥ 5 ॥

1 [illegible]

उत्तरद्वारफलम् —

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत्।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रियाः नैःस्वम् ॥ 6 ॥

व्याख्या- अत्र पूर्वादिदिक्षु दैर्घ्यमष्टधा कृत्वा दक्षिणावर्तेन फलं ज्ञातव्यम्। अत्र वास्तुशास्त्रे ईशानकोणस्य पूर्वेण सम्बन्धः। एवमाग्निकोणस्य दक्षिणेन सह सम्बन्धः। नैर्ऋतिकोणस्य पश्चिमेन सह सम्बन्धः। वायव्यस्य उत्तरेण सम्बन्ध इति। अत्र द्वारन्यासफलानि चक्रे द्रष्टव्यानीति। तथा चोत्पलभट्टः— नवगुणेन सूत्रेण यानी विभक्तानि द्वात्रिंशद् द्वाराणि नवगुणेन सूत्रेणैकाशीतिपदे अष्टगुणेन चतुःषष्टिरिति कारणाद् द्वात्रिंशद् द्वाराण्यनलादीनि तेषामनलादीनां द्वाराणां क्रमेण परिपाट्या फलोपनयः फलकथनं क्रियत इति वाक्याध्याहारः।

अधुना तदेवाह- अनिलभयमिति। शिखिसंज्ञे आग्नेयद्वारे, अनिलभयं वायुभीतिर्भवति। एवं स्त्रीजननं कन्यका जन्म, पर्जन्ये। प्रभूतधनता बहुवित्तत्वं जयन्ते। इन्द्रे नरेन्द्रवाल्लभ्यं नृपवल्लभत्वम्। सूर्ये क्रोधपरता क्रोधशीलता। सत्येऽनृतत्वमसत्यभाषित्वम्। भृशे क्रौर्यं क्रूरता। अन्तरिक्षे चौर्यं तस्करत्वम्। एवं पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि निर्देशः।

अथ दक्षिण आह- अल्पसुतत्वमिति। अनिले अल्पसुतत्वं अल्पपुत्रत्वम्। पौष्णे प्रैष्यं दासत्वम्। वितथे नीचत्वं नीचता। बृहत्क्षते भक्ष्यपानसुतानां वृद्धिः। याम्ये रौद्रं कल्याणराहित्यम्। गन्धर्वे कृतघ्नं कृतं हन्तीति कृतघ्नत्वम्। भृङ्गराजे धनवर्जितं धनशून्यम्। मृगाख्ये सुतवीर्यघ्नं पुत्रबलनाशनम्। एवं याम्येन दक्षिणेन द्वारनिर्देशः कार्यः।

अथ पश्चिम आह- सुतपीडेति। पित्र्ये सुतपीडा पुत्रव्यथा। दौवारिके रिपुवृद्धिः शत्रुबाहुल्यम्। सुग्रीवे सुतधनावाप्तिः कुसुमदन्ते सुतार्थफलसम्पत्-पुत्रधनफलसम्प्राप्तिः। वारुणे धनसम्पत् धनानां सम्पत्। असुरे नृपतिभयं राजभीतिः। शोषे धनक्षयो विनाशः। पापयक्ष्माख्ये रोगो गदः। इत्यपरं पश्चिमायां द्वारनिर्देशः।

अथोत्तरस्यामाह- वधबन्धेति। रोगाख्ये वधबन्धः। नागे रिपुवृद्धिः शत्रुबाहुल्यम्। मुख्याख्ये सुतधनलाभः सुतानां पुत्राणां धनस्य च लाभः। भल्लाटे समस्तगुणसम्पत् समस्तानां निःशेषाणां शौर्यादीनां गुणानां सम्प्राप्तिः। सौम्ये पुत्रधनाप्तिः सुतवित्तलाभः। भुजङ्गे सुतेन पुत्रेण सह वैरं द्वेषः। आदित्ये स्त्रियां दोषाः-तद्दुष्टा अशुभाः। दित्याख्ये नैःस्वं निर्धनत्वम् एवमुत्तरतो द्वारनिर्देशः कार्यः।

अत्र विशेषविचारोऽभिधीयते। [illegible] चैकाशीतिपदेन नवगुणसूत्रविभक्तानि [illegible] चतुःषष्टेरित्यस्मादेव विकल्पादवगम्यते। [illegible] विश्वकर्मणा एकाशीतिपदगतचतुःषष्टिपदान्युक्तानि। [illegible]

भाषा— किसी भूखण्ड पर इक्यासी पद वास्तु में [illegible]

और चौसठ पद वास्तु में अष्टगुणित सूत्र (8 × 8) से विभाजित होकर अनिल, पर्जन्यादि देवों के जो 32 द्वार बनते हैं, उनका फल यहाँ कहा जा रहा है। ज्ञातव्य है कि पूर्व के द्वार ईशान कोण से, दक्षिण के द्वार आग्नेय कोण से, पश्चिम के द्वार नैर्ऋत्य कोण से और उत्तर दिशा के द्वार वायव्य कोण जाने जाएँगे।[1]

पूर्व दिशा के द्वार का फल इस प्रकार है— शिखी के पद पर द्वार हो तो अग्निभय, पर्जन्य-द्वार से कन्याओं का जन्म, जयन्त के पद पर द्वार हो तो अत्यधिक धन, इन्द्र-द्वार से राजा का प्रियपात्र, सूर्य-द्वार से क्रोधभाव, सत्य-द्वार से असत्यभाषण, भृश-द्वार से क्रूरता एवं अन्तरिक्ष-द्वार से चोरों का भय— इस प्रकार फल जाने।

दक्षिण दिशा के द्वार के फल इस प्रकार होंगे— याम्य दिशा के प्रथम भाग अनिल में द्वार से अल्पपुत्र, पूषा-द्वार से दासता, वितथ-द्वार से नीचता, बृहत्क्षत्-द्वार से सुभोजन-सुपान एवं सत्पुत्र, यम-द्वार से रौद्रभाव, गन्धर्व-द्वार से कृतघ्नता, भृङ्गराज-द्वार से निर्धनता तथा मृग-द्वार से पुत्र बल की हानि होती है।

पश्चिम दिशा के द्वार के निम्न फल होंगे— परा दिशा में पितृ पद पर द्वार हो तो पुत्रव्यथा, दौवारिक-द्वार से शत्रुवृद्धि, सुग्रीव-द्वार से पुत्र एवं धनागम, पुष्पदन्त-द्वार से पुत्र-धनागम, वरुण-द्वार से धन-सम्पदा, असुर-द्वार से राजभय, शोषद्वार से धन-नाश होता है।

अथ द्वारफलचक्रम्

पूर्व

ईशान — अग्नि

	अग्निभय	स्त्रीजन्म	धनवृद्धि	नृपोपलब्धि	क्रोधवृद्धि	असत्यता	क्रूरता	चोरभय		
फल	शिखी	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	अन्तरिक्ष	फल देव	फल
स्त्रीपरहानि	दिति								अनिल	अपुत्रता
पुत्रनाश	अदिति								पूषा	दासता
वैर	भुजंग								वितथ	नीच कर्म प्रवृत्ति
पुत्र-धन-प्राप्ति	सोम								बृहत्क्षत	भोज्य-पान-सुत-वृद्धि
सर्वगुणोपलब्धि	भल्लाट								यम	क्रूरता
धन-पुत्र-लाभ	मुख्य								गन्धर्व	कृतघ्नता
शत्रुवृद्धि शत्रुभय	नाग								भृंगराज	निर्धनता
वध-बन्ध	रोग								मृग	पुत्रबल-ह्रास
फल	पापयक्ष्मा रोगभय	शोष धनक्षय	असुर राजभय	वरुण धनलाभ	कुसुमदन्त ऐश्वर्य	सुग्रीव पुत्रार्थलाभ	दौवारिक शत्रुवृद्धि	पितर सुतपीड़ा	देव	फल

उत्तर — दक्षिण

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

1. यथा आचार्य वराहमिहिरेण समासंहितायानिबन्धने स्पष्टतरं निबद्धम् — पूर्वाण्यैशान्यां याम्याग्नेय्यां दक्षिणानि जानीयात्। द्वाराणि नैर्ऋतात् पश्चिमान्युदक्स्थानि वायव्याम्॥ (भट्टोत्पलविवृत्ति 52, 73)

उत्तर दिशागत द्वार के फल रोगादि स्थानों से इस प्रकार होंगे— प्रथम रोग के पद पर द्वार से वध एवं बन्धन, सर्प-द्वार में शत्रुओं की वृद्धि, मुख्य-द्वार में धन-पुत्रलाभ, भल्लाट-द्वार में सभी शौर्यादि गुण व सम्पदा प्राप्ति, सोम-द्वार में पुत्र-वित्त की सुलभता, भुजङ्ग-द्वार में पुत्र-विरोध, अदिति-द्वार में स्त्री दोष की उत्पत्ति एवं दिति-द्वार में निर्धनता होती है।

अथैशानादिचतुष्कोणानां द्वारफलमाह ग्रन्थान्तरे (बृहद्दैवज्ञ. 86, 364-67) —

दुःखशोकौ धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम्।
स्त्रीजन्म पुत्रधनहानी प्राच्यां द्वारफलानि च॥ 7॥

दक्षिणद्वारफलं —

निर्धनं बन्धनं भीतिः पुत्राप्तिश्च धनागमः।
यशोलब्धिश्चौरभयं व्याधिभीतिश्च दक्षिणे॥ 8॥

पश्चिमद्वारफलं—

नैःस्वं स्त्रीदुःखयोगश्च लक्ष्मीप्राप्तिर्धनागमः।
सौभाग्यं धनलाभश्च दुःखं शोकश्च पश्चिमे॥ 8॥

तथा चोत्तरद्वारफलम् —

शत्रुवृद्धिर्महद्दुःखं हानिः सम्पत्सुखागमः।
प्राप्तिर्दुःखं शोकबाधा चोत्तरस्यां दिशि क्रमात्॥ 9॥

व्याख्या- पूर्ववदीशानादिकोणेषु दैर्घ्यस्याष्टौ विभागाः कार्याः तत्र दक्षिणावर्तेन क्रमेण फलं ज्ञेयमिति।

दुःखशोकाविति। दुःखशोकौ, धनप्राप्तिः, नृपपूजा, महद्धनम्, स्त्रीजन्म, पुत्रधनहानीति प्राच्यां द्वारफलानि भवन्ति। अत्रैतदुक्तं भवति। प्राच्यांदिशि यो गृहस्तास्मनीशानकोणमारभ्याग्निकोणं यावदष्टौ विभागाः कार्याः। तत्र क्रमेणाष्टौ फलानि प्रतिपादितानि तानि स्फुटान्येव।

अथ दक्षिणे दक्षिणदिशि वन्हिकोणमारभ्याष्टौ विभागाः कार्याः। तत्र प्रत्येक विभागे द्वारफलानि तत्कोणमारभ्यैव ज्ञेयानि। फलानि यथा- प्रथमविभागे द्वारकृते सति निधनं मरणं, द्वितीये बन्धनं, तृतीये भीतिर्भयं, चतुर्थे पुत्राप्तिः सुतलब्धिः, पञ्चमे धनागमः धनस्य लब्धिः षष्ठे यशोलब्धि, सप्तमे चौरभयं, अष्टमेव्याधिभीतिश्च भवति।

एवं पश्चिमे नैर्ऋत्यकोणमारभ्य वायव्यकोणपर्यन्तमष्टौ विभागाः कार्याः तत्र प्रथमविभागे: नैःस्वं, द्वितीये स्त्रीदुःखयोगः, तृतीये लक्ष्मीप्राप्तिः चतुर्थे धनागमः पञ्चमे सौभाग्यं, षष्ठे धनलाभः, सप्तमे दुःखं, अष्टमे शोकमिति क्रमेण प्रत्येक विभागफलानि विज्ञेयानि।

उत्तरस्यां दिशि वायव्यकोणमारभ्यैशानकोणपर्य्यन्तमष्टौ भागाः कार्याः। तत्र प्रथमविभागे शत्रुवृद्धिः, द्वितीये महद्दुःखं, तृतीये हानिः चतुर्थे सम्पत्सुखागमः, पञ्चमे प्राप्तिः षष्ठे दुःखं, सप्तमे शोकः, अष्टमे बाधेति फलानि क्रमेण ज्ञेयानि।

भाषा— ग्रन्थान्तर में (64 पद वास्तु के अनुसार) प्रदक्षिणतः प्रत्येक भाग के द्वार के फल आए हैं। इसमें प्रत्येक भाग के द्वार के फल निम्नानुसार होंगे। पूर्व दिशा के आठों पद में से प्रति पद क्रमशः दुःख, शोक, धनप्राप्ति, नृप सम्मान, महद्धन (पाठान्तर से महद्भय), कन्याओं का जन्म, अपुत्रता एवं हानि होती है।

दक्षिण दिशा के आठों पदों पर द्वार से गृहपति को प्रदक्षिणतः क्रमशः निधन, बन्धन, भय, पुत्रप्राप्ति, धनागम, यशोलाभ, चोरभय और व्याधिभय होता है।

पश्चिम दिशा के आठों पदों पर द्वार से गृहपति को प्रदक्षिण क्रम से निर्धनता, स्त्री को पीड़ा का योग, लक्ष्मीप्राप्ति, धनागम, सौभाग्य, धनलाभ, दुःख एवं शोक की प्राप्ति होती है।

उत्तर दिशा के आठों पदों पर द्वार बनने पर गृहस्वामी को वामावर्त से क्रमशः शत्रुवृद्धि, महान् दुःख, हानि, सम्पदा, सुखागम, प्राप्ति, दुःख, शोक-बाधाएँ मिलती है।

अतो द्वारस्थापने विशेषमुक्तं मुहूर्तमार्तण्डे (6, 17) —

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाः सव्यतोऽङ्कोद्धृते
दैर्घ्ये द्व्यंशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षूदिता ॥ 10 ॥

व्याख्या- अथ भित्तिप्रसङ्गेन द्वारमाह— दैर्घ्ये गृहदैर्घ्ये तस्मिन् अङ्कात्ते नवभिर्भाजिते सति पूर्वादि दिक्षु क्रमेण सव्यतो वामभागात् त्रिषडर्थपञ्चमलवे द्वाः द्वारमुक्तम् मुनिभिरिति शेषः। त्रयश्च षट् च अर्थाश्च पञ्च च त्रिषडर्थपञ्च एतेषां संख्यापूरका त्रिषडर्थपञ्चमास्ते च ते लवाश्च तेषां समाहारस्तस्मिन्। अत्रार्थसंख्या पञ्चेति, एतदुक्तं भवति- गृहदैर्घ्यं नवभागं कृत्वा पूर्वाभिमुखं गृहं क्रियमाणे वामभागादंशद्वयं त्यक्त्वा तृतीयांशे द्वारं कर्तव्यम्। एवं दक्षिणाभिमुखे गृहे दैर्घ्यं नवभागं कृत्वा अंशपञ्चकं मुक्त्वा षष्ठेंशे द्वारं कार्यम्। पश्चिमाभिमुखे तथैवांशचतुष्कं त्यक्त्वा पञ्चमांशे द्वारं कार्यम्। उदङ्मुखे पञ्चांशे एव द्वार कर्तव्यम्। सर्वासु दिक्षु अब्धिलवके चतुर्भागे द्वारुदितेति, किं लक्षणद्वाः द्व्यंश-समुच्छ्रिता द्विभागोच्चा।

भाषा— गृह की लम्बाई को नौ से भाजित कर पूर्वादि किसी भित्ति में द्वार वाम भाग से 3, 6, 5, 5वें भाग में बनाना चाहिए अर्थात् पूर्व दिशा में तीसरे पद में, दक्षिण में छठवें, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में पाँचवें पद पर द्वार बनाना चाहिए अथवा समस्त दिशाओं में चतुर्थ भाग में दो भाग के बराबर ऊँचा द्वार रखा जाना चाहिए।

उक्तश्च वराहेण (ज्योतिर्निबन्ध पृ. 172, 11) —

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्र सव्याद् द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे।
चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुः पञ्चमके तथोदक् ॥ 11 ॥

दैर्घ्य इति। दैर्घ्ये सव्याद् दक्षिणात् नवांशात् नवसंख्यभागादत्र पदं ज्ञेयम्। तत्र प्राक् पूर्वदिशि त्रिचतुर्थभागे द्वारं शुभं भवतीति शेषः। दक्षिणस्यां दिशि चतुर्थषष्ठे भागे, पश्चात् पश्चिमदिशि चतुः पञ्चमके, उदगुत्तरस्यां तथा पूर्ववत् चतुःपञ्चमभाग एव द्वारं शुभं भवति।

भाषा— वराह की एक उक्ति है (जो बृहत्संहिता में नहीं है) कि गृह की लम्बाई के नौ भाग करे और बायीं ओर से पूर्व दिशा में प्रथम दो पद को त्यागते हुए तृतीय एवं चतुर्थ भाग में, दक्षिण में चतुर्थ एवं छठवें भाग में एवं पश्चिम-उत्तर दिशा में चतुर्थ एवं पाँचवें भाग में द्वार बनाना चाहिए, यह शुभ होता है।

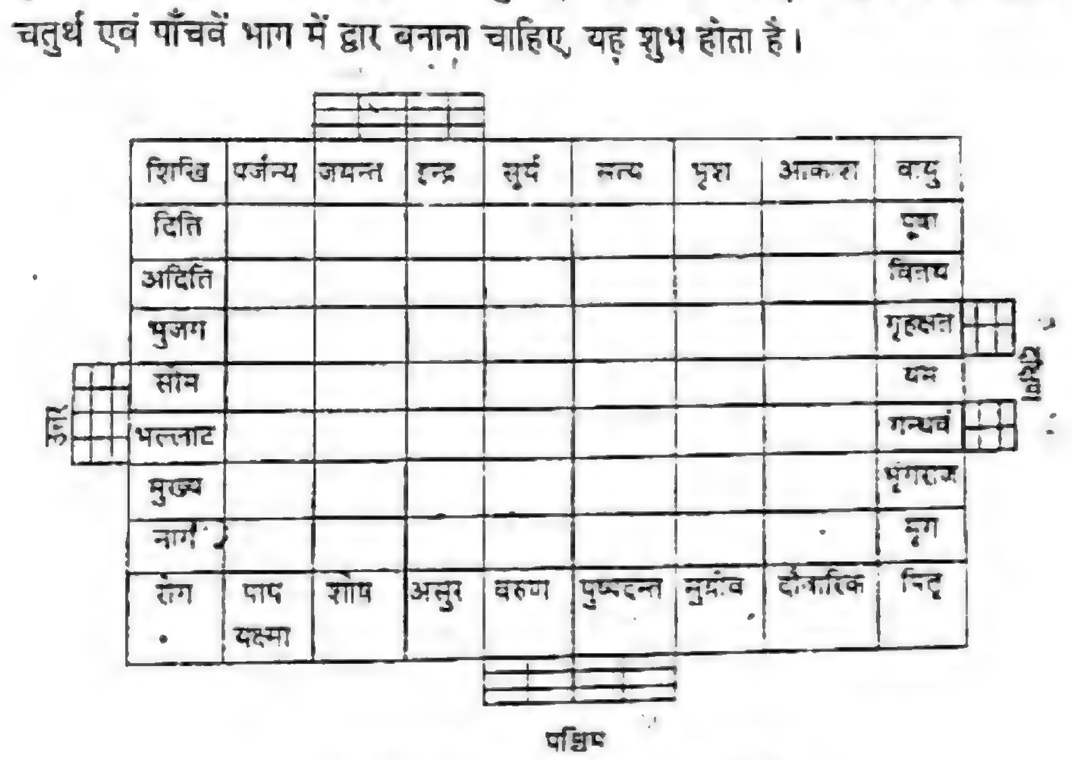

वास्तुमण्डल में मुख्य द्वार की स्थिति

अथ द्वारवेधं तत्परिहारञ्चाह श्रीवराहः (बृहत्संहिता 53, 74) —

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविरुद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ 12 ॥

व्याख्या- यदि द्वारसम्मुखे मार्गः वृक्षो वा अन्यगृहकोणो वा कूपो वा स्तम्भो वा देवमठो वा भ्रम जलनिर्गमः तदा द्वारवेधः। स च गृहपतेरशुभकर इत्यर्थः। अथ द्वारोच्यद्विगुणमितां भूमिं विहाय यदि मार्गादयस्तिष्ठन्ति तदा द्वारं न दोषायेति।

भाषा— किसी भी गृह में द्वार के सामने मार्ग, वृक्ष, कोण, कूप, स्तम्भ एवं कोल्हू या चलित चक्र (रहट आदि) और अन्य कोई द्वार हो तो शुभ नहीं होता है।

इसके परिहार स्वरूप यह मत है कि यदि द्वार या भवन की दुगुनी ऊँचाई से अधिक दूरी पर ये दोष हों तो वेध नहीं समझना चाहिए।

जीर्णगृहकाष्ठादिविषये व्यासोक्तिं (वास्तुसौख्यं 123) —

अन्यवेश्मस्थितं दारुं नैवान्यस्मिन् प्रयोजयेत्।
न: तत्र वसते कर्त्ता वसेन्नपि न जीवति॥ 13॥

अन्यवेश्मस्थितमिति। अन्यवेश्मस्थितं अन्यगृहयोजितं, दारु काष्ठ, अन्यस्मिन् नैव प्रयोजयेत् नैव स्थापयेत्। एवं योजने कृते फलमाह- कर्ता गृहकर्ता तत्र तस्मिन् गृहे न वसते न तिष्ठति, हठाद्यदि वसेत्तदा तत्र वसन् तिष्ठन् न जीवति।

भाषा— दूसरे के गृह में प्रयुक्त हुए काष्ठादि का उपयोग अन्य गृह में नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उद्वास या मृत्यु की आशङ्का जाननी चाहिए।

तथाच शार्ङ्गधर: (तत्रैव 125) —

नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते।
जीर्णे च नूतनं काष्ठं न जीर्णं नूतने गृहे॥ 14॥

नूतन इति। नूतने नव्यगृहारम्भे नूतनं नवीनं काष्ठं, जीर्णे प्राचीने जीर्णं प्रशस्यते। जीर्णे नूतनं काष्ठं, नूतने जीर्णं च न प्रशस्यते।

भाषा— नूतन गृह में नूतन काष्ठ व जीर्ण में जीर्ण काष्ठ का उपयोग किया जाना प्रशस्त होता है। जीर्णगृह में नूतन काष्ठ का उपयोग किया जा सकता है परन्तु नूतन में जीर्ण वस्तु का प्रयोग सम्भव नहीं जाने।

अथ समराङ्गणे (तत्रैव 124)-

इष्टिकालोहपाषाणमृत्तिकाजीर्णमायसम्।
तृणं पत्रं बुधै: प्रोक्तं दारु नूत्नं गृहाय वै॥ 15॥'[1]

इष्टिकेति। इष्टिका इष्टिका, आयसं आयस वा धातु। अन्य सुगमम्।

भाषा— पुराने गृह में प्रयुक्त ईंट, काष्ठ, लोहा, पाषाण, मृतिका, तृण-पत्रादि को उपयोग नए गृह में निषिद्ध जाने। ज्ञानियों का मत है कि पुरानी सामग्री का उपयोग जीर्ण गृह में ही किया जा सकता है।

अथ प्रत्येकद्वारफलमाहश्रीवराह: (53, 75-79) —

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा।
पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनि:स्राविणा प्रोक्त:॥ 16॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।

---

1. 'इष्टकाकाष्ठपाषाणमृत्तिकाचूर्णमायसम्। तृणं पत्रं बुधै: प्रोक्तं दारुमङ्गलकारणाय वै॥' इति पाठान्तर।

स्तम्भेन स्त्रीदोषा: कुलनाशो ब्राह्मणोऽभिमुखे॥ 17॥
उन्माद: स्वयमुद्घाटिते पिहितेऽथ च स्वयं कुलविनाश:।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनदं नीचे॥ 18॥
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च।
आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति॥ 19॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय।
बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभि: पीडा॥ 20॥

व्याख्या- यदि रथ्या विद्धस्तदा गृहस्वामिनो नाश:, वृक्षवेधे पुत्रस्य दोष:, पङ्कविद्धे शोक:, जलनिर्झरविद्धे व्ययोऽतीव, कूपविद्धे-अपस्माररोग:, देवालयविद्धे विनाश: स्तम्भविद्धे स्त्रीदोष:, ब्राह्मणोऽभिमुखे द्वारे कुलनाश:, यदि द्वारमतिसङ्कीर्णं तदा पीड़ावृद्धि:, अतिविस्तृतद्वारं हानिकरं, यदि अन्तर्गृहाद्बहिर्बाह्ये द्वारं तदा प्रवास:, दिग्भ्रमे द्वारे चौरभयम्।

रथ्याविद्धमिति। रथ्या मार्गेण विद्धं द्वारं नाशाय गृहस्वामिनो नाशाय भवति। तरुणा वृक्षणे विद्धं द्वारं कुमारदोषदं सुतकष्टदं भवति। पङ्कद्वारे शोको भवति। अम्बुनि:स्राविणा विद्धे व्ययो धनरत्नादीनां क्षय: प्रोक्त:। कूपेन विद्धद्वारे अपस्मार:- अपस्माराभिधेयरोगो भवति। देवताविद्धे विनाश: धनजनानां विनाशो भवति। स्तम्भेन विद्धे स्त्रीदोषा: स्त्रीणां मध्ये दोषा: दौ:शील्यादिका:-भवन्ति। ब्राह्मणोऽभिमुखे ब्राह्मणगृहविद्धे कुलनाश: गृहस्वामिनोऽन्वयनाशो भवति। किं वा बाह्ये ब्राह्मणाभिमुख इति नावगम्यते यस्मादुत्तममुत्तराभिमुखं पञ्चमं द्वारं शुभमुक्तम्। तद्गृहमध्यगं भवतीत्याह-'बधबन्धोरिपुवृद्धिर्धनसुतकाभ: समस्तगुणसम्पदित्यादि' अत्रोच्यते- बाह्यस्याभ्यन्तरस्य च ब्राह्मणोऽभिमुखस्य द्वारस्यानिष्टं फलं प्रत्येकदेवताविद्धस्य फलमिदमाह—

'देवद्वारं विनाशाय शङ्करद्वारमेव च' इत्यादि। तथा—

ब्रह्मणा यच्च संविद्धं तद्द्वारं कुलनाशनम्।

अभ्यन्तरब्रह्मणो मुखस्य द्वारस्यानिष्टफलं विश्वकर्माह—

गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।
आवहेत् कलहं शोकं नारीर्वा सम्प्रदूषयेत्॥

भारद्वाजोऽपि—

शिराममर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वश:।
विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत्॥

तथा च यम आह—

ब्रह्मस्थाने न विध्येत नागदन्तस्थलानि च।

मृदारुभिर्गवाक्षैश्च मानपानैस्तथैव च॥

द्वारैश्च भित्तिभिश्चैव शय्याभागैः कथञ्चन।

स्वामिनो मरणं तत्र महादुःखेन पार्थिव॥

एवं चेत्तदाऽऽचार्येण पूर्वापरविरुद्धेन निबन्धनं स्यात्? अत्रोच्यते-

सर्वेष्वेव वास्तुषु उत्सर्गापवादरूपेण विविधा व्याख्या च भवति। तथा च यात्राप्रकारे प्राच्यादिषु सप्त सप्त नक्षत्राण्यभिधाय पुनः सर्वद्वारिकसंज्ञक नक्षत्रचतुष्टयमाह। एवमत्रापि। तस्माददोष इति।

स्वयमुद्घाटित आत्मनैवोद्घाटिते द्वारकपाटे उन्मादश्चित्तस्य भवति। स्वयं पिहिते निपीडिते कुलस्य वंशस्य विनाशः स्वयं भवति। मानाधिके उक्त स्वप्रमाणादभ्यधिके द्वारे नृपभयं राजभीतिर्भवति। नीचे प्रमाणाल्पे दस्युभयं चौर भीतिर्व्यसनं दुःखं च भवति॥

द्वारस्योपरि यद्द्वारं तत् शिवाय न श्रेयसे भवति। यच्च सङ्कटं पृथुत्वेनाल्पं तच्च न शिवायैव भवति। आख्यात्तमतिविपुलं मुरजाकारं द्वारंक्षुद्भयं ददाति। कुब्जमस्पष्टं द्वारं कुलनाशनं वंशक्षयावह भवति॥

अतिपीडितमुदुम्बरेणातिपीडितं द्वारं गृहस्वामिनः पीडां करोति। अन्तर्गृहाभ्यन्तरे विनतं द्वारमभावाय मरणाय स्वामिनो भवति। बाह्यविनते बहिर्गते द्वारे प्रवासो भवत्यन्तदेशनिवासः। दिग्भ्रान्ते दिक्स्थ अन्यां दिशं प्रेक्ष्यमाणे दस्युभिश्चौरैः पीडा भवति॥

भाषा— यदि गृह का द्वार मार्ग से विद्ध हो तो गृहस्वामी का विनाश होता है। वृक्ष से विद्ध हो तो बालकों में दोष होता है। यदि द्वार के सामने कीचड़ जमा रहता हो तो शोक होता है। जलोत्थान यन्त्र या रहट, पानी का नाला आदि घर के सामने हो तो व्यर्थ-व्यय बढ़ जाता है।

जलस्रोत और कूप से विद्ध हो तो गृहपति को अपस्मार या मिरगी हो जाता है। यदि कोई देवालय या देवस्थान हो तो कर्ता का विनाश होता है। यदि स्तम्भ हो तो स्त्रियों को दुश्शीलता और ब्रह्मा के सम्मुख[1] होने पर कुल का विनाश हो जाता है।

जिस गृह का द्वार बिना खोले ही खुल जाता हो, उसमें निवास करने वाले को उन्माद ही होता है। अपने आप द्वार यदि बन्द हो जाता हो तो कुल का नाश जानना चाहिए। यदि द्वार निश्चित मान से अधिक बड़ा हो जाए तो राजा से भय एवं कम प्रमाण

---

1. ननु ब्रह्मवेधो कुलनाशः इत्युक्तं तत्र सन्देहः। किं वास्तुपदविन्यस्तब्रह्मपदवेधो, गृहबहिर्भूतब्रह्मप्रतिमावेधाद्वेति स्पष्टं नावगम्यते। उच्यते। अविशेषादुभयविधस्य ब्रह्मणो वेधो दुष्टफल इह गृह्यते।

का हो तो चोर-तस्करों से भय एवं अनिष्ट होता है।

यदि गृह के एक द्वार के ऊपर दूसरे खण्ड का द्वार बने तो उससे शुभ नहीं होता बल्कि सङ्कट ही होता है। कपाट यदि मोटा या पतला हो जाए तो गृहस्वामी भूख से व्याकुल होता है और यदि द्वार टेढ़ा हो जाए तो कुल का नाश होता है।

द्वार पर यदि जोड़ लगने से द्वार भारग्रस्त हो जाए, तो गृहकर्ता को पीड़ाप्रद होता है। किंवाड़ गृह के भीतर लटका हो तो गृहस्वामी के अभाव का कारण सिद्ध होता है जबकि बाहर की ओर झुका हुआ हो तो उसका प्रवास रहता है। यदि द्वार की दिशा का सम्यक् ज्ञान नहीं हो तो वहाँ दस्यु-डाकुओं का उत्पात बना रहता है।

उक्तञ्च वराहेण (75, 82) —

पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः।
श्वपचादयोऽन्त्यजाद्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति॥ 21॥

पुरभवनग्रामाणामिति। पुरञ्च भवनं च ग्रामश्च पुरभवनग्रामास्तेषां पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां निवासकर्तृणां जनानां दोषाः भवन्ति। परञ्च तेष्वेव श्वपचादयोऽन्त्यजाद्याः निवसन्तः विवृद्धिं धनपुत्रादिविवृद्धिं आयान्ति प्राप्नुन्ति।

भाषा— किसी नगर या पुर, भवन एवं ग्राम के कोणों में जो निवास करते हैं, उनको दोष (पीड़ा, कष्ट) उठाना पड़ता है किन्तु श्वपच आदि अन्त्यज, सङ्कर जाति वालों का कोणों में निवास करना उनके लिए वृद्धिकारक होता है।

विशेष— कोणों से यहाँ आशय गृह के बाहर ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोणों से हैं। इन कोणों में क्रमशः चरकी, विदारिका, पूतना एवं पापराक्षसी की स्थिति कही गई है। वराह के इस मत की पुष्टि में उत्पलभट्ट ने ये श्लोक उद्धृत करते हुए कहा है कि इनके साथ ही स्कन्द, अर्यमा, जम्बुक एवं पिलिपिञ्छ भी क्रमशः होते हैं— ऐशान्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः। चरकी विदारिनामाथ पूतना राक्षसी चेति॥ ऐशान्या चरकी प्रोक्ता स्कन्दः प्राग्भागसंस्थितः। होताशन्यां विदारी च याम्यां चैवार्यमा स्थितः। पूतना नैर्ऋते ज्ञेया जम्बुकः पश्चिमे स्थितः। राक्षसी चानिले कोणे पिलिपिञ्छस्तथोत्तरे॥ *(सविवृत्तिबृहत्संहिता 52, 81-82)*

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां गृहद्वारनिर्णयाऽध्यायः सप्तमः॥ 7॥

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में गृह के लिए द्वार-निर्णय नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ 7॥

अथ स्तम्भरोपणनिर्णयाध्यायः अष्टमः ॥ 8 ॥

तत्र गृहस्याग्निकोण स्तम्भरोपणमाह शार्ङ्गधरः (ज्योतिर्निबन्ध 168, 2) —

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।
आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद्विधानतः॥ 1 ॥

प्रासादेष्विति। प्रासादेषु देवभूभुजां गृहेषु, हर्म्येषु धनिनां वासेषु, अन्येषु गृहेष्वपि सर्वदा सततं आग्नेय्यामग्निकोणे विधानतः विधिपूर्वकं प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्।

भाषा— प्रासाद (देवालय या राजमहल), हर्म्य (हवेली या दीर्घ भवन) और सामान्य भवनों के लिए प्रथमतः अग्निकोण में स्थापित किया जाना अपेक्षित है। इसके बाद दक्षिणावर्त स्तम्भों को स्थापन के नियमों (विधान) से स्थापित करे।

शिलान्यासस्तम्भद्वारन्यासश्च वराहमिहिरोऽप्याह (53, 110-111) —

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥ 2 ॥
छत्रस्त्रग्गन्धयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन॥ 3 ॥

दक्षिणेति। दक्षिणपूर्वे कोणे आग्नेयदिशि छत्रस्त्रग्गन्धयुतः स्रग्गन्धूपाम्बरोपहार-हिरण्यमधुमांसादिभिः पूजामर्चां कृत्वा प्रथमामादौ शिलां न्यसेत् स्थापयेत्। शेषाः अन्याः शिलाः प्रदक्षिणेन न्यास्याः। अत्रैतदुक्तं भवति—प्राग्दक्षिणास्यां दिशि शिलान्यासं कृत्वा, ततो दक्षिणस्याम्, ततो नैर्ऋत्याम्, ततः पश्चिमायाम्, ततो वायव्याम्, तत उत्तरस्याम्, तत ऐशान्याम्, ततः पूर्वस्यां दिशि शिलान्यासं कुर्यादिति। अत्र केचित् 'उत्तरपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमाम्' इति वदन्ति। उत्तरपूर्वे चैशानकोणे प्रथमं शिलान्यासं कृत्वा ततः शेषाः प्रदक्षिणेन प्रदक्षिणक्रमेण न्यास्या इत्येतल्लोके स्थपतिषु दृश्यत इति। स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः। एवमनेनैव प्रकारेण स्तम्भाः समुत्थाप्याः। यथा शिलान्यासः कृतस्तथा स्तम्भानामुत्थापनं कार्यमिति।

भाषा— पहले दक्षिण-पूर्व कोण में पूजा करें और शिला रखे। तत्पश्चात् दाहिनी

ओर से शेष शिलाओं को रखे। इसी क्रम से स्तम्भों को भी खड़ा करना चाहिए। स्तम्भ को सदा छत्र, माला एवं वस्त्र से युक्त, धूप और चन्दन आदि का विलेपन करके ही खड़ा करना चाहिए। इसी विधि से द्वार को भी प्रयत्नपूर्वक खड़ा करने का प्रयास करना चाहिए।

विशेष— भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता की विवृत्ति में शिलान्यास की विधि सहित शङ्कु, स्तम्भादि आरोपण के सम्बन्ध में विस्तार से श्लोक उद्धृत किए हैं। शिलान्यास ही आजकल विशेष रूप से प्रचलित है, भवन निर्माणावसर पर स्तम्भारोपण पूर्वकाल में प्रचलित था।

तथा च ब्रह्मशम्भुः (ज्योतिर्निबन्ध 168, 1) —

सूत्रभित्तिशिलान्यासः स्तम्भस्याऽऽरोपणं सदा।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः॥ 4 ॥

सूत्र इति। सूत्रभित्तिशिलान्यासः सूत्रस्य भित्तेः शिलायाश्च न्यासः, तथा स्तम्भस्य आरोपणं, पूर्वहदक्षिणयोर्मध्ये अग्निकोणे, कुर्यादिति कश्यपः कश्यपमुनिराह।

भाषा— (ब्रह्मशम्भुपद्धति में कहा गया है कि) सूत्र, भित्ति, शिलान्यास, स्तम्भ की स्थापना प्रथमः दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में ही करनी चाहिए, ऐसा कश्यप का मत है।

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां स्तम्भरोपणनिर्णयाध्यायोऽष्टमः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में स्तम्भरोपण निर्णय नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ 8 ॥

अथ वास्तुनिर्णयाध्यायः नवमः ॥ ९ ॥

तत्र गृहारम्भे मासफलमुक्तं वास्तुराजवल्लभे (1, 17) —

चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदम्
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे।
शून्यं भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने ॥ 1 ॥

चैत्र इति। चैत्रे चैत्रसञ्ज्ञया प्रसिद्धमासे गृहादिरचितं भवनप्रासादादिविहितं शोककरं कष्टप्रदं स्याद्भवेत्। माधवे वैशाखे अर्थपदं धनधान्यप्रदं स्यात्। ज्येष्ठे ज्येष्ठसञ्ज्ञया ख्यातमासे मृत्युकरं गृहादिकर्तृमरणप्रदं स्यात्। शुचावाषाढे पशुहरं पशुविनाशः स्यात्। श्रावणे नभसि तत्तस्य पशोः, वृद्धिदं स्यात्। भाद्रपदे भाद्रपदाख्यमासे शून्यं स्यात्। इष आश्विने तु कलिकरं कलहप्रदं स्यात्। कार्तिके भृत्यक्षयं दासविनाशः स्यात्। मार्गसहस्ययोः अग्रहणे पौषे च धान्यं स्यात्। माघे माघनाममासे दहनभीरग्निभयं स्यात्। फाल्गुने श्रियं लक्ष्मीमवाप्नोति।

भाषा— चैत्र मास में गृह का आरम्भ और उसमें प्रवेश करने से शोक की प्राप्ति होती है, वैशाख में धन की प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु और आषाढ़ में पशुओं का नाश होता है। श्रावण मास में ऐसा किए जाने पर पशुधन में वृद्धि, भाद्रपद में गृह शून्य या खाली, आश्विन में क्लेश और कार्तिक में भृत्य या नौकर की मृत्यु होती है। मार्गशीर्ष व पौष माह में धन-धान्य की प्राप्ति, माघ में आगजनी की आशङ्का तथा फाल्गुन में लक्ष्मी की अभिवृद्धि होती है।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

क्रम	मास	फल	क्रम	मास	फल
1.	चैत्र	शोक	7.	आश्विन	कलह
2.	वैशाख	अर्थलाभ	8.	कार्तिक	भृत्यनाश
3.	ज्येष्ठ	मृत्यु	9.	मार्गशीर्ष	धान्य
4.	आषाढ़	पशुनाश	10.	पौष	धान्य
5.	श्रावण	पशुवृद्धि	11.	माघ	अग्निभय
6.	भाद्रपद	शून्यता	12.	फाल्गुन	धनप्राप्ति

एतदेव वास्तुप्रदीपे (बृहद्दैवज्ञरञ्जनं 86, 150-153) —

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः।
वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैवच ॥ 2 ॥
आषाढे भृत्यरत्नं वै पशुवर्ज्यमवाप्नुयात्।
श्रावणे मित्रलाभन्तु हानिर्भाद्रपदे त ॥ 3 ॥
भार्याहानिरिषे मासि कार्तिके धनधान्यकम्।
मार्गशीर्षे तथा वित्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥ 4 ॥
लाभन्तु बहुशो विन्द्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत्।
काञ्चनं फाल्गुने विन्द्यादिति मासफलम्बुधैः ॥ 5 ॥

चैत्र इति। यो नरो मनुष्यः चैत्रे चैत्रमासे, गृहं भवनं, कारयेत् स व्याधि रोगमवाप्नोति। वैशाखे धनरत्नानि, ज्येष्ठे मृत्युं मरणं, आषाढे पशुवर्ज्यं भृत्यरत्नं भृत्यं दासंय एव रत्नं मणि वै निश्चयेनावाप्नुयात्। श्रावणे मित्रलाभं तथा भाद्रपदे हानि धनादिहानिमवाप्नोति। इष आश्विनमासे भार्याहानिः स्त्रीवि नाशः स्यात्। कार्तिके-ऊर्जे धनधान्यकमवाप्नोति। तथा मार्गशीर्ष अग्रहणं वित्तं धनमवाप्नोति। पौषे तस्करतश्चौराद्भयं स्यात्। माघे बहुशो लाभं विन्द्यात् परञ्चात्रग्निमग्निभयं विनिदिशेत्। फाल्गुने काञ्चनं सुवर्णं विन्द्यात्। इति बुधैः मासफलं गृहनिर्माणे ज्ञेयम्।

भाषा— जो कोई चैत्र मास में गृह बनवाता है, वह रोगी होता है। वैशाख में अर्थ प्राप्ति होती है। ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में भृत्य-नौकर, रत्न, पशुहीनता, श्रावण में मित्र मिलन, भाद्रपद में हानि, आश्विन में स्त्री हानि, कार्तिक में धन-धान्य, मार्गशीर्ष में धन, पौष में चोरों से भय, माघ में नानाविध लाभ किन्तु अग्निभय और फाल्गुन में गृह बनवाने पर सोने की प्राप्ति होती है, ऐसा बुद्धिमानों का कथन है।

अथ विशेषः —

मुहूर्तमार्तण्डे तु पौषे शुभफलमित्युक्तं तन्मकरार्कविषयकम्।

पौषेति। पौष मकरस्थ भास्करे गृहनिर्माण शुभ ज्ञेयानि। तथा त नारायणभट्ट—
गेहं माधवपौषफाल्गुननभोमार्गेषु इति।

भाषा— नारायणभट्ट कृत मुहूर्तमार्तण्ड (6. 5) में पौष मास को भी गृह

निर्माण की दृष्टि से शुभ कहा गया है तो वहाँ मकरस्थ सूर्य को जानकर ग्रहण करना चाहिए अर्थात् जब मकरस्थ सूर्य हो तो उसमें गृह बनाना चाहिए।

तृणकाष्ठादिगृहविषये न मासदोषस्तदुक्तं (बृहद्दैवज्ञ. 86, 164; विश्वकर्माप्रकाशे 2, 26) —

पाषाणेष्टादिगेहन्तु निन्द्यमासे न कारयेत्।
तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते॥ 6॥

पाषाणेष्टादिगेहमिति। पाषाणेष्टादिगेहं प्रस्तरेष्टादिगृहरचनां निन्द्यमासे पूर्वप्रतिपादितदूषितमासे न कारयेत्। तृणकाष्ठगृहारम्भे तृणकाष्ठादिगृहनिर्माणविषये, मासदोषो न विद्यते।

भाषा— पाषाण और ईंटों वाले भवन का निर्माण निन्दित मास में नहीं करवाना चाहिए किन्तु यदि तृण या घास-फूस का छपरा खड़ा करना हो या बाँस-बल्ली, काष्ठ का ढाँचा बनाना हो तो मासदोष पर विचार आवश्यक नहीं है।

अथ सौरमासवशेन पूर्वादिमुखगृहविचारो वास्तुराजवल्लभे (1, 8) —

आदित्ये हरिकर्कनक्रघटगे पूर्वापरास्यं गृहं
कर्तव्यं तुलमेषवृश्चिकवृषे याम्योत्तरास्यं तथा।
द्वारं भिन्नतया करोति कुमतिर्द्रव्यप्रणाशस्तदा
कन्यामीनधनुर्गते मिथुनगे चास्मिन्न कार्यं गृहम्॥ 7॥

आदित्य इति। आदित्ये सूर्ये हरिकर्कनक्रघटगे हरि: सिंह: कर्क: प्रसिद्ध: नक्रो मकर: घट: कुम्भ एतेषामन्यतमस्थे रवौ सति पूर्वापरास्यं पूर्वाभिमुखं पश्चिमाभिमुखञ्च गृहं कर्तव्यं कार्यम्। तथा तुलमेषवृश्चिकवृषे तुल: प्रसिद्ध: मेष: प्रसिद्ध: वृश्चिक: प्रसिद्ध: वृषश्चैतेषामन्यतमस्थे याम्योत्तरास्यं याम्याभिमुखं दक्षिणाभिमुखमुत्तराभिमुखं च गृहं कार्यम्। य: कुमति: दुर्बुद्धि: यदा भिन्नतया पूर्वोक्ताद्भिन्नतया गृहं करोति, तदा द्रव्यप्रणाश: धन-धान्यविनाश: स्यात्। यदा कन्यामीनधनुर्गते सूर्ये मिथुनगे च सूर्ये तदा गृहं न कार्यं न विधेयम्।

भाषा— सिंह, कर्क, मकर एवं कुम्भ राशिस्थ सूर्य में पूर्व तथा पश्चिम दिशा के द्वार हों; तुला, मेष, वृश्चिक और वृष राशि के सूर्य में दक्षिण तथा उत्तर दिशा के द्वार वाले गृह बनाए जाने चाहिए। इसके विपरीत जो दुर्बुद्धि निर्माण कार्य करवाता है तो उससे धन-द्रव्य की हानि होती है, जबकि कन्या, मीन, धन व मिथुन राशि में सूर्य के रहते गृहनिवेश सर्वथा वर्जित जानना चाहिए।

अथ सङ्क्रान्तिवशेन मासफलमाह नारद: (वास्तुसौख्यं 380-382) —

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत्।

वृषस्थे धनवृद्धि: स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम्॥ 7॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम्।
कन्याया रुक् तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम्॥ 8॥
कार्मुके च महद्धानिर्मकरे स्याद्धनागम:।
कुम्भे तु रत्नलाभ: स्यान्मीने रोगभयं भवेत्॥ 9॥[1]

गृहसंस्थापनमिति। सूर्ये मेषस्थे सति गृहसंस्थापनं गृहनिर्माणं शुभद भवेत्। वृषस्थे सूर्ये धनवृद्धि: स्यात्। मिथुने मिथुनस्थे रवौ ध्रुवं निश्चितं मरणं मृत्यु: स्यात्। कर्कटे रवौ शुभदं स्यात्। सिंहे भृत्यविवर्धनं दासेयवर्धनं स्यात्। कन्यायां गते रुक् गद: स्यात्। तुले रवौ सौख्यं स्यात्। वृश्चिके धनवर्धनं स्यात्। कार्मुके धनुषि रवौ महद्धानिर्महती हानी: स्यात्। मकरे धनागम: स्यात्। कुम्भे तु रत्नलाभ: स्यात्। मीने रोगभयं भवेत्।

भाषा— मेष राशि में सूर्य के रहते गृहारम्भ शुभप्रद होता है। वृष राशि में सूर्य के रहते धनवृद्धि एवं मिथुन राशिस्थ सूर्य में निश्चित ही मृत्यु होती है। कर्क के सूर्य में गृहारम्भ शुभ जानना चाहिए और सिंह के सूर्य में सेवकों, कर्मचारियों की वृद्धि, कन्या के सूर्य में रोग, तुला के सूर्य में सुख प्राप्ति तथा वृश्चिक के सूर्य में धन की वृद्धि होती है। इसी प्रकार धनु के सूर्य में गृहारम्भ करने से बहुत हानि होती है, मकर के सूर्य में धनलब्धि, कुम्भ के सूर्य में गृह कार्यारम्भ से रत्नों का लाभ एवं मीन के सूर्य में रोग एवं भय होता है।

अथ पक्षशुद्धिमाह (व्यवहारोच्चयोक्ति: वास्तुसौख्यं 392) —

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।
तस्माद्विचार्य कर्त्तव्यं यदीच्छेच्छ्रियमात्मन:॥ 10॥

शुक्लपक्ष इति। शुक्लपक्षे गृहारम्भे कृते सति सौख्यं भवेत्। कृष्णे तस्करतश्चोराद्भयं भवेत्। तस्मात्कारणात्- यदि चेदात्मन: स्वस्य श्रियं कल्याणमिच्छेत्तदा प्रथमं विचार्य कर्तव्यं गृहनिर्माणं विधेयम्।

भाषा— सदैव मास के शुक्ल पक्ष में गृह निर्माण से सुख मिलता है। कृष्ण पक्ष में गृहनिर्माण से चोरों, तस्करों का भय जानना चाहिए। ऐसे में अपना कल्याण चाहने वालों को इस पक्षफल पर विचार करना हितकारी है।

अथ चान्द्रमासवशेनाह श्रीपति: (17, 13) —

शोको धान्यं मृतपशुहती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो
युद्धं भृत्यक्षतिरथ फलं श्रीश्च वह्नेर्भयञ्च।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तु: क्रमेण

1. नारदसंहितायां [illegible] मुहूर्त[illegible] 12, 15। [illegible] नारदपुराणे— [illegible] पूर्व भाग 56 57 58।

चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥ 11 ॥

शोको धान्यमिति। चैत्रान्मासात् क्रमेण शोकः, धान्यं, मृतिर्मरणं, पशुहृतिः पशुहरणं, द्रव्यवृद्धिः, विनाशः, युद्धं, भृत्यक्षतिर्भृत्यविनाशः, अथ श्रीः लक्ष्मीः वह्नेर्भयमग्नि- भयं, लक्ष्मीप्राप्तिः, भवनारम्भकर्तुर्गृहस्वामिनः फलं भवति। मुनिभिः वास्तुशास्त्रोपदिष्टं फलं कथितम्।

भाषा— चैत्रादि चान्द्रमास में गृह निर्माण करने पर शोक, वैशाख में धन-धान्य, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशुहरण व चोरी, श्रावण में द्रव्यवृद्धि एवं भाद्रपद में विनाश होता है। इसी प्रकार आश्विन में युद्ध, कार्तिक में नौकरों-भृत्यों का क्षय, मार्गशीर्ष एवं पौष में लक्ष्मी, माघ में अग्निभय और फाल्गुन में गृह निर्माण से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह फल वास्तुशास्त्र के उपदेशकर्ताओं ने चैत्रादि मासक्रम से प्रतिपादित किया है।

विशेष—गृहारम्भ में मासफल विश्वकर्मा ने इस प्रकार बताया है— चैत्रे शोककरं विद्याद् वैशाखे च धनागमम् ॥ ज्येष्ठे गृहाणि पीड्यन्ते आषाढे पशुनाशनम्। श्रावणे धनवृद्धिश्च शून्यं भाद्रपदे भवेत् ॥ कलहश्चाश्विने मासे भृत्यनाशनश्च कार्तिके। मार्गशीर्षे धनप्राप्तिः पौषे च धनसम्पदः ॥ माघे चाग्निभयं कुर्यात् फाल्गुने श्रीः शुभोत्तमा ॥ *(ज्ञानप्रकाशदीपार्णव 1, 3-6)*

स्पष्टार्थ चक्रम्

चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्तिक	मार्ग	पौष	माघ	फाल्गुन	मास
शो.	धन प्रा.	मरण	पशु हा.	पशुवृद्धि	शून्य	कलह	भृत्य नाश	धान्य	धन	अग्निभय	श्री	फल

अत्र सौराणां चान्द्रमासानां महान् शुभाशुभफलभेदेन फलविरोधो महानिति, तत्र चिकिर्षितगृहद्वारानुकूलरवि सङ्क्रमणसमीचीनमासेषु एव वैशाखादिमासेषु कार्य इति विरोधाभावः। *(पीयूषधाराटीका 12, 15)*

भाषा— उक्त प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि मेष इत्यादि के क्रम से चैत्रादि सौरमास एवं चान्द्रमास को लेकर फलाफल में पर्याप्त वैषम्य होता है, ऐसे में मेषादि संक्रम से वैशाखादि सौर मास से ही अभिप्राय लिया जाना अपेक्षित है। ऐसा कल्पित करने में फल में विरोधाभास नहीं होता है।

अथ सौरमासानुसारं गृहारम्भनियममाह श्रीपतिः (रत्नमाला 17, 14-15) —

कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥ 12 ॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधननाशमश्नुते।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करः ॥ 13 ॥

व्याख्या— तत्र कुम्भार्कसहिते फाल्गुने पूर्वापरमुखं गृहं कार्यम्। उभयोरेक-विहितयोरेकवाक्यताश्रवणात्।

तथा च महादेवीटीकायां— अन्यथेति। अन्यथा उक्त प्रकारमतिक्रम्यनिज-बुद्धिगर्वादज्ञानाद्वायः करोति स व्याधि शोक धननाशमाप्नोति।

भाषा— श्रीपति का मत है कि कर्क (श्रावण), नक्र (माघ), सिंह और कुम्भ राशि के सूर्य में (कुम्भ संक्रान्ति विशिष्ट फाल्गुन मास में) पूर्वाभिमुखी द्वार व पश्चिम दिशा में दरवाजे का मुख रखे। इसी प्रकार तुला, मेष, वृष एवं वृश्चिक राशि के सूर्य में दक्षिण और उत्तर दिशा में द्वार का मुख रखकर गृह निर्माण करना चाहिए। यहाँ कुम्भ के रवि और फाल्गुन मास को एकत्र करने से एकवाक्यता होती है। इसके विपरीत जो दुर्मति यदि गृह के मुख को रखकर निर्माणकार्य करवाता है तो व्याधि, शोक, धन का नाश होता है। इसी प्रकार मीन, धनुष, मिथुन एवं कन्या में सूर्य के रहते कभी गृह निर्माण नहीं करवाना चाहिए।

अथ सौरचान्द्रमासैक्येन प्राच्यादिदिक्षु द्वाराणि गृहनिर्माणनक्षत्राणि च सूतिकागृह निर्माणप्रवेशमुहूर्तमाह (मुहूर्तचिन्तामणि 12, 15) —

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे।
मार्गे जूकालिगे सद्ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहन्त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥ 14 ॥

व्याख्या- कुम्भस्थे सूर्ये फाल्गुने मासि पूर्वापरमुखालयं पूर्वमुख पश्चिममुखं गृहं विशुभमिति। श्रावणे सिंहकर्कसङ्क्रान्तौ पूर्वमुखं पश्चिममुखं वा गृहं सत्। पौषमासे नक्रे मकरसङ्क्रान्तौ पूर्वापरास्यं गृहं शुभमिति। वृषमेषगे सूर्य राधे वैशाखे मासि, तथा मार्गे मासिजूकालिगे तुलावृश्चिकगते सूर्ये सति याम्योत्तरमुखं सदनं गृहं शुभं स्यात्। तत्र सूतीगेहमिति। आदित्यां पुनर्वसौ सूतिकागृहनिर्माणं शस्तम्। शस्त इति वक्ष्यमाणस्यात्र नपुंसकत्वेन सम्बन्धात्। तत्रेति। तत्र सूतिकागृहे हरिभविधिभयोः श्रवणाभिजितोर्नक्षत्रयोः प्रवेश शस्तमिति।

भाषा— कुम्भ राशिगत सूर्य हो तो फाल्गुन माह में, कर्क या सिंह राशि के सूर्य में, श्रावण में, मकर राशि पर सूर्य हो तो पौष मास में भवन का द्वार पूर्व या पश्चिम दिशा में शुभ होता है। मेष अथवा वृष राशि के सूर्य में वैशाख में तथा तुला अथवा वृश्चिक राशि का सूर्य हो तो मार्गशीर्ष मास में उत्तर या दक्षिण दिशा का द्वार बनवाना प्रशस्त जाने। इसी प्रकार ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (उत्तरात्रय, रोहिणी), मृदु संज्ञक नक्षत्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा व अनुराधा), शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त एवं पुष्य इन तेरह नक्षत्रों में गृहारम्भ शुभ

जानना चाहिए। पुनर्वसु नक्षत्र में सूतिका गृह का निर्माण आरम्भ करे और श्रवण व अभिजित् में सूतिकागार में प्रवेश करना उत्तम माना जाता है।

अथ प्रागभिहितसौरचान्द्रमासयोः प्रकारान्तरेणैकवाक्यतां (तत्रैव 12, 16) —

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ च वृषभे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्
कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादिमासाद्भवेत्॥ 15॥

अत्र व्याख्या- पूर्वादिदिग्द्वारवशेनैकवाक्यतैवाधुना मेषगे रवौ मधौ चैत्रे गेहं प्रारब्धं शुभमेव भवेत्। तथा वृषगे सूर्ये ज्येष्ठे मासे, कर्कगे शुचावाषाढे मासि, सिंहस्थ रवौ भाद्रमासे, तुलास्थेऽर्के अश्वयुजि आश्विने मासे, अलौ वृश्चिकगे सूर्ये ऊर्ज्जे कार्तिके मासे, मृगे मकरगे रवा पौषे मासे, नक्रघटे मकरकुम्भगे रवौ माघे मासे प्रारब्धं गृहं शुभं स्यादिति केश्चिन्निगदितम्। मेषार्के चैत्रेऽपि गृहं शुभम्।

यस्तु चैत्र निषेधः स मीनार्कविषयः। वृषस्थे ज्येष्ठेऽपि शुभमेव, यस्तु ज्येष्ठनिषेधः स मिथुनार्कविषयः। कर्कस्थे आषाढेऽपि शुभमाषाढनिषेधस्तु मिथुनार्कविषयः। सिंहेऽर्केऽपि भाद्रे शुभं, भाद्रनिषेधस्तु कन्यार्कविषयः, श्रावणस्तत्र विहितत्वाच्छुभ इति। वृश्चिके रवौ कार्तिकेऽपि शुभं, मार्गमासस्तु विहित एव। पौषे मकरस्थेऽपि शुभं, धनुरर्कसाहित्याद-शुभमेव। मकरकुम्भस्थे रवौ माघेऽपि शुभं, निषेधस्तु धनुरर्कविषयः।

भाषा— कतिपय विद्वानों का मत है कि सूर्य मेष का हो तो चैत्र में, वृष राशि का हो तो ज्येष्ठ में, कर्क का हो तो आषाढ में, सिंह का हो तो भाद्रपद में, तुला का हो तो आश्विन में, वृश्चिक का हो तो कार्तिक में, मकर का हो तो पौष में और मकर या कुम्भ का हो तो माघ माह में गृहारम्भ प्रशस्त होता है। लेकिन, यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कन्या का सूर्य हो तो कार्तिक माह में, धनु का हो तो माघ में गृहनिर्माण प्रशस्त नहीं है। इस प्रसङ्ग में मास गणना कृष्णपक्ष से की जाती है, अमावस्या से अमावस्या पर्यन्त मास गणना नहीं की जानी चाहिए।

अत्रोऽत्र नारद आह —

सौम्याः फाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः॥ 16॥[1]

सौम्या इति। फाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः मासाः गृहनिर्माणे सौम्याः शुभदाः **स्युः** पुत्रारोग्यधनप्रदाश्च स्युः।

---

1. '**फाल्गुनवै**शाखमाघश्रावणकार्तिकाः। मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यशुभप्रदाः॥' इति पाठः (मुहूर्तचिन्तामणि पीयूषधाराटीकायां 12, 16)

भाषा— सामान्यतया फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण एवं कार्तिक (पाठान्तर में पौष) महीनों में गृह निर्माण शुभ माना गया है। इन महीनों में गृह निर्माण से पुत्र, आरोग्य एवं धन (पाठान्तर से पुत्रों की आरोग्यता की दृष्टि से शुभता) प्राप्त होती है।

अत्र वसिष्ठोऽप्याह (पीयूष. 12, 16) —

मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे।
ऊर्ज्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम्॥ 17॥

मासेति। वसिष्ठवाक्यं च आश्विनकार्तिकमाघमासादीनामपि शुभत्वप्रतिपादकम्।

भाषा— वशिष्ठ ने इन छह महीनों को गृह निर्माण के लिए ग्राह्य माना है— फाल्गुन, माघ, वैशाख, श्रावण, आश्विन एवं कार्तिक। इससे पुत्र-पौत्र और धन की प्राप्ति होती है।

अत्र विशेषः (तुलनीय मुहूर्तचिन्तामणिप्रमिताक्षरा. 12, 16) —

आश्विनकार्तिकमाघमासानां शुभत्वमिति, तुला-वृश्चिक-मकर-कुम्भार्क-साहित्ये प्राशस्त्य वचनान्तरबाधित निषेधः प्रागुक्तविषय एव। फाल्गुनस्य शुभत्वं कुम्भार्कविषयम्, कुम्भार्कराहित्ये तु निषिद्धम्। ननु कार्तिकमाघमासौ श्रीपतिनि निषिद्धौ, तयोः को विषय इत्यत्राह— तथेति। ऊर्जः कार्तिको मासः कन्यागतेऽर्के न सत्। च पुनः तपो माघमासो धनुषि धनुरर्के न सत् न चैतदयुक्तं यतः शुक्लादिचान्द्रमासे चैत्रादिमाससञ्ज्ञाः सन्ति। तत्र कार्तिके कन्यासङ्क्रान्तिः माघे धनुः सङ्क्रान्तिश्च कदापि न भवेत्। अत आह- कृष्णादिमासादिति। मासो द्विविधः शुक्लादिः। कृष्णपक्षप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमापर्य्यन्तं कृष्णादिः। उभयथापि शास्त्रे व्यवहार इति।

भाषा— (मुहूर्तचिन्तामणि के पूर्वोक्त 'कैश्चिन्मेषरवौ' श्लोक के अनुसार ही उसके रचयिता एवं प्रमिताक्षरा टीकाकार रामदैवज्ञ का मत है) आश्विन, कार्तिक एवं माघ मास में क्रमशः तुला, वृश्चिक एवं मकर, कुम्भ का सूर्य होने से गृह कार्य शुभ कहा गया है। 'कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे' में यह स्पष्ट है और इसके विपरीत वशिष्ठ के 'मासे तपस्ये तपसि' श्लोक के मत का निषेध होकर उपर्युक्त मत ही सम्यक् रहा है। यहाँ फाल्गुन का शुभ होना 'कुम्भे रविः' से ज्ञात होता है और कुम्भ का सूर्य यदि न हो तो उसकी यहाँ मनाही है। यह सन्देह भी होता है कि कार्तिक एवं माघ इन दोनों माहों में ज्योतिषरत्नमालाकार श्रीपतिभट्टाचार्य ने क्योंकर निषेध किया है? इसका प्रत्युत्तर इस तरह है कि यदि कन्या का सूर्य कार्तिक में हो तो अशुभ होगा और धनु का सूर्य यदि माघ में हो तो वह भी शुभ नहीं माना जाएगा। यह कथन संदिग्ध नहीं है क्योंकि शुक्लादि में होने वाले चान्द्रमास में चैत्रादि मास हैं और वहाँ कार्तिक व माघ में क्रमशः कन्या व धनु

के सूर्य नहीं नहीं होते। अतएव उनको कृष्णादि मास कहा जाता है। मास दो प्रकार के कहे गए हैं— कृष्णादि और शुक्लादि। चैत्र की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से वैशाख अमान्त तक शुक्लादि मास की गणना होती है जबकि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से आगामी पूर्णिमा तक का मास कृष्णादि संज्ञक कहा जाता है और शास्त्र सम्मत व्यवहार का विषय है।

तत्र मेलापकप्रकारमाह महेश्वरः (वृत्तशते 69, ज्योतिर्निबन्धे पृ. 169, 25) —

कार्याधिष्ण्यगृहैर्गृहेशगृहयोरुद्वाहवत्कल्पना
नाडीं (नीडं!) यद्विषमायगं शशिबले तारावले संयुतम्।
कार्यं तच्छुभदं करैर्यदि गुणाः सर्वेऽपि न स्युस्तदा
कुर्याज्ज्यौतिषिकोऽङ्गुलादिकमिह क्षिप्त्वा विहायाथवा ॥ 18 ॥

कार्या इति। गृहं च गृहे श गृहकर्तुः उद्वाहः विवाहः कल्पनाः कल्पयेत् नाड़ी प्रसिद्धं च, विषमायः विषम आयः च, शशिबलः चन्द्रबलः च, तारावलः प्रसिद्धं च, संयुतं योगं च, कार्यं कर्तव्यं, ज्योतिषिकोः दैवज्ञ वा विद्वान् स्थपतिः च, आयः गृहस्य प्रमाणानुसारेण सूत्रेत् गणितफलं इत्याभिप्रायः।

भाषा— वर-वधू के विवाहार्थ मेलापक की तरह गृह के नक्षत्र और गृहेश के नक्षत्र का मेलापक देखना चाहिए। इस विधि से विषम आय (1, 3, 5 इत्यादि) सम्मत गृह चन्द्रमा तथा तारा के बलवान् रहने पर बनवाना चाहिए, ऐसा शुभ होता है। यदि पूरे दो हाथ पर सब कुछ अनुकूल प्राप्त नहीं हो तो दैवज्ञों को चाहिए कि भूखण्ड को लम्बाई में किञ्चित् अङ्गुल प्रमाण को न्यूनाधिक कर आय-व्यय आदि को देखना चाहिए।

अथ गृहनक्षत्रकल्पनं 'व्यवहारसमुच्चये (पीयूष. 12, 12) —

त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुद्वेगपुत्राप्तिधनाप्तिशोकम्।
शत्रोर्भयं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नवप्रभेदाः ॥ 19 ॥

त्रिभि इति। गृहेशगृहर्क्षयोरैक्ये शुभाशुभज्ञानोपायो गृहारम्भे। तद्यथा कृतिकात् त्रय-त्रय नक्षाणि नवकोष्ठे न्यसेत् तस्यानुसारेण फलवाप्नोति। यदाह वशिष्ठ— 'गृहस्य तत्पतेस्त्वेकं धिष्ण्यं चेन्निधनप्रदम्' इति।

भाषा— गृह के नक्षत्र की गणना कृतिकादि से करते हुए (नौ कोष्ठकों में) क्रमशः तीन-तीन नक्षत्रों का न्यास करे और उनका फल क्रमशः उद्वेग, पुत्र प्राप्ति, धनप्राप्ति, शोक, शत्रुभय, राजभय, मृत्यु, सुख एवं प्रवास होता है।

1. 'वास्तुप्रदीपे' इति प्रकाशितपाठे।

स्पष्टार्थ चक्रम्

नक्षत्र	कृ.रो.मृ.	आ.पु.पु.	आ.म.पूफा.	उफा.ह.चि.	स्वा.वि.अ.	ज्ये.मू.पूषा.	उषा.श्र.ध.	श.पूभा.उभा.	रे.अ.भ.
फल	उद्वेग	पुत्राप्ति	धनप्राप्ति	शोक	शत्रुभय	राजभय	मृत्यु	सुख	प्रवास

अथ गृहेषु नक्षत्रकल्पनं ज्यौतिस्सागरे-

आर्द्रादितिर्गुरुश्चैव सार्पश्चैव पिताभगम्।
शतभं पूर्वयुग्मे च नवेष्टगृहतारकाः ॥ 20 ॥

भाषा— 1. आर्द्रा, 2. पुनर्वसु, 3. पुष्य, 4. अश्लेषा, 5. मघा, 6. पूर्वाफाल्गुनी, 7. शतभिषा, 8. पूर्वाभाद्रपद और 9. उत्तराभाद्रपद ये नौ नक्षत्र यदि गृह के हों तो उन्हें शुभकारक जाने।

अथ राशिकल्पनमाह गर्गः —

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषमेषु द्वयं द्वयम् ॥ 21 ॥

भाषा— राशि कल्पित करने के लिए गर्ग का मत है कि अश्विनी, भरणी और कृतिका इन तीन नक्षत्रों से मेष राशि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी से सिंह राशि; मूल, पूर्वाषाढ़ा एवं उत्तराषाढ़ा इन तीन नक्षत्रों से धनु राशि होगी और शेष राशियाँ दो-दो नक्षत्रों की मानी जाती है।

अथायसाधनं तद्वशेन विस्तारायामसाधनं च तदुक्तं रामदैवज्ञैः (12, 3) —

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो$_{152}$
रूपोनितेष्टाय हतेन्दुनागैः$_{81}$।
युक्ता घनश्चापि$_{17}$ युता विभक्ता
भूपाश्विभिः$_{216}$ शेषमितो हि पिण्डः ॥ 22 ॥

एकोनितेति। तत्र 'राशिकूठादिकं सर्वे दम्पत्योरिव चिन्तयेदिति' वसिष्ठोक्तेर्यदेव नक्षत्रं व्यवहारनाम्ना विवाहोक्तमेलापकविधिना शुभदं स्यात्तदेव स्वेष्टर्क्षे परिकल्प्यम्। यश्च ध्वजाद्यष्टायेषु विषय आय ईप्सितः स्यात्स एवेष्टायः कल्प्यः। ताभ्यां विस्तारायामज्ञानं विधेयम्। यथा नीलाम्बरस्यानुराधानक्षत्रं तस्य रोहिण्या सह मेलापके सम्भवतीतीष्टभं रोहिणी कल्पितम्। तत्संख्या= 4, एकोनितेष्टर्क्षम्= 3, अनेन द्वितिथ्यो 152 हताः= 456 इष्टायः सिंहः कल्पितस्तृतीय3, रूपोनित इष्टायः 2, अनेनेन्दु नागाः 81 गुणिताः 162, तैर्युताः 618, घनैश्च 17 युताः 635, भूपाश्विभिः 216 विभक्ताः 203 इदमेव क्षेत्रफलं गृहस्य इष्टायनक्षत्रभवम्। अथ कल्पिदैर्घ्यं 29 अनेन भक्तो लब्धो विस्तारः=7। अथ कल्पितविस्तृति 7 भक्तो लब्ध दैर्घ्य= 29।

च कञ्चुकच्छादनस्तनी ॥ शिरसो मण्डनं शङ्खचक्रसीमान्तपङ्कजम्। पद्मं स्याद् दक्षिणे हस्ते वामे श्रीफलमिष्यते॥ सुमध्य विपुलश्रोणिशोभनाम्बरवेष्टिता। मेखला कटिसूत्रं च सर्वाभरणभूषिता॥ करण्डकाभमौल्यङ्गा चासीना कमलासना। चामरव्यग्रहस्ते च तत्पार्श्वे तु स्त्रियावुभे॥ स्नपन्तौ कुम्भहस्तौ हस्तिनौ च प्रदर्शयेत्। अथ गेहार्चनायोग्या चतुर्बाहुसमन्विता॥ वरदाभयहस्तं च सारुणाब्जसमप्रभा। सर्वाभरणसम्पन्नां तप्तहेमोज्ज्वल-प्रभाम्॥ पर्यङ्क बन्धमासीनां श्वेतपद्मासनाञ्चिताम्। ईदृशीं कारयेल्लक्ष्मीमभीप्सित फलप्रदाम्॥ *(मय. 36, 247-255)*। लपने मुखारविन्दे, सारदात्री विद्याबलदायिनी मुक्ताकुन्देन्दुकान्तिः मुक्ता मौक्तिकं रत्नविशेष कुन्दं कुन्दसंज्ञकपुष्पमिन्दुश्चन्द्र एतेषां समाहारः मुक्ताकुन्देन्दु तस्य कान्तिरिव प्रभविष्णुर्यस्याः सा शारदा वाग्देवी विलसतीति पूर्वेण सम्बन्धः। तस्य ध्यानं सौन्दर्यलहर्याम्— शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमकुटां वरत्रासत्राणस्फटिकघुटिका पुस्तकधराम्। सकृन्नत्वा न त्वा कथमिव सतां सन्निदधते मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितयः॥ *(सौन्दर्यलहरी 15)*। नयनकुवलये नेत्रोत्पले पुष्पवन्तौ सूर्यचन्द्रौ विलसतः। अग्रदन्ते दन्तानामग्रोऽग्रदन्तस्मिन्नग्रदन्ते अद्धा वास्तविकरूपा (तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयमित्यमरः) धरित्री वसुन्धरा पृथ्वीति तिलकमिव विलसति, पदे चरणे सिद्धसङ्घाः तत्त्वदर्शिगणाः लुठन्ति, प्राणान् ददातीति प्राणदाता प्रह्लादस्य जीवनदाता स चक्रपाणिर्भगवान् सुदर्शन चक्रधारी विष्णु इति, जगतां भुवनानां मङ्गलं दिशतु प्रयच्छतु। तथा च वराहपुराणे— नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्। खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते॥ दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः साकं मृत्पिण्डवत्प्राग्बृहदुरुवपुषाऽनन्तरूपेण येन। सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत्सर्वसंस्थः कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः॥ *(वराह. 1, 1-2)*

भाषा— भगवती महालक्ष्मी जिनके हृदयपद्म में विराजित हैं, मुखारविन्द में मुक्ता, कुन्द के पुष्प की प्रभविष्णुमयता एवं चन्द्रमा के समतुल्य उज्ज्वल कान्तियुक्त देवी सरस्वती, नयनकमलों में सूर्य एवं चन्द्रमा वाले एवं अपनी दाढ़ों के अग्रिमभाग पर तिलक तुल्य विलसती धरती विराजित हैं और सिद्धों के आश्रय स्थल जिनके चरण हैं, ऐसे भक्तराज प्रह्लाद के जीवनदायी, सुदर्शनचक्रधारी भगवान विष्णु निखिल विश्व का मङ्गल माङ्गल्य करें।

अथ ग्रन्थारम्भप्रयोजनमाह —

> **वराहलल्लोदितचारुयुक्तिं समीक्ष्य बुद्ध्या क्रियते मयेयम्।**
> **पुरातनानां वचनैः पवित्रा सद्वास्तुरत्नावलिका विचित्रा॥ 2॥**
> **गृहस्थानां हितार्थाय जीवनाथेन धीमता।**
> **एषा प्राचीनपद्येन क्रियते दैवविन्मुदे॥ 3॥**

वराहेति। वराहलल्लोदितचारुयुक्तिं पञ्चसिद्धान्तिकाबृहत्संहिताकार श्रीवराहमिहिर, रत्नकोषकार लल्लाचार्यादिभिराचार्यैरुदिता या चारु मनोहरा युक्तिस्तां, समीक्ष्य समवलोक्य, पुरातनानां प्राचीनानां, वचनैः वाक्यैः पवित्रा शुद्धा, विचित्रा मनोहरा, इयं श्रीवास्तुरत्नावलिका 'वास्तुरत्नावली' नामको बहुपयोगीग्रन्थः, बुद्ध्या स्वमत्या, मया जीवनाथेन क्रियते। गृहस्थानां गृहिणां, हितार्थाय कल्याणाय, दैवविन्मुदे दैवविदां च ज्योतिर्विदां मुदे हर्षाय, एषा वास्तुरत्नावली, प्राचीनपद्येन प्राचीनर्निर्मितपद्येनैव, धीमता जीवनाथेन मया क्रियते।

भाषा— ज्योतिषसिन्धु पञ्चसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता आदि के रचयिता आचार्य वराहमिहिर, रत्नकोषकार लल्लाचार्य प्रभृति मनीषियों द्वारा प्रतिपादित तकनीकों का अवलोकन कर और अन्यान्य प्राचीन विद्वानों (भृगु, मनु, नारद, धाराधिप भोजराज, माण्डव्य, सूत्रधार मण्डन, वासुदेव दैवज्ञ आदि) के वचनों को ग्रहण करते हुए मैं जीवनाथ अपनी प्रज्ञानुसार इस पवित्र, शुभ और विचित्र-नाना विषयों वाली वास्तुरत्नावली की रचना करता हूँ। यह गृहस्थीजनों के लिए हितकारी और ज्योतिषियों को आनन्द प्रदान करने वाली है। इसी उद्देश्य से इसमें प्राचीन पद्यों के उद्धरण भी हैं।

अथ गृहनिर्माणप्रयोजनमभिहितं भविष्यत्पुराणे —

> **गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्ध्यन्ति गृहं विना।**
> **यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयं ब्रुवे॥ 4॥**[1]

गृहस्थस्येति। यतो यस्मात्कारणात्, गृहस्थस्य गृहिणः, सर्वाः सकलाः क्रियाः कार्याणि, गृहं विना भवनमन्तरा, न सिद्ध्यन्ति न सफलीभवन्ति। यथा चोक्तम्— परगेहे कृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः। निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते॥ गृहं स्वसत्ताकम्। गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्ध्यन्ति निष्फला भवन्तीत्यर्थः। तस्मादहं गृहारम्भप्रवेशसमयं गृहस्यारम्भो गृहारम्भः प्रवेशो गृहप्रवेशस्तयोः समयः। विधानं तयोः गृहारम्भप्रवेशसमयस्तं गृहारम्भप्रवेशसमयं भवनारम्भभवन प्रवेशसमयं ब्रुवे वच्मि। उक्तं च— वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनि परम्परायातम्। क्रियतेऽधुनावेद विदग्ध संवत्सर प्रीत्यै॥ *(राजमार्तण्ड 778 तथा बृहत्संहिता 53, 1)*

भाषा— गृह के अभाव में कभी गृहस्थ के कार्यों की सिद्धि नहीं होती है। इसी में गृह के कार्यारम्भ और गृहप्रवेश के समय के विषय में कहता हूँ।

अथ ग्रामादिषु स्वस्य शुभाशुभत्वमुक्तं ज्योतिस्सागरे (12, 2) —

> **प्रथमे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठगे।**
> **तुर्याष्टद्वादशे रोगः शेषस्थाने शुभं भवेत्॥ 5॥**

1. मुहूर्तगणपति (पीयूषधाराटीका) 12. 1

प्रथम इति। अत्र नामराशेरिति शेषः, प्रथमे प्रथमस्थाने सप्तमे सप्तमस्थाने ग्रामे ग्रामराशौ वर्तमाने सति, वैरं गृहनिर्माणकर्तुर्लोकैः समं विरोधो भवेत्। त्रिषष्ठगे तृतीयषष्ठस्थाने ग्रामराशौ हानिः गृहनिर्माणकर्तुर्हानिः स्यात्। अथ तुर्याष्टद्वादशे नामभाच्चतुर्थाष्टमद्वादशस्थान-स्थिते ग्रामराशौ, रोगः नाना प्रकारको गदः स्यात्। शेषस्थाने उक्ताद्भिन्नस्थाने शुभं कल्याणं भवेत्।

भाषा— व्यक्ति को जिस गाँव अथवा नगर में निवास करने की इच्छा हो तो उस गाँव की राशि का ज्ञान करे। यदि वह राशि अपनी राशि से पहली, सातवीं हो तो वहाँ निवास करने पर वैरभाव बढ़ेगा; यदि तीसरी और छठवीं हो तो वहाँ आय की अपेक्षा नुकसान होगा तथा चौथी, आठवीं एवं बारहवीं हो तो रोग का कारण होगा जबकि शेष अर्थात् दूसरी, पाँचवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं हो तो वहाँ निवास करना शुभ और लाभप्रदायक होगा।

अत्र नामर्क्षाद् ग्रामवासे शुभाशुभमुक्तं मुहूर्तचिन्तामणौ (12, 1) —

यद्भं द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नामभात्।

पीयूषधाराटीकायां — यदिति। ग्रामः स्वस्य शुभोऽशुभो वेति तावच्चिन्त्यते। नामभात् नामराशेः व्यवहारप्रसिद्धं यन्नाम, सकाशात् यद्भं यस्य ग्रामस्य भं राशिः स चेद्द्वितीयो नवमः पञ्चम एकादशसङ्ख्यो दशमश्च स्यात्तदासौ ग्रामः स्वस्य शुभः शुभफलदाता स्यादन्यथा शुभो न भवतीत्यर्थः।

भाषा — निवास के सम्बन्ध में काकिणी विषयक विचार करना चाहिए। कहाँ पर निवास करें या नहीं, इस सम्बन्ध में रामदैवज्ञ के मतानुसार कहा गया है कि निवास के इच्छुक पुरुष के व्यावहारिक नामराशि से जिस ग्राम, नगर, मोहल्ला की राशि 2, 9, 5, 11, 10वीं हो तो वह ग्राम उस व्यक्ति के लिए निवास की दृष्टि से अच्छा होता है जबकि 1, 3, 4, 6, 7, 8 एवं 12वीं हो तो अप्रशस्त जाने।

अथ किं नाम कुत्र ग्राह्यमित्यत आह —

काकिण्यां वर्गशुद्धौ च द्यूते वादे गृहे तथा।
मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता॥ 6॥[1]

काकिण्यामिति। काकिण्यां (ककलौल्ये, ककते गणनाकाले चञ्चलीभवतीति शब्दकल्पद्रुमे। मानदण्डः काठा नल इत्यादि भाषा) काकिणीविचारे, वर्गशुद्धौ वर्गशुद्धिविचारे, द्यूते द्यूतक्रीडायां, वादे द्वयोः परस्परविवादे, गृहे गृहारम्भप्रवेशादिविषये, मन्त्रे मन्त्रग्रहणे, पुनर्भूवरणे दिधिषूवरणे (पुनर्भूर्दिधिषु रूढेत्यमरः), नामराशेः व्यावहारिकनामराशेः प्रधानता प्रधानत्वं भवतीति शेषः।

1 '[illegible] वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये। मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता' इति पाठान्तर।

भाषा — नामराशि का चुनाव कहाँ करें, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि काकिणी गणना, वर्गशुद्धि, द्यूतक्रीड़ा, वाद-विवाद या शास्त्रार्थ, गृह विषयक कार्य, मन्त्र-दीक्षा ग्रहण और पुनर्विवाहादि अवसरों पर नाम राशि को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

अथ गृहदशाज्ञानप्रकारमाह —

गज$_8$शर$_5$र्तु$_6$युगा$_4$ऽश्व$_7$मही$_1$गुणा$_3$द्वि$_2$सहिता मघवादिदिशः क्रमात्।
गृहपतेरभिधा पुरदिङ्मिता वसुहृता भवनस्य दशा भवेत्।
रविनिशाकरमङ्गलचन्द्रजाः शनिबृहस्पतिराहुकविग्रहाः॥ 7॥

गजेति। गजशरर्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहितास्ते गज अष्ट शर पञ्च ऋतु षड् युग चतुः अश्व सप्त मही एक द्वि द्वय, मघवादिदिशः क्रमात् पूर्वादिदिशः क्रमात् अवर्गादिश्च स्वराङ्काः सन्ति। गृहपतेः गृहस्वामिनः अभिधापुरदिङ्मिता नामग्रामदिक्स्वराङ्कयोगाः, वसुहृताः अष्टभाजिता, शेषनिभवनस्य दशा भवेयुः। तासां क्रमेण रविनिशाकरमङ्गलचन्द्रजाः शनिबृहस्पतिराहुकविग्रहाः पतयो भवन्ति। काकिणीसाधनोपपत्तिः तत्र ग्रन्थान्तरे— साध्यवर्गं पुरः स्थाप्य पृष्ठतः साधकं न्यसेत्। विभजेदष्टभिः शेषं काकिणी साधकस्य सा॥ इति।

भाषा— गृहदशाज्ञान के लिए सर्वप्रथम दिशाओं के स्वराङ्क का ज्ञान करे। पूर्वादि दिशाओं में इनको क्रमशः न्यास करे। अवर्ग के 8, कवर्ग के 5, चवर्ग के 6, टवर्ग के 4, तवर्ग के 7, पवर्ग का 1, यवर्ग के 3 और शवर्ग के 2 अङ्क पूर्वादि आठों दिशाओं के होते हैं। इस प्रकार गृह बनाने वाले के नाम एवं गाँव तथा दिशा के स्वराङ्कों का योग करे और कुल योग को 8 से भाजित करे तो प्राप्त फल गृह दशा का ज्ञान कराएगा। उसमें शुभ ग्रह की दशा प्रशस्त होती है एवं पाप ग्रह की दशा अशुभ कही जाती है।

विशेष : किसी नगर, गाँव में निवास से पूर्व अपने योग्य दिशा-विदिशा पर विचार कर लेना चाहिए। नाम की राशि के अनुसार ही योग्य दिशा का चयन निश्चित ही नाम-यश, धन-सम्पदा और पद-पदोन्नति देने वाली होती है। प्राचीन वास्तु और ज्योतिष ग्रन्थों में इस दिशा-विदिशा निवास चक्र पर विचार मिलता है और यह जीवन में बहुत खरा उतरता है।

सर्वप्रथम, 8वीं सदी में आचार्य लल्ल ने गणित दी और दिशाओं व स्वरों के अङ्कों को बाँटा। इसके अनुसार पूर्वादि से गणना करें तो पूर्व के 8, आग्नेय कोण के 5, दक्षिण के 6, नैर्ऋत्य के 4, पश्चिम के 7, वायव्य का 1, उत्तर का 3 और ईशान कोण का 2 अङ्क है। ये ही दिशा अङ्कस्वर के यानी अक्षरों के भी अङ्क होंगे। गणित के अनुसार अ से अः तक के अक्षरों का 8 अङ्क, क से घ तक का 5, च से झ तक का 6, ट से ढ तक का 4, त से न तक का 7, प से म तक का 1, य से व तक का 3, श से ह अक्षर तक का 2 अङ्क माना गया है। इस प्रकार से पुनः दशा के अनुसार ग्रहों के अङ्कों को भी

जाने। इसमें 1. सूर्य, 2. चन्द्र, 3. मङ्गल, 4. राहु, 5. गुरु, 6. शनि, 7. बुध, 8. केतु और 9. शुक्र की दशा भी एक से से नौ तक होती है। इसमें शुक्र यानी 9, चन्द्र यानी 2, गुरु तथा बुध 7 की दशा होने पर शुभ जानना चाहिए। यानी इनका अङ्क यदि बसने वाले को जिस दशा में मिलता हो, वही दिशा उसके लिए शुभ होती है।

उक्त गणित के अनुसार सूर्य की दशा में मन में भ्रम होना, चन्द्र में पर्याप्त सम्पति, मङ्गल में आगजनी से कष्ट, राहु में निरन्तर बीमारी, गुरु में श्रेष्ठ सुख, केतु में पीड़ा एवं शुक्र की दशा में सुख मिलता है। यदि इस प्रसङ्ग में दीपार्णव व अन्य ज्योतिष ग्रन्थों की मान्यता को देखें तो आठों ही दिशाओं के क्रमशः पूर्व से गरुड़, बिलाव, सिंह, श्वान, नाग, मूषक, हाथी और मेढ़ा स्वामी होते हैं, इनमें से अपने वर्ग से पाँचवाँ वर्ग प्रायः शत्रु माना गया है। इसी कारण शत्रु की दिशा में निवास करना अथवा घर बनाना शुभ नहीं होता। अपने जीवन काल में ऐसे वैर क्षेत्र में प्लॉट या भूमि को खरीदने से निरन्तर सङ्कट पैदा होते रहते हैं।

पूर्वोक्त स्वर आदि अङ्कों के विभाजन के अनुसार क्रमशः अपने नाम का अक्षराङ्क और दिशा का अङ्क देखें। स्वर के अङ्कों को जोड़कर 9 का भाग देने पर भवन की दशा ज्ञात होती है। इसके लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है कि यदि विजयसिंह को उज्जैन में घर बनाना है, तो गृहपति विजय का स्वर अङ्क 3 और उदयपुर का 8 हुआ। अगर विजय को वहाँ की पश्चिम दिशा में भवन बनाना है तो पश्चिम दिशा का अङ्क 7 होता है। यदि नाम, नगर व वहाँ की दिशा का अङ्क जोड़े तो योग 18 हुआ। इसको नौ से भाजित करें और शेष नौ से शुक्र की दशा यानी शुभ जाने।

रत्नकोश, ज्योतिषप्रकाश, बृहद्दैवज्ञरञ्जन और मुहूर्तचिन्तामणि में इस की गणना को बहुत महत्व दिया गया है। इसको मुहल्लों या उपनगर के चयन के लिए भी देखा जा सकता हैं, दिशा को देखकर ही प्लॉट का चयन और वहाँ भवन बनाने पर अधिकाधिक लाभ लिया जा सकता है। कई पुराने नगरों के निवेश के लिए राजाओं द्वारा भूमि का चयन, उनका नामकरण और अन्य बस्तियों का विन्यास इसी आधार पर किया गया है।

अथ ग्रामवासे नराकृतिचक्रमाह —

मस्तके पञ्च लाभाय मुख त्रीणि धनक्षयः।
कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं षट् पादे स्त्रीदरिद्रता॥ 8॥
पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः।
गुह्ये चैकं भयं पीडा हस्ते चैकं तु क्रन्दनम्॥ 9॥
वामे चैकं करे भेदो ग्रामचक्रे नराकृतिः।
गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतः सदा॥ 10॥

मस्तक इति। प्रथममेक नराकृतिः नराकारं ग्रामचक्रं ग्रामशुभाशुभत्वज्ञानचक्रं लेख्यम्। तत्र सदा सर्वदा, ग्रामनक्षत्रतः स्वाभीष्टग्रामनक्षत्रात्, जन्मनक्षत्र व्यावहारिकनामनक्षत्रं यावद्, गणयेत् गणनां कुर्य्यात्। अथ नराकृतिचक्रस्य मस्तके शिरसि, पञ्च पञ्चपरिमितानि नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र यदि गृहस्वामिनो नामनक्षत्रं भवेत्तदा तस्य लाभाय धनादिलाभाय स ग्रामो भवेदिति। ततो मुखे आननं (आननं लपनं मुखभित्यमरः) त्रीणि नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र यदि नामर्क्षे भवेत्तदा वासकर्तुर्धनक्षयो धनानां विनाशो भवेत्। ततः कुक्षौ पञ्च नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र यदि नामनक्षत्रं भवेत्तदा वासकर्तुर्धनं धान्यं च भवेत्। ततः पादे चरणे षट् नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र नामनक्षत्रं यदि भवेत्तदा वासकर्तुर्धनं धान्यं च भवेत्। ततः पादे चरणे षट् नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र नामनक्षत्रं यदि भवेत्तदा स गृहवासकर्ता स्त्रीदरिद्रता स्त्रियाः स्ववनितायाः सकाशात् दरिद्रता दरिद्रत्वमाप्नोति। ततो नाभौ नाभिस्थाने चत्वारि युगपरिमितानि नक्षत्राणि लेख्यानि, तत्र यदि नामनक्षत्रयं स्यात्तदा वासकर्तुः सम्पद ऐश्वर्य्याणि भवेयुः। ततो गुह्ये गुह्यस्थाने एकं नक्षत्रं लेख्यं, तत्र यदि वासकर्तुर्नामनक्षत्रं स्यात्तदा भयं पीडा च स्यात्। तत एकं नक्षत्रं हस्ते दक्षिणाहस्ते लेख्यं, तत्र यदि नामनक्षत्रं भवेत्तदा क्रन्दनं रोदनं प्रचुरकष्टेन वासकर्तुः सततरोदनमित्यर्थः (क्रन्दनं रोदनाह्वाने इत्यमरः) भवेत्। अथ वामे करे एकं नक्षत्रं लेख्यं, तत्र यदि नामनक्षत्रं भवेत्तदा वासकर्तुः भेदो लोकानां मध्ये विभेदो भवेत्।

भाषा— किसी गाँव या नगर में बसना लाभप्रद है या नहीं, यह जानने के लिए नराकार चक्र बनाकर उसमें नक्षत्रों का न्यास करें। इस नराकार चक्र में पाँच नक्षत्र मस्तक में न्यास करे जिनमें यदि अपना जन्म नक्षत्र हो तो लाभप्रद समझे। तीन नक्षत्र मुख में होंगे जिनमें जन्म नक्षत्र हो तो अर्थ की हानि, कोख में पाँच नक्षत्र होंगे जिनमें यदि जन्म नक्षत्र हो तो धन-धान्य की सुलभता, पद में छह नक्षत्र होंगे जिनमें यदि जन्म नक्षत्र हो तो स्त्री के कारण असहायता और दारिद्र्य, पीठ पर एक नक्षत्र होगा जो यदि जन्म नक्षत्र ही हो तो पाँव में पीड़ा, नाभि स्थल पर चार नक्षत्रों में यदि जन्म नक्षत्र हो तो धन-सम्पदा, गुह्याङ्ग पर एक ही नक्षत्र होगा और वह भी यदि जन्म नक्षत्र हो तो डर एवं पीड़ित करने वाला, दक्षिण एवं वाम हाथ में एक-एक नक्षत्र होगा जो यदि जन्म नक्षत्र हो तो क्रमशः रुदन-क्रन्दन एवं भेदकारी होगा। इस चक्र में ग्राम का जो नक्षत्र हो, उससे अपने जन्म नक्षत्र तक गणना कर फल पर विचार किया जाना अपेक्षित है।

पुरुषाकृति स्फुटार्थ चक्रम्-

ग्रा. न. सं	5	3	5	6	1	4	1	1	1
अङ्ग	सिर	मुख	पेट	पैर	पीठ	नाभि	गुदा	दायाँ	बायाँ
फल	लाभ	धन	धन-	स्त्री	पाँव	धन	भय	युद्ध	भेद
		हानि	धान्य	अभाव	पीड़ा	संपदा	पीड़ा		

इत्यमनन्तर ग्रामवासार्थं शिवावलिनिरूपणमाह—

तदर्थं निशीथे मांसादिसंयुतं भक्तं भूमौ निधाय ततः कियद्दूरं गत्वा तच्छब्दं चिन्तयेत्।

तत्फलं यथा—

नैर्ऋत्यां हि शिवा रौति तदा वासं न कारयेत्।
दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे भयं महत्॥ 11 ॥
पूर्वेतूच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिस्सह।
ईशाने मरणं प्रोक्तमुत्तरे कुरु सर्वतः॥ 12 ॥
वासं वायव्यकोणे च भयं किञ्चित् प्रजायते।
पश्चिमे च यदा रौति तदाऽऽनन्दः प्रकीर्तितः।
अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत्॥ 13 ॥
(निश्शब्दे सर्वलाभः स्यादिति गर्गादिभाषितम्)।

तत्रेति। अत्रानेन वासभूमेः शुभाशुभत्वज्ञानाय शिवावलिनिरूपणं क्रियते। तत्र रात्रौ सूर्यास्तानन्तरं, मांसादिसंयुक्तं मांसव्यञ्जनद्विदलादिसमन्वितं भक्तं, भूमौ पृथिव्यां, निधाय संस्थाप्य, ततः तस्माद्वासस्थानात्, कियद्दूर गत्वा तिष्ठेत्। ततः तच्छब्दं तस्याः शिवायां: शब्दं निनदं (शब्दो निनादो निनद इत्यमरः) चिन्तयेत् शब्दं श्रुत्वा तत्फलविचारं कुर्य्यात्। तत्फलञ्चाह- नैर्ऋत्याः मिति। यदि वासस्थाने नैर्ऋत्यां नैर्ऋत्यकोणे, शिवा मृगधूर्तकः शृङ्गाल इत्यर्थः (स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्त्तकाः शृगालवञ्चकेत्या-द्यमरः) रौति रावं करोति, तदा तत्र वासं न कारयेत्। यदि दक्षिणे यमदिशि रौति तदा कल्याणं कुशलं भवेत्। वह्निकोणे अग्निकोणे महद्भयम् अत्यन्तभीतिः स्यात्। पूर्वे पूर्वदिशि तु उच्चाटनं ज्ञेयं, वा अथवा, रिपुभिः शत्रुभिः सह, कलिः कलहो भवेत्। ईशाने ईशानकोणे, मरणं प्रोक्तम। उत्तरे यदि शिवा रौति तदा सर्वतः समन्ताद्, वासं कुरु विधेहि। यदि वायव्यकोणे शिवा रौति तदा किञ्चिद्भयं प्रजायते। पश्चिमे पश्चिमदिशि यदा रौति तदा आनन्दः सर्वथानन्दः प्रकीर्तितः। यदा अष्टदिक्षु शिवा रौति तदा तत्र वासं न कारयेत् च निश्शब्दं सर्वलाभ करोति इति गर्गादिसम्मतम्।

भाषा— (सियार के शब्द से वास फल का विचार) एकान्त में किसी इच्छित स्थान का चयन कर रात को मांस, तरकारी आहार आदि लेकर जाए और वहीं रख दें तथा दूर छिपकर सियार के शब्द को सुनकर फल का ज्ञान करें। यदि नैर्ऋत्य कोण में सियार को बोलता हुए सुने तो वहाँ निवास नहीं करें। दक्षिण दिशा में सियार बोले तो क्षेमकारी, आग्नेय कोण में बहुत भयप्रय, पूर्व दिशा में हो तो उच्चाटन या वैरभाव वर्धक, ईशान कोण में हो तो मरण या मरण तुल्य कष्ट, उत्तर दिशा में हो तो भली प्रकार निवास की

स्थिति, वायव्य कोण में हो तो भयप्रद और पश्चिम दिशा में सियार बोलता सुनाई दे तो सुख, आनन्द की प्राप्ति होगी, ऐसा जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि चारों ही दिशाओं में सियार बोलते सुनाई पड़े तो उस स्थान पर निवास का विचार त्याग देना ही श्रेयस्कर है। (सियार का शब्द नहीं हो तो सर्वलाभ ही जाने, ऐसा गर्गादि का मत है)।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

दिशा पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋ.	पश्चि.	वाय.	उत.	ईशा.	सर्व.
फल उच्चाटन	अतिभय	कल्याण	निषिद्ध	आनंद	अल्पभय	शुभ	मरण	त्याज्य

ग्रन्थान्तरेऽपि शिवाशब्दफलम् —

शक्रे चौरादिशङ्का हुतभुजि विविधक्लेशभीतिश्च याम्ये
सौख्यं कल्याणवित्तं दितिसुतदिशि चेत्स्वल्पकालस्थितिश्च।
वारुण्यां वित्तलाभोऽनिलदिशि सुहृदां सङ्गमश्चोत्तरस्यां
वासे स्थैर्यं प्रदिष्टं शिवदिशि मरणं वास्तु वेश्मप्रवेशे॥ 14 ॥

व्याख्या- इदं वास्तुसमये गृहप्रवेशकालेऽपि ज्ञेयम्। एतेन दक्षिणपश्चिमोत्तरदिक्षु शिवाशब्दे शुभं फलम्, अन्यक्ष्विशुभं फलं भवति।

शक्र इति। शक्रे पूर्वस्यां दिशि, यदि शिवा रौति तदा तत्र चौरादिशङ्का चौरादिभिः शङ्का भयो भवेत्। हुतभुजि अग्निकोणे, विविधानां क्लेशानां भीतिर्भयः स्यात्। याम्ये दक्षिणस्यां दिशि, सौख्यं कल्याणवित्तं कुशलकारकधनं च स्यात्। दितिसुतदिशि दितेः सुतः दितिसुतः दितिसुतस्य दिक् दितिसुतदिक् तस्यां दितिसुतदिशि नैर्ऋत्यां दिशि चेच्छिवा रौति तदा स्वल्पकालस्थितिः अत्यल्पकालपर्य्यन्तं तत्र स्थितिर्वासः स्यात्। वारुण्यां पश्चिमायां दिशि, वित्तलाभः वित्तस्य लाभः स्यात्। अनिलदिशि वायव्यकोणे, सुहृदां मित्राणां सङ्गमः स्यात्। उत्तरस्यां दिशि वासे स्थैर्य्ये स्थिरत्वं प्रदिष्टं कथितम्। शिवदिशि ईशानकोणे मरणं प्रोक्तम्। इति वास्तुवेश्मप्रवेशे वास्तु वेश्मप्रवेशो गृहप्रवेशश्चेति वास्तुवेश्मप्रवेशस्तस्मिन् विचार्य्यमिति।

भाषा— (ग्रन्थान्तर में कहा गया है) यदि सियार पूर्व दिशा में बोले तो तस्कर, चोरादि का भय जाने। अग्नि कोण में बोले तो विभिन्न प्रकार के उपद्रव और क्लेशकारी, दक्षिण दिशा में बोलने पर सुख, कल्याण और धनागम, नैर्ऋत्य कोण में बोलने पर अल्पकालिक या अस्थायी निवास, पश्चिम दिशा में बोलने पर धन प्राप्ति व व्यवसाय में उन्नति, वायव्य कोण में बोलने पर मित्रों, सुहृदजनों की प्राप्ति, उत्तर दिशा में बोलने पर दीर्घावधि तक निवास और ईशान कोण में सियार को बोलता सुने तो मरण या मृत्यु तुल्य कष्ट होगा, ऐसा फल गृहारम्भ और गृहप्रवेश काल में विचारना चाहिए।

अथ लाभालाभविचारः —

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्॥ 15 ॥

व्याख्या — वर्गास्तु- 'अ-क-च-ट-त-प-य-श।' इत्यष्टौ, तत्र अवर्गादि गणनाया वास्तुकर्तुर्नरस्य यत्सङ्ख्यको वर्गः, तां संख्यां द्विगुणीकृत्य परस्य (ग्रामादेः) वर्गसंख्यायुतां कृत्वाऽष्टभिः शेषितमवशिष्टं नरस्य काकिण्यो ज्ञेयाः। एवं ग्रामादेरपि वर्गसंख्यां द्विगुणीकृत्य वास्तुकर्तुर्नरस्य वर्गसंख्यया युतां विधायाऽष्टभिस्तष्टितां कृत्वाऽवशिष्टमिता ग्रामादेः काकिण्यो भवन्ति। एवं द्वयोः (नरस्य, ग्रामस्य च) काकिणी विवरात् यस्याधिका अवशिष्यन्ते सोऽर्थदो भवति।

भाषा- अपनी जो वर्ग संख्या हो उसको दो से गुणा करे, उसमें गाँव आदि की वर्ग संख्या का योग करे और प्राप्त फल में आठ का भाग देवें। जिसकी शेष संख्या अधिक हो वह सदैव ऋणि होगा, यह निश्चित है।

यथोक्तं चिन्तामणिकाररामदैवज्ञेन (12, 1) —

स्वं वर्गं द्विगुणं$_2$ विधाय परवर्गाढ्यं गजैः$_8$ शेषितं,
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकः सोऽर्थदः।

पीयूषधाराटीकायां— अथ ग्रामात्मनोरुत्तमर्णत्वमधमर्णत्वं चाह— **स्वं वर्गमिति।** वर्गास्तु— अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम्। सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चम-वैरिणामष्टौ॥ इत्युक्ताः। तत्र यस्य पुंसः यत्ससङ्ख्याको वर्गो गरुडादिः स्यात्तवर्गसङ्ख्यां द्विगुणां विधायकृत्वा परस्य ग्रामस्य वर्गसङ्ख्या आढ्यां च कृत्वा गजैरष्टभिः शेषितमवशिष्टं ताः काकिण्यो ज्ञेयाः पुंसः, एवं ग्रामस्यापि स्वर्गसङ्ख्यां द्विगुणां कृत्वा परस्य पुंसः वर्गसङ्ख्यया युक्तां च कृत्वा गजभक्ताः अवशिष्टाः काकिण्यो ग्रामस्य भवन्ति। एवमनयोः पुरुषगामयोः काकिण्यः स्युः। तत्र तद्विवरतः पुरुषकाकिणीनां ग्रामकाकिणीनां विवरमन्तरं तस्मिन् क्रियमाणे यस्य ग्रामस्य दातृत्वात् पुंसः काकिण्यादशेषे पुंसा द्रव्यहानिः। ग्रामस्य प्रतिगृहीतृत्वादित्यर्थः।

यथा— नीलकण्ठस्य वर्गः सर्पः। तत्सङ्ख्या 5 द्विगुणा 10, चरणाद्रेर्वर्गः सिंहः तत्सङ्ख्यया 3 युक्ताः 13, गजभक्ताः शेषं 5 नीलकण्ठस्य काकिण्यः। एवं ग्रामवर्गसङ्ख्या 3 द्विगुणां 6 नीलकण्ठवर्ग- 5 सङ्ख्यया युक्ताः 11, अष्टभक्तावशेषं 2 ग्रामस्य काकिण्यः 3 अत्र द्वयोरन्तरे शेषम् 2 नीलकण्ठस्य दातृत्वात्स्वद्रव्यहानिरित्यर्थः।

भाषा— अपने नाम के पहले वर्ण के वर्ण की संख्या को दुगुना कर उसमें गाँव नाम के पहले वर्ण की संख्या को जोड़कर आठ से भाग दिए जाने से शेष संख्या के बराबर अपनी और गाँव वर्ग संख्या को दो से गुणाकर, उसमें अपने नाम की वर्ग संख्या

को जोड़े और आठ का भाग देने से शेष के बराबर ग्राम की काकिणी होती है। इसे जानकर देखें कि जिसकी काकिणी अधिक हो, वह कम काकिणीवाले को धन प्रदायक या फायदा देने वाला होता है जबकि जिसकी काकिणी कम हो, वह ऋणि होता जाता है।

काकिणीज्ञानाय स्फुटार्थ चक्रम्-

ग्रामनाम	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
	3	4	5	6	7	8	1	2
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	3	5	7	1	3	5	7	1.
फल	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ
ग्रामनाम	क	क	क	क	क	क	क	क
	5	6	7	8	1	2	3	4
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	4	6	8	2	4	6	8	2
फल	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ
ग्रामनाम	च	च	च	च	च	च	च	च
	7	8	1	2	3	4	5	6
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	5	7	1	3	5	7	1	3
फल	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ
ग्रामनाम	ट	ट	ट	ट	ट	ट	ट	ट
	1	2	3	4	5	6	7	8
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	6	8	2	4	6	8	2	4
फल	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	शुभ	शुभ
ग्रामनाम	त	त	त	त	त	त	त	त
	3	4	5	6	7	8	1	2
गृहेशनाम	अ	क	च	ट	त	प	य	श
	7	1	3	5	7	1	3	5
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

आग्नेय कोण में मृत्यु व शोक, दक्षिण में गृहविनाशक, नैर्ऋत्य में धनहानि, पश्चिम में अपकीर्तिकारी, वायव्य कोण में प्लव हो तो नित्य ही उद्वेगकारी होती है। इसी प्रकार मध्य में दवी हुई भूमि भी नेष्ट करती है और भूमि के पास में भी कोई प्लव या ढाल नहीं होना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चि.	वाय.	उत्त.	ईशा.
फल	वृद्धिदा	मृत्यु	गृहक्षय	धनहानि	कीर्तिक्षय	उद्वेग	धनदा	श्रीसुख

तथा च भूमेर्वर्णविचारो वास्तुप्रदीपे —

शुक्लमृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता ॥ 29 ॥
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद् वैश्या प्रकीर्तिता।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता ॥ 30 ॥

शुक्ल मृत्स्नेति। या भूमिः शुक्लभृत्स्ना शुभ्रमृत्तिकया युक्ता, सा ब्राह्मणी प्रकीर्तिता। रक्तमृत्स्ना रक्तमृत्तिकया युक्ता, क्षत्रिया राजन्या प्रकीर्तिता। हरिद्वर्णसमन्विता भूमिः वैश्या प्रकीर्तिता। कृष्णा श्यामला भूमिः शूद्रा भवेदिति चतुर्धा चतुः प्रकारा भूमिः परिकीर्तिता।

भाषा— वास्तुप्रदीप में भूमि के वर्ण पर विचार करते हुए कहा गया है कि श्वेत मिट्टी वाली भूमि ब्राह्मणी होती है। लाल वर्ण वाली क्षत्रिया, हरे वर्ण वाली वैश्या एवं काले वर्ण वाली मिट्टी शूद्रा कही जाती है।

तत्रैव प्रकारान्तरेण भूमिवर्णविचारः —

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥ 31 ॥

ब्राह्मणीति। कुशोपेता कुशसहिता भूः भूमिः ब्राह्मणी। शराकुला मुञ्जयुक्ता भूमिः क्षत्रिया। कुशकाशाकुला कुशैः काशैश्च सहिता भूमिर्वैश्या। सर्वतृणाकुला सर्वतृणसहिता भूमिः शूद्रा कथिता।

भाषा— जो भूमि कुशयुक्त हो, वह ब्राह्मणी कहलाती है। इसके अतिरिक्त शर (मूँज या सरकण्डे) वाली भूमि क्षत्रिया, कुश-काश उगाने वाली भूमि वैश्या एवं समस्त प्रकार के तृणादि को उगाने वाली भूमि शूद्रा होती है।

तासां फलान्युक्तानि तत्रैव —

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत्।
धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता बुधैः ॥ 32 ॥

ब्राह्मणीति। ब्राह्मणी भूमिः सर्वसुखदा सर्वं सुखं ददाति या सा सर्वसुखदा भवेत्, क्षत्रिया क्षत्रियालक्षणसमन्विता भूमिः राज्यदा राज्यं ददातीति राज्यदा भवेत्, वैश्या वैश्यालक्षणसमन्विता भूमिः धनधान्यकरी भवति, शूद्रा शूद्रालक्षणयुक्ता भूमिः बुधै पण्डितैः निन्दिता प्रतिपादिता।

भाषा— ब्राह्मणी भूमि समस्त सुखों को देने वाली है जबकि क्षत्रिया भूमि राज्य, उच्चपद प्रदान करती है, वैश्या भूमि धन-धान्य का उपभोग करवाने वाली और शूद्रा भूमि ज्ञानियों की दृष्टि में निन्दित कही गई है।

वास्तुप्रदीपोक्तभूमिदोषमाह —

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्येयं कर्तुरायुर्धनापहा ॥ 33 ॥
स्फुटिता मरणं कुर्य्यादूषरा धननाशिनी।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥ 34 ॥

स्फुटिनेति। स्फुटिता खण्डिता, सशल्या शल्यसमन्विता, वल्मीका वल्मीकयुता, तथा आरोहिणी निम्नोन्नता भूमिः, दूरतः दूरादेव, परिवर्ज्या परित्याज्या, नीचेत्कर्तुर्निवासकर्तुः, आयुर्धनापहा आयुषो धनस्य चापहा नाशकर्त्री भवति। अथ पृथक् पृथक् फलं कथ्यते- स्फुटिता भूमिः वासकर्तुः मरणं निधनं कुर्यात्। ऊषरा धननाशिनी धनहन्त्री भवति, सशल्या अस्थिकेशादि शल्ययुक्ता, नित्यमनारतं, क्लेशदा कष्टदा भवति। विषमा निम्नोन्नता भूमिः शत्रुवर्धिनी वैरविग्रहवृद्धिकारिणी भवति।

भाषा- ऐसी भूमि जो कटी-फटी हो, हड्डी, केश सहित शल्य वाली हो, वल्मीक या दीमक की बाँटियों वाली हो और जो ऊँची-नीची या उबड़-खाबड़ हो, उसे दूर से ही त्याग दिया जाना उचित है। कारण यह है कि स्फुटिता भूमि पर निवास करने से मरण या मरणतुल्य कष्ट होता है, अनुपजाऊ भूमि या दीमक वाली भूमि पर निवास करने पर धन-सम्पदा का विनाश होता है, शल्ययुक्त भूमि प्रायः कलह का कारण होती है जबकि विषम तला भूमि पर निवास करने से शत्रु एवं वैरभाव की वृद्धि होती है।

अथ भूमेर्लक्षणं भुजबलभीमे, तत्र गजपृष्ठलक्षणम् —

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋतौ वायुकोणके।
एभिरुच्चा भवेद् भूमिः गजपृष्ठाऽभिधीयते ॥ 35 ॥

दक्षिण इति। दक्षिणे दक्षिणदिशि, पश्चिमे वारुण्यां दिशि, नैर्ऋतौ नैर्ऋत्यकोणे, वायुकोणके वायुकोणे (स्वार्थेः कः) एभिः उच्चा उन्नता भूमिर्यदि भवेत्, तदा सा गजपृष्ठा इति अभिधीयते कथ्यते।

भाषा— ऐसी भूमि जो दक्षिण-पश्चिम दिशा, नैर्ऋत्य व वायव्यकोण में ऊँची उठी हुई हो, वह भूमि 'गजपृष्ठा' नामक कही जाती है।

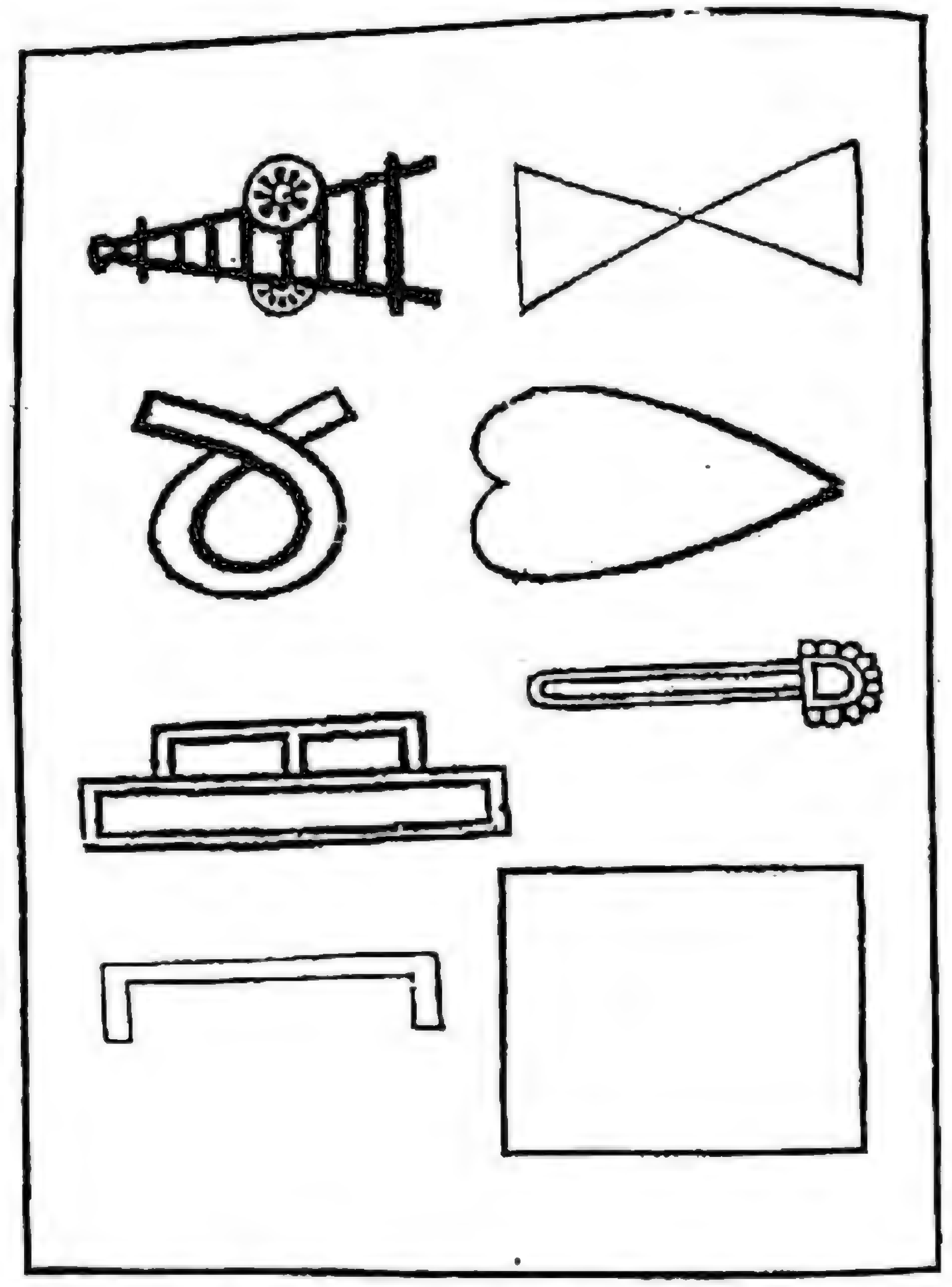

विविध प्रकार की भूमि : शकटाकार, डमरू जैसी, रस्सी जैसी, पत्राकार या योन्याकार, भद्राकार, धनुषाकार, वर्गाकार या समचतुस्र

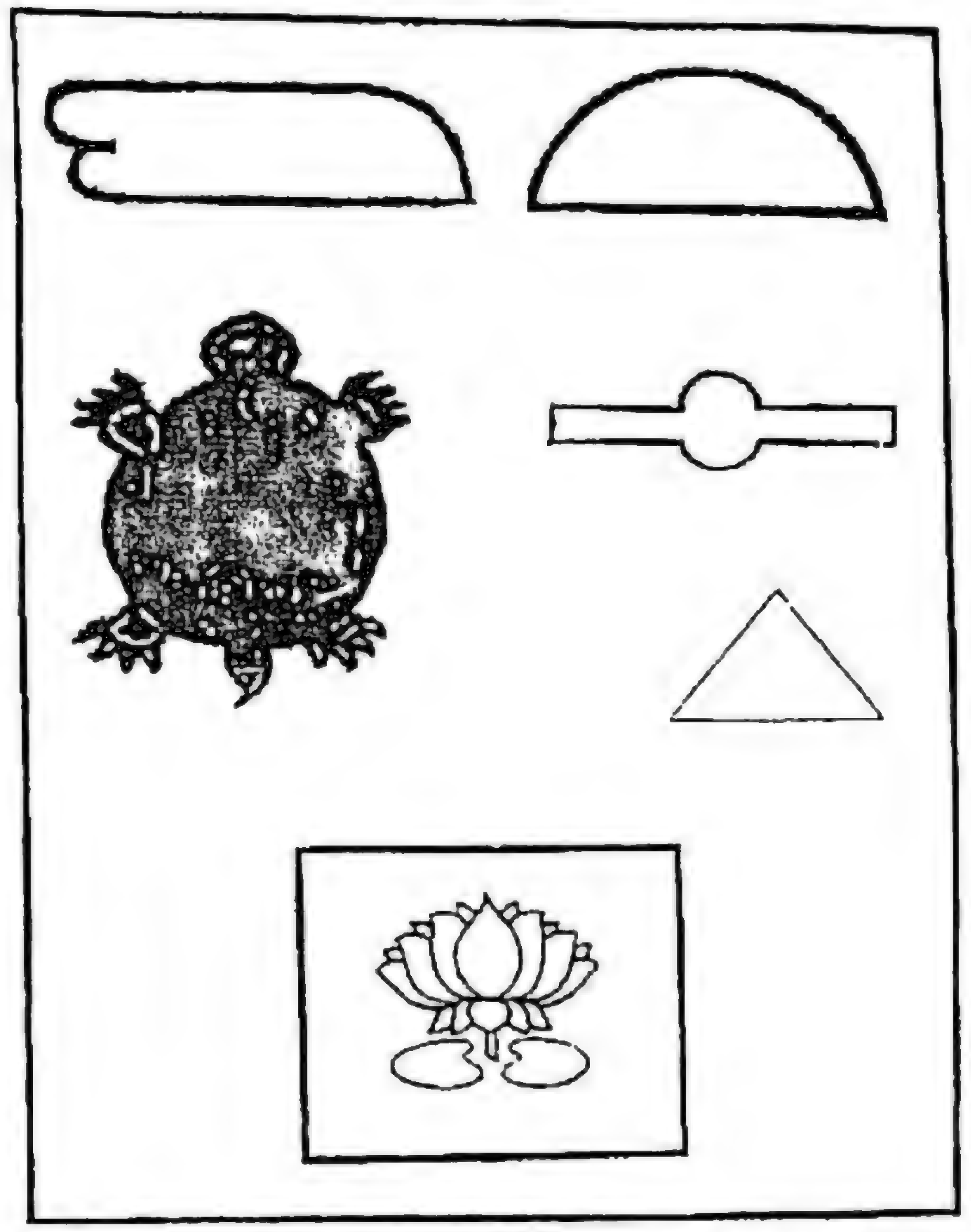

विविध प्रकार की भूमि : खड्गाकार, अर्द्धचन्द्रकार, कूर्माकार, विषमबाहु, त्रिकोणाकार और पद्मपीठाकार

तत्र वासफलं तत्रैव-

गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः।
आयुर्वृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः ॥ 36 ॥

गजपृष्ठ इति। यदि गजपृष्ठे वासः भवेत्तदा स वासः लक्ष्मीधनपूरितः श्रीधनैः समन्वितः, आयुर्वृद्धिकरश्च नित्यमनवरतं जायते, अत्र संशयो न कार्यः।

भाषा— जो भूमि गजपृष्ठा हो, यदि वहाँ पर निवास किया जाए तो वह निवासकर्ता को लक्ष्मी, धन-धान्य से पूर्ण करती है। साथ ही वह सदैव आरोग्य रखती हुई आयु को बढ़ाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं करे।

अथ कूर्मपृष्ठलक्षणं तत्रैव —

मध्ये तूच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्।
कूर्मपृष्ठा भवेद् भूमिः तत्र वासः शुभप्रदः ॥ 37 ॥

मध्ये तूच्चमिति। यत्र भूमौ मध्ये मध्यप्रदेश, उच्चमुन्नतं भवेत्, नीचं निम्नं, चतुर्दिशं भवेत्, तदा सा भूमिः कूर्मपृष्ठा भवेत्। तत्र तस्मिन् कूर्मपृष्ठे वासः शुभप्रदो भवति।

भाषा— जो भूमि मध्यभाग में विशेष रूप से ऊँची उठी हुई हो एवं चारों ही दिशाओं में नीची दिखाई देती हो, वह कूर्मपृष्ठा (कछुए की पीठ जैसी) कहलाती है। वहाँ पर निवास करना शुभदायक है।

तत्र वासफलम् —

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः।
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं सदाः ॥ 38 ॥
पूर्वोत्तरे प्लवं लक्ष्मीरीशाने च शुभं भवेत्।

अत्र विशेषरूपेण फलं प्रतिपाद्यते-**कूर्मपृष्ठ इति।** यदि कूर्मपृष्ठे वासो भवेत्तदा स वासः नित्योत्साहसुखप्रदो भवति। तथा तस्य तत्र वासकर्तुः निश्चितं विपुलं बहुलं, धन-धान्यं भवेत्। पूर्वोत्तरे पूर्वदिशि सौम्यदिशि च ईशाने च यदि प्लवं नीचं भवेत्तदा तत्र वासे लक्ष्मीः शुभं च भवेत्।

भाषा— जो भूमि कूर्मपृष्ठा हो, वहाँ पर निवास करने से नित्य ही उत्साह बना रहता है। वह भूमि सुखप्रद होती है। वह निश्चित तौर पर सदा ही धन-धान्य को देने वाली कही गई है। इसी प्रकार पूर्व, उत्तर और ईशान कोण में निम्नतला हो तो भी शुभकारक होती है।

अथ दैत्यपृष्ठलक्षणम् —

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु भूमौ यद्युन्नतिर्भवेत्।

पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठाऽभिधीयते ॥ 39 ॥

पूर्वाग्निशम्भुकोणष्विति। यत्र भूमौ पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु प्रागग्नीशानकोणेषु उन्नतिरुच्चं भवेत्। यदा पश्चिमे पश्चिमदिशि नीचं भवेत्तदा सा भूमिः दैत्यपृष्ठा अभिधीयते।

भाषा— पूर्व दिशा, ईशान कोण और आग्नेय कोण में जो भूमि ऊँची तथा पश्चिम दिशा की ओर नीची हो तो वह दैत्यपृष्ठा भूमि कही जाती है।

तत्र वासफलम् —

दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे।
धन-पुत्र-पशूनां च हानिरेव न संशयः ॥ 40 ॥

तत्र वासफलं-**दैत्यपृष्ठ इति।** यदि दैत्यपृष्ठे वासः भवेत्तदा मन्दिरे तत्र निर्मितहर्म्य-भवने, लक्ष्मीः श्रीः, न आयाति नागच्छति। तथा तत्र धनपुत्रपशूनां पुत्रैश्वर्यपशूनां, हानिर्विनाश एव स्यात्। अत्र संशयो न कार्यः।

भाषा— दैत्यपृष्ठा संज्ञक भूमि पर यदि भवन बनाया जाए तो वहाँ सम्पति का आगमन नहीं होता। वहाँ रहने वाला धन, पुत्र, पशुधन की हानि ही उठाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

अथ नागपृष्ठलक्षणम् —

पूर्वपश्चिमयोर्दैर्घ्यं दक्षिणोत्तरे उच्चता।
नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत्॥ 41 ॥

पूर्वपश्चिमयोरिति। पूर्वपश्चिमयोः प्राचीपश्चिमयोः दिशि, दैर्घ्यं दीर्घता, दक्षिणोत्तरे याम्यसौम्ये, उच्चता उन्नता च यदि भवेत्तदा सा भूमिः नागपृष्ठा इति विजानीयात्। तत्र वासे कर्तुः वासकर्तुरुच्चाटनमेव भवेत्।

भाषा— पूर्व एवं पश्चिम दिशा में अधिक लम्बाई वाली भूमि हो और दक्षिण-उत्तर की ओर ऊँचाई वाली हो तो वह भूमि नागपृष्ठा कही जाती है। ऐसी भूमि वहाँ बसने वाले के चित्त में उच्चाटन करने वाली होती है।

तत्र वासफलम्-

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥ 42 ॥

अथ विशेषफलमभिधीयते-**नागपृष्ठ इति।** यदा नागपृष्ठे वासः भवेत्तदा वासकर्तुः मृत्युरेव मरणमेव भवेत्। तथा पत्नीहानिः स्त्रीविनाशः, पुत्रहानिः सुतनिधनं, पदे पदे शत्रुवृद्धिश्च भवेदत्र संशयो न।

भाषा— उक्त नागपृष्ठा लक्षणों वाली भूमि पर जो निवास करता है, वह निश्चित

बिडाला मूषका: स्नेहाद्रमन्ते च परस्परम्।

तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयेम्॥

जिस स्थान पर बिल्लियाँ और चूहे आपस में, परस्पर स्नेहपूर्वक रमण करते हो, उस स्थान की भूमि खोदने पर भी निश्चय ही धन और द्रव्य मिलता है।

सर्पाश्च मूषका: स्नेहात् क्रीडन्त्यानन्दरूपका:।

तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥

इसी तरह जिस स्थान पर सर्प और चूहे भी प्रेमपूर्वक और आनन्द में क्रीड़ा करते पाए जाए, उस स्थान में भी भूमि खोदने पर निश्चय ही धन और द्रव्य की प्राप्ति होती है।

यत्र ना दृश्यते शल्यं द्रव्यं तत्र तथोच्यते।

तत्र स्थाने महीं खात्वा द्रव्यं तिष्ठति निश्चयम्॥

जिस स्थान में किसी भी प्रकार का शल्य न पाया जाए तो समझो कि वहाँ भी द्रव्य है। अत: उस स्थान पर भी भूमि को खोदने पर धन, द्रव्य निश्चय ही मिलता है।

अथाहिबलचक्रम् —

अष्ट₈ पूर्वायता रेखा भिन्ना: पञ्च₅ समुद्धरेत्।

पदैरष्टाविंशति₂₈भिर्ऋक्षसङ्ख्या तथैव च॥

द्वारमध्ये कृत्तिका च शाखयोर्भरणीमघे॥

(भूमिस्थनिधि के अवलोकन के लिए अहिचक्र की विधि कही जा रही है) इसके लिए सर्वप्रथम पूर्वापर आठ रेखाएँ खींचनी चाहिए और तिर्यक् या आड़ी पाँच रेखाएँ डालें। यह रचना इस प्रकार से की जाए कि अन्दर 28 कोष्ठक बन जाएँ। इन पदों में (अभिजित सहित) सभी 28 नक्षत्रों का इस प्रकार से न्यास किया जाना चाहिए कि द्वार के मध्य में कृतिका नक्षत्र और दोनों शाखाओं में मघा और भरणी नक्षत्र आ जाए।

चन्द्रे द्रव्यं तथा सूर्ये शल्यं चैव विनिर्दिशेत्।

अहिबलचक्रे प्रोक्ता सारोधृत्यां च केवली॥

इस प्रकार केवली के स्वरशास्त्र में कहे गए अहिबल चक्र में विन्यसित नक्षत्रों में चन्द्रमा के नक्षत्रों से द्रव्य और सूर्य के नक्षत्रों से शल्य का ज्ञान करना चाहिए।

अश्विन्यादि त्रिकं₃ चैव आर्द्रादि पञ्चकं₅ तथा।

पूर्वाषाढा चतुष्कं₄ च रेवती चोत्तरात्रयम्॥

शशिभानि किलैतानि शिष्टानि रविभानि च।

अश्विन्यादि तीन (अश्विनी, भरणी व कृत्तिका), आर्द्रा आदि पाँच (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा व मघा), पूर्वाषाढादि चार (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढ, अभिजित् व श्रवण) तथा रेवती और उत्तरात्रय नक्षत्रों को मिला कर कुल सोलह नक्षत्र चन्द्रमा के नक्षत्र होते हैं और शेष नक्षत्र (रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, शतभिषा) सूर्य के हैं।

चन्द्रर्क्षे च स्थिते सूर्ये चन्द्रे सूर्यर्क्षसंस्थिते॥

तत्र शून्यं भवेत्स्थानं द्रव्यशल्यविवर्जितम्।

जब चन्द्र के नक्षत्र सूर्य के नक्षत्र में और सूर्य के नक्षत्र चन्द्र में समागत हों, ऐसे योग में उक्त स्थान पर कुछ भी नहीं होता है, न द्रव्य और न शल्य ही मिलता है।

द्रव्यशल्यविना त्वेतं शल्यद्रव्यं विनिर्दिशेत्॥

चन्द्र: पूर्वं परं भानुस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्।

भानु: पूर्वं परं चन्द्रस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत्॥

किन्तु, यदि सूर्य व चन्द्रमा अपने अपने-अपने नक्षत्र में हों तो वहाँ धन व शल्य दोनों ही कहना चाहिए। गणना से यह ज्ञात करें कि यदि चन्द्र पूर्व नक्षत्र में और सूर्य परवर्ती नक्षत्र में हो तो उस भूमि में हड्डी होती है और सूर्य पूर्व तथा चन्द्रमा परवर्ती नक्षत्र में स्थित हो तो भी वहाँ शल्य बताना चाहिए।

सूत्रचन्द्रनक्षत्रसाधनम् —

गतघटि ऋक्षभक्ता:₂₇ षष्ठिहते₆₀ च शेषकम्।

रविशशिभुक्तकालं रविचन्द्रर्क्षलग्नकम्॥

भूमिस्थ निधि प्राप्ति के लिए प्रश्न की गत घटियों को 27 से गुणा करें और उसमें 60 का भाग दें तो प्राप्त फल सूर्य व चन्द्रमा का भुक्तकाल होगा और वही सूर्य व चन्द्रमा के नक्षत्रों से लग्न होगा। (यदि प्राप्त नक्षत्र की संख्या में अश्विन्यादि गत नक्षत्र जोड़ा जाएगा तो अश्विन्यादि क्रम से चन्द्रमा के नक्षत्र का पता चलेगा)।

तत्र सविवृतिबृहत्संहितायां (53. 109) गर्गमत: —

प्रश्नकाले गृहपति: कस्मिन्नङ्गे समास्थित:।

किमङ्गं संस्पृशेच्चापि व्याहरेद्वा शुभाशुभम्॥

स्थपति को चाहिए कि प्रश्नकाल में गृहस्वामी किस स्थान पर बैठा है, उसकी चेष्टा तथा उसके भाषा-व्यवहार-उच्चारण आदि को ध्यान में लेकर शुभाशुभ कथन करे।

विलोक्य स्थपति: पूर्वं पश्चाच्छल्यं विचारयेत्।

भाषा— भूमि की पूजा करने लिए विघ्नराज गणपति व चण्डी का पूजन करके क्षेत्रपाल व आठों दिशाओं का पुष्प, धूप व बलिपूर्वक पूजन किए जाने से सुख की प्राप्ति होती है। आवास के लिए भूमि की सम्यक् रीति से परीक्षा की जानी चाहिए। इसके लिए जहाँ घर बनाना हो उस भूखंड पर एक हाथ गहरा खड्डा खोदें और उसमें से निकली मिट्टी को पुनः उसी में भर कर देखें। यदि मिट्टी कम पड़ जाए तो वह भूमि हीन फल देने वाली है। समतल या बराबर हो तो साधारण फलदायक और यदि मिट्टी बच जाए तो वह भूमि लाभकारी होती है। इसी प्रकार एक अन्य युक्ति से भी भूमि परीक्षा की जा सकती है। इसके लिए उक्त खड्ड को पानी से भरे और फिर सौ कदम दूर जा, लौटकर देखें कि यदि एक चौथाई पानी घटता है तो वह भूमि मध्यम फलदायक, पानी के आधे रहने पर अधम और कुछ भी कमी न होने पर वह भूमि वृद्धिकारक होती है, ऐसी भूमि पर गृह निर्माण शुभप्रद माना जाता है।

अस्माद्विशेषफलं वास्तुरत्नप्रदीपे —

कर्ता स्वहस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरयेत्तत्।
वसेत्सुखार्थी परिपूरितं स्याच्छुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः ॥ 18 ॥
स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्याद्दक्षिणावर्तजलेन सौख्यम्।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः ॥ 19 ॥

कर्त्तेति। कर्ता गृहनिर्माणकर्ता, स्वहस्तप्रमितमात्महस्तसमानं, खातं गर्तं, खनित्वा, तत् खातं पयोभिर्जलैः, परिपूरयेत्, पूर्णं कुर्यात्। यदि तत्क्षणमेव परिपूरितं परिपूर्णं जलं, स्यात्तदा सुखार्थी कल्याणार्थी, वसेत्तत्र निवासं कुर्यात्। शुष्कं जलं चेद्भवेत्तदा नाशः स्यात्। जले स्थिरे निश्चले सति गृहस्य भवनस्य स्थिरता स्थैर्य्यं स्यात्। दक्षिणावर्तजलेन सौख्यं स्यात्। यदि खातः क्षिप्रं शीघ्रं, जलं शोषयति, तथा वामेन वामावर्तेन जलेन कर्तुर्गृहनिर्माणकर्तुः, हि निश्चयेन, मृत्युः स्यात्। तथा चान्य तत्रैव— अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः। यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत्।

भाषा— वास्तुरत्नप्रदीप में कहा गया है कि गृहकर्ता के हाथ प्रमाण से खोदी गई भूमि को जल से पूरित करे। यदि जल भरा ही रहे तो शुभ जानना चाहिए। यदि तत्काल सूख जाए तो अनिष्ट जानना चाहिए। जल भरते समय यदि पानी स्थिर रहे तो गृह की स्थिरता जाने, दक्षिणावर्त घूमे तो सौख्य एवं वामावर्त घूमने लगता हो तो उक्त भूमि गृहकर्ता के लिए मरणप्रद होती है।

अथ खननकाले पाषाणदिदर्शनफलं तत्रैव —

खाते शिलां वा लभते हिरण्यं तथेष्टिकाञ्चापि समृद्धिरत्र।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥ 20 ॥

पिपीलिकाः षोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्त्ता।
तुषास्थिवीर्याणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ॥ 21 ॥
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति रोगम्।
काष्ठं प्रदग्धं यदि रोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन ॥ 22 ॥
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य्य वास्तु प्रदिशन्ति धीराः।

व्याख्या— अथ खातखननसमये यदि पाषाणादिदर्शनं वा स्वर्णपाषाणकणादर्शनं तदा वासकर्तुर्धनधान्यपुण्यादिवृद्धिर्भवति। रजतताम्रादिधातुदर्शनेऽपि तद्वत्। यदि पिपीलिकामण्डूकदुष्टकीटादिदर्शनं तदा न शुभमिति अथ यदि तुषास्थिभस्मचर्माण्ड सर्पाणामन्यतमस्य दर्शनं तदा कर्तुर्निधनं, कपर्दिकादर्शने दारिद्र्यम्। अथ कार्पासदग्ध-काष्ठाङ्गारदर्शने रोगवृद्धिः, खर्प्परदर्शने कलिः लौहदर्शने गृहस्वामिनोमरणमिति।

खात इति। खाते पूर्वविनिर्मितखाते, शिलां पाषाणं (पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मनः शिला दृषदित्यमरः), वा हिरण्यं सुवर्णं, तथा इष्टिकाञ्चापि यदि लभते तदाऽत्र समृद्धिरुच्यं भवति। यद्रि द्रव्यं राजतमुद्रा मिलेत्तदा रम्याणि मनोहराणि सुखानि धत्ते। यदि तत्र खाते ताम्रादिधातुर्भवेत्तदा वृद्धिः धनपुत्रादि वृद्धिः स्यात्। चेद्यदि तत्र पिपीलिकाः कीटविशेषाः षोडशपक्षनिद्राः मण्डूका भवन्ति, तदा तत्र कर्ता वासकर्ता न वसेत्। यदि तुषास्थिवीर्याणि तुषशल्यवीर्याणि, भस्मानि प्रसिद्धानि, अण्डानि, सर्पाश्च तत्र भवेयुस्तदा ते मरणप्रदाः निवासकर्तृमरणप्रदाः स्युः। यदि वराटिका मिलेत्तदा सा कलिप्रदात्री भवति। यदि तत्र कार्पासः बादरः (कार्पासः बादरं च तदित्यमरः) मिलेत्तदा एव निश्चयेनातिरोगं ददाति। यदि प्रदग्धं काष्ठं तत्र भवेत्तदा रोगभीतिः रोगभयं स्यात्। तत्र खाते खर्परदर्शनेन कलिः कलहो भवेत्। लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं कथितम्। एवं धीरा धीमन्तः वास्तु विचार्य्य प्रदिशन्ति।

भाषा— भूमि की खुदाई करते समय यदि गड्ढे में से पत्थर मिले तो स्वर्णलाभ होता है। यदि ईंट मिले तो समृद्धि होती है। द्रव्य से सुख एवं ताम्बा आदि का धातु मिले तो वहाँ सभी प्रकार की वृद्धि होती है। यदि चींटी, षोडशपक्षनिद्रा (मेंढ़क) निकले तो वहाँ निवास नहीं करना चाहिए। भूसा, अस्थि, गड्ढा भूण और इसी प्रकार भस्म एवं सर्प अण्डा आदि निकले तो वह भूमि मरणप्रद होती है। कौड़ी निकले तो दुःख और कलह प्रदान करने वाली जानें जबकि कपास निकले तो रोग प्रदायक होगी। यदि जला हुआ काष्ठ निकले तो रोग व भयप्रद तथा खोपड़ी निकले तो कलहकारक जानें। लोहा निकलने पर गृहकर्ता के लिए वह भूमि मरणकारक होती है। अतः गृहनिर्माण में इसे ज्ञानियों ने इन सब दोषादि पर सम्यक् विचार करने के लिए कहा है।

अथ दुष्टदर्शनप्रतीकारं दर्शयन्भूमिशोधनमाह माण्डव्यः —

वास्तुपं गणनाथञ्च नागानपि दिगीश्वरान्।
सन्तर्प्य बलिदानेन कर्त्ता सदनमारभेत्॥ 23॥
जलान्तं प्रस्तरान्तं च पुरुषान्तमथाऽपि वा।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत्॥ 24॥

वास्तुपमिति। वास्तुपं वास्तुपतिं, गणनाथं गणेशं च, नागान् सर्पान्, दिगीश्वरान् दिक्पतीन्, कर्त्ता गृहकर्त्ता, बलिदानेन सन्तर्प्य पूजयित्वा, सदनं गृहनिर्माणमारभेत् प्रारभेत्। अथानन्तरं जलान्तं जलस्थानपर्य्यन्तं, वा प्रस्तरान्तं प्रस्तरमिलनपर्य्यन्तं, अपि वा पुरुषान्तं पुरुषपरिमाणं यावत्, क्षेत्रं भूमिं, संशोध्य शोधयित्वा, शल्यं चोद्धृत्य उत्पाट्य, सदनं गृहमारभेत्।

भाषा— उक्त दोषादि होने पर उनका निवारण करे और बाद में माण्डव के मत के अनुसार वास्तुपति, गणेश, नाग, दिक्पाल को पूजादि से सन्तुष्ट कर गृहपति को भवन का निर्माण आरम्भ करना चाहिए। शल्य निकालने के लिए भूमि की खुदाई कहाँ तक करें, इस सम्बन्ध में मत यह है कि भूमि में पानी मिलने तक, पत्थर या चट्टान निकलने तक अथवा एक पुरुष (120 अङ्गुल) गहराई तक खुदाई कर क्षेत्र का शोधन करे और शल्य को निकलकर ही गृह कार्यारम्भ करना चाहिए।

आवासार्थ वास्तुपरीक्षा के सम्बन्ध में आश्वलायनगृह्यसूत्र में कहा गया है– अनूपरमविवदिष्णु भूमींपधिवनस्पतिवत्। यस्मिन् कुशवीरणं प्रभूतम्। कण्टकिक्षीरिणस्तु समूलान् परिखायोद्वासयेदपामार्गः शाकस्तिल्वकः परिव्याध इति चैतानि। यत्र सर्वत आपो मध्यं समेत्य प्रदक्षिणं शयनीयं परीत्य प्राच्यः स्यन्देनन्नप्रवदत्यस्तत्सर्वसमृद्धम्। समवस्रवे भक्तशरणं कारयेत्। बहन्नं हि भवति। दक्षिणाप्रवणे सभां मापयेत्साद्यूता ह भवति। युवानस्तस्यां कितवाः कलहिनः प्रमायुका भवन्ति। यत्र सर्वत आपः प्रस्यन्देरन् सा स्वस्त्यन्यद्यूता च। (आ. गृ. अ. 2 खं. 7)

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां शल्योद्धाराध्यायो द्वितीयः।

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में शल्योद्धार नामक द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ॥ 2॥

अथ दिग्ज्ञानाध्यायः तृतीयः॥ 3॥

एवं स्थलशुद्धिमभिधायेदानीं दिक्शोधनावश्यकत्वमुक्तं वृद्धनारदः-

प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संशोधयेद्दिशः॥ 1॥[1]

प्रासाद इति। प्रासादे देवभूभुजां गृहे, (प्रासादो देवभूभुजामित्यमरः) सदने साधारणभवने, अलिन्दे प्रघाणे (प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठक इत्यमरः), द्वारे कुण्डे, विशेषतो विशेषेण, दिङ्मूढे दिग्ज्ञानरहिते सति, कुशनाशः कुलस्य नाशः, स्यात् तस्मात् (प्रथमं) दिशः संशोधयेत् सम्यग्दिग्ज्ञानं कुर्यात्।

भाषा— वृहन्नारदमत के अनुसार देवालय, राजप्रासाद, हवेली, गृह, बरामदा, द्वार एवं कुण्ड इनके निर्माण के लिए विशेषरूप से दिशा पर ध्यान देना चाहिए, यदि दिङ्मूढ़ या दिशावेध हुआ तो कुल का विनाश जाने। अतएव इनके निर्माण से पूर्व दिशा का सम्यक् साधन कर लेना चाहिए।

विशेष— गृहादि के निर्माण में निम्नाङ्कित वेध हो तो उनका त्यागकर ही कार्य करवाना चाहिए— तलवेध, तालवेध, दृष्टिवेध, तुलावेध, बाधावेध, स्तम्भवेध, मर्मवेध, मार्गवेध, वृक्षवेध, छायावेध, जलस्थानवेध, द्वारवेध, स्वरवेध, कीलवेध, कोणवेध, भ्रमवेध, दीपालयवेध, कूपवेध देवस्थानवेध। इस प्रकार उन्नीस प्रकार के वेध त्याज्य हैं— तलवेधस्तालवेधो दृष्टिवेधस्तथैव च। तुलावेधस्तथा बाधा स्तम्भवेधोऽतिस्फुटः॥ मर्मवेधो मार्गवेधो वृक्षवेधस्तथा पुनः। छायावेधोदकद्वारश्च स्वरवेधस्तथैव च॥ कीलवेध स्तथा कोणा भ्रमवेधस्तथैव च। दीपालयं च कूपवेधश्च देवस्थान परित्यजेत्॥। (उत्तराभेरुनी 2, 8-10)

तथा चाऽपराजितपृच्छायां (52, 2-5) दिग्मूढनिषेधमाह —

चतुरश्रं समं कृत्वा दिग्मूढं परिवर्जयेत्॥

1. मुहूर्तमार्तण्ड मार्तण्डवल्लभटीकायाम (ह. 5) उद्धृत।

भाषा— इष्ट नक्षत्र की संख्या में एक घटाएँ और शेष को 152 से गुणा करें। इष्ट आय की जो संख्या हो उसमें से 1 घटाएँ और 81 से गुणा करें। इसके बाद दोनों गुणनफल के योग में 17 को जोड़ें और 216 का भाग दें। इस प्रकार जो शेष बचेगा, वह इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय से उत्पन्न क्षेत्रफल (पिण्ड) निकल आता है। क्षेत्रफल में लम्बाई का भाग देने पर चौड़ाई ज्ञात होती है जबकि चौड़ाई का क्षेत्रफल में भाग देने पर लम्बाई ज्ञात होती है।

अत्रोदाहरणम् —

यश्च ध्वजाद्यष्टायेषु विषय आय ईप्सितः स्यात् स एवेष्टायः कल्प्यः। ताभ्यां विस्तारायामज्ञानं विधेयम्। यथा— नन्दलालस्यानुराधानक्षयं वर्ततेऽस्य पूर्व-फाल्गुन्या सह मेलापकसम्मतिरत इष्टर्क्ष पूर्वफाल्गुनी कल्पितं तत्संख्या 11 एकोनितेष्टर्क्ष 10 अनेन द्वितिथ्यो 152 हता गुणिता जाताः 1520। इष्टायः हस्ती कल्पितः सप्तमः 7 रूपानित आयः 6 अनेन इन्दुनागा 81 गुणिताः 486 पूर्वाङ्केषु युताः 2006। घनैः 17 अपि युताः 2023 भूपाश्विभिः 216 शेषिताः 79 अयमेव पिण्डः 79 स्वेष्टायनक्षत्रभवः। अथ कल्पितदैर्घ्य 25 भक्तः 5/ 4/ 14 लब्धो विस्तारः। विस्तृतिभक्तो दैर्घ्य 15 सभागच्छेदिति।

तदुक्तं [1]स्वरोदये (पीयूषधारा. 6. 34) —

प्रभुः पण्याङ्गना मित्रं देशो ग्रामः पुरं गृहम्।
एकनाडीस्थिते भव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम्॥ 23॥

प्रभुः इति। इयं चाश्विन्यादित्रिनाडी गुर्वादिष्वप्यनिष्टा प्रभुपण्याङ्गनादौ न शुभैव। प्रभुः स्वामी: पण्य सेवकश्च, अङ्गना नार्यास्तु शेष सुगमम्।

भाषा— स्वरोदयशास्त्र में कहा गया है कि स्वामी-क्रीतदास, स्त्री (पुंश्चली), मित्र, देश, ग्राम, पुर एवं गृह इनके साथ स्वामी के नक्षत्र की एक ही नाड़ी शुभ मानी जाती है।

तथा ज्यौतिस्सागरैप्युक्तम् (मार्तण्डवल्लभा. 6, 11)—

सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि।
परस्परं मित्रयोश्च एकनाडी प्रशस्यते॥ 24॥

एकनाडीति। नाडी एकनाडी अन्यथा योज्या विवाहवत् न योज्येत्यर्थः अत्र एकनाड्येव प्रशस्तेतिभावः।

---

1. 'वृद्धगर्गेण' इति प्रकाशितपाठे। नारायणदैवज्ञस्य मुहूर्तमार्तण्डस्य मार्तण्डवल्लभाटीकायां वृद्धगर्गेति स्वीकृतम्। (मार्तण्डवल्लभा 6. 11)

भाषा— सेव्य एवं सेवक तथा गृह व गृहेश हो, उनकी परस्पर एक नाडी हो तो मित्रभाव होता है और इनमें एक नाडी सदा ही प्रशस्त होती है।

स्पष्टार्थ चक्रम्

		वरनाडी		
	नाडी	आदि	मध्य	अन्त्य
कन्या नाडी	आदि	0	8	8
	मध्य	8	0	8
	अन्त्य	8	8	8

अथ प्रकारान्तरेणोक्तं रत्नमालायाम् (17, 3) —

विस्तार आयामगुणोऽष्टभक्तो यच्छेषमायः स भवेद् ध्वजादिः॥ 25॥

व्याख्या इति- गृहस्य यो विस्तारः यच्च दैर्घ्यं तयोर्घातः क्षेत्रफलं भवति, तदष्टभिर्भक्तमवशिष्टमायः स च ध्वजादिरिति।

विस्तार इति। विस्तारः गृहस्य विस्तारः आयामगुणः आयामेन दैर्घ्येण गुणः, अष्ट भक्तः शेषं यत् तत् ध्वजादिरायो भवेत्।

भाषा— क्षेत्र के विस्तार को दैर्घ्य से गुणा करें और प्राप्त क्षेत्रफल में आठ का भाग दे, इस प्रकार शेष रहने वाली संख्याओं से ध्वजादि आय ज्ञात होते हैं।

अथायनामानि (तत्रैव 17, 2) —

ध्वजो धूमोऽथ सिंहःश्वा सौरभेयः खरो गजः।
उष्ट्रश्चेति क्रमेणैतदायाष्टकमुदाहृतम्॥ 26॥[1]

व्याख्या- क्षेत्रफलं गजशेषितं यदवशिष्टं तत्परिमिता ध्वजादिका आयाः स्युः। ध्वजः प्रथमः प्रसिद्धश्च, द्वितीयो धूमोऽपि प्रसिद्धः, सिंहस्तृतीयः, श्वाकुक्कुरश्चतुर्थः, सौरभेयो वृषः पञ्चमः, खरोगर्दभः षष्ठः, गजो हस्ती सप्तमः उष्ट्रोऽष्टम इति।

भाषा— ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और उष्ट्र (पाठान्तर से ध्वांक्ष)— इन आठ आय को एक से आठ तक क्रमानुसार जानना चाहिए। (इनमें से विषम आय क्रमशः चारों ही वर्णों के लिए श्रेष्ठ कही गई है अर्थात् ध्वजादि आय क्रमशः कीर्ति, शोक, जय, वैर, धन, निर्धनता, सुख व रोग प्रदायक मानी गई हैं)।

विश्वकर्मा ने कहा है— ध्वजः सिंहौ वृषगजौ शस्यन्ते शुभ वेश्मसु॥ अधमानां खरौ ध्वांक्षो धूम्रः श्वानः सुखावहः। कल्याणं कुरुते सिंहो नृपाणां च विशेषतः॥ विप्राणां

---

1. 'ध्वाङ्क्षश्चेति क्रमेणैवमायाष्टकमुदाहृतम्' इति पाठः।

च ध्वजः श्रेष्ठो वैश्यानां वृष उत्तमः। शूद्राणां गज एवोक्तः सर्वकर्मफलप्रदः॥ *(दीपार्णव 1, 12-14)*

गर्ग का कथन है कि ध्वजादि इन आयों का फल क्रमशः 1. कीर्ति, 2. शोक, 3. जय, 4. वैर, 5. धन, 6. निर्धनता, 7. सुख और 8. रोग बताए गए हैं— कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्। रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्॥ *(ज्योतिर्निबन्ध पृ. 169, 13)*

स्पष्टार्थ चक्र

संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8
आयमान	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	उष्ट्र
फल	कीर्ति	शोक	जय	शत्रुता	धन	दरिद्रता	सुख	रोग

अथांशानयनमाह रत्नमालायाम् (17, 6) —

व्ययान्विते क्षेत्रफले गृहस्य ध्रुवादिनामाक्षरमिश्रिते च।
त्रिभिर्विभक्ते क्रमशोंऽशकः स्याद् इन्द्रो यमो भूपतिरन्तकोऽसत्॥ 27॥

व्ययेति। क्षेत्रफले व्ययान्विते व्ययुक्ते विधेये गृहस्य च पुनः ध्रुवादिनामाक्षर मिश्रिते कार्ये। एवं क्षेत्रफलव्ययध्रुवादिनामाक्षराणां योगे त्रिभिविभक्तेऽवशिष्ठानि क्रमश इन्द्रो मघवा, यमोऽन्तकः, भूपतिः राजा, अंशकः अंशस्य स्वामी भवेत्। तत्रान्तकः यमस्यांशोऽसदनिष्टकारक इति।

भाषा— व्यय की संख्या को क्षेत्रफल में जोड़कर ध्रुवादि गृहों के नामाक्षर की संख्या को जोड़ें। उक्त योगफल में तीन का भाग दिए जाने पर एकादि शेष रहे तो क्रम से इन्द्र, यम और भूपति का अंश होता है। उसमें इंद्र व राजा के अंश वाला गृह उत्तम तथा यम के अंश वाला गृह अनुचित होने से त्याज्य है।

अंश ज्ञात करने के लिए विश्वकर्मा ने यह निर्देश दिया है— मूलराशौ व्ययं क्षिप्त्वा गृह नामाक्षराणि च। त्रिभिरेव हरेद्भागं यच्छेषं स्यात्तदंशकः॥ इन्द्रो यमश्च राजा च अंशकास्त्रय एव च। त्रिप्रमाणं त्रिधोक्तं च ज्येष्ठ मध्यम कन्यसम्॥ *(ज्ञानप्रकाशदीपार्णव 1, 75-76)*

उदाहरण — यह कल्पना की जाए कि क्षेत्रफल 400, व्यय 7, ध्रुवादि के अनुसार नाम संख्या 2 हुई। इनका योग करें तो 400 + 7 + 2 = 409 कुल हुआ। इसको यदि 3 से विभाजित करें तो शेष 1 आया। अतएव यह इन्द्र का अंश हुआ। शुभ कार्य में यह एक का अङ्क शुभ माना गया है।

अथ आयवशेन द्वारनिवेशं द्विजादिवर्णपरत्वेन च द्वारनिवेशनं मुहूर्तचिन्तामणौ रामदैवज्ञ आह (12, 5) —

ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः॥ 28॥

व्याख्याः- ध्वजादिकाः सर्वदिशीति। ध्वजाख्ये आये सर्वदिशिदिक् चतुष्टयेऽपि गृहद्वारं कार्यम्। हरौ सिंहाये पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्षु द्वाराणि स्युः, न पश्चिमदिशि। तथा वृषाख्ये प्राच्यां दिश्येव द्वारं कार्यं नान्यदिक्षु। गजाख्ये आये प्राग्यमयोः पूर्वदक्षिणदिशोः गृहद्वारं कार्यम्। यदाह श्रीपतिः — गृहेषु चाया विषमाः प्रशस्ताः स्वस्थानगाः सर्वगतो ध्वजश्च। ध्वजो हरौ तौ च गजे वृषे ते वृषोज्झितान्यत्र समाश्रितं स्यात्॥

भाषा— किस दिशा में आयानुसार द्वार रखें, इस सम्बन्ध में रामदैवज्ञ ने कहा है कि प्रथम ध्वज आय में सभी दिशाओं में द्वार, तृतीय सिंह आय में पूर्व, दक्षिण व उत्तर दिशाओं में; पाँचवीं वृष आय में पश्चिम दिशा में और सातवीं गज आय हो तो पूर्व और दक्षिण दिशा में भवन का मुख्य द्वार रखना उत्तम होता है। इसी प्रकार यदि ब्राह्मणादि वर्णानुसार विचार करें तो ब्राह्मण को 1 ध्वज आय और पश्चिम दिशा में द्वार रखना शुभ होता है। क्षत्रिय को 3 सिंह आय और उत्तर में द्वार, वैश्य को 5 वृष आय और पूर्व दिशा में द्वार तथा शूद्र को 7 गज आय तथा दक्षिण दिशा में द्वार बनाना प्रशस्त होता है।

आय सम्बन्धात् स्पष्टार्थ द्वारचक्रम् —

आय	ध्वज	सिंह	वृष	गज
द्वारदिशा	सब दिशा	पूर्व दक्षिण उत्तर	पश्चिम	पूर्व दक्षिण

वर्ण सम्बन्धात् स्पष्टार्थ द्वारचक्रम्—

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
आय	ध्वज	सिंह	वृष	गज
द्वारदिशा	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण

आयानां प्रयोजनमाह (विश्वकर्माप्रकाश 2, 52-61, पीयूषधारा. 12, 5) —

स्वस्वस्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथा वृषः।
ध्वजः सर्वगतो देयो वृषं नान्यत्र दापयेत्॥ 29॥
वृषसिंहौ गजश्चैव कुण्डे कर्पटकोटयोः।
द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापी-कूप-सरःसु च॥ 30॥
मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु गजं पुनः।

वृषं भोजनपात्रेषु क्षत्रादिषु पुनर्ध्वजम्॥ 31॥
अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहवह्न्युपजीविनाम्।
धूमं नियोजयेत् केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु॥ 32॥
खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वाङ्क्षश्चापि कुटीषु च।
वृष-सिंहा-ध्वजश्चापि प्रासाद-पुर-वेश्मसु॥ 33॥
गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्।
अश्वालयं ध्वजाये वा खराये वृषभेऽपि वा॥ 34॥
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृषध्वजे।
पशुसद्म वृषाये वा ध्वजाये वा शुभप्रदम्॥ 35॥
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।
अन्यत्रच्छत्रवस्त्राणि वृषाये वा ध्वजेऽपि वा॥ 36॥
पादुकोपानहौ कार्यौ सिंहाख्येप्यथवा ध्वजे।
उक्तानामप्यनुक्तानां सर्वेषां च ध्वजः शुभः॥ 37॥

भाषा— अपने-अपने स्थान पर समस्त आय हालांकि श्रेष्ठ होते हैं तथापि ध्वज, गज, सिंह एवं वृषाय विशेषतः श्रेष्ठ कहे गए हैं। ध्वजाय को सर्वत्र दिया जा सकता है किन्तु वृषाय को अन्यत्र नहीं दे तथापि वृष, सिंह, गजाय को पुट, कर्पट एवं कोट में दिया जा सकता है। गजाय को बावड़ी, कूप एवं जलाशय के लिए दिया जाए। अग्नि सम्बन्धी समस्त कार्यों के करने वालों एवं अग्नि से आजीविका चलाने के लिए (एरण, धौंकनी-भस्त्रिका, हथौड़ा आदि के निर्माण में) धूमाय दिया जाना शुभ है। म्लेच्छादि जातियों के लिए धूमाय, वेश्या के लिए खराय एवं कुटिया आदि में पुनः, इसी प्रकार प्रासाद, ग्राम-पुर, गृह से वृष, सिंह एवं गजाय श्रेष्ठ कहे गए हैं। गजशाला के निर्माण में गजाय एवं ध्वजाय दे, अश्वशाला के लिए ध्वज, वृष एवं खराय दें। ऊँट के लिए गृह बनाना हो तो गज, वृष एवं ध्वजाय दें। अन्य पशुगृह हो तो वृषाय एवं ध्वजाय दें। शय्याय में वृषाय, पीठ-बाजोट-आसनादि में सिंहाय श्रेष्ठ है। अन्यत्र छत्र, वस्त्र के लिए वृषाय एवं ध्वजाय दे तथा पादुका-उपानह में सिंहाय एवं ध्वजाय का प्रमाण श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त जो यहाँ नहीं कहा गया हैं, उनके लिए ध्वजाय को शुभ जानना चाहिए।

अथ ब्राह्मणदिवर्णविभागेन द्वारनिवेशनमाह— अथवेति। द्विजादितो ब्राह्मणादि-वर्णविभागेन पश्चादुदक्पूर्वयमे— यथा, ब्राह्मणस्य पश्चान्मुखं द्वारं, क्षत्रियस्योदङ्मुखम्, वैश्यस्य पूर्वमुखम्। शूद्रस्य दक्षिणमुखमित्यर्थः।

अर्थात्— यह ज्ञातव्य है कि ब्राह्मादि वर्णों को क्रमशः पश्चिम, उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण मुख का द्वार अपने-अपने भवन जानने चाहिए। यथा ब्राह्मण को पश्चिमाभिमुख,

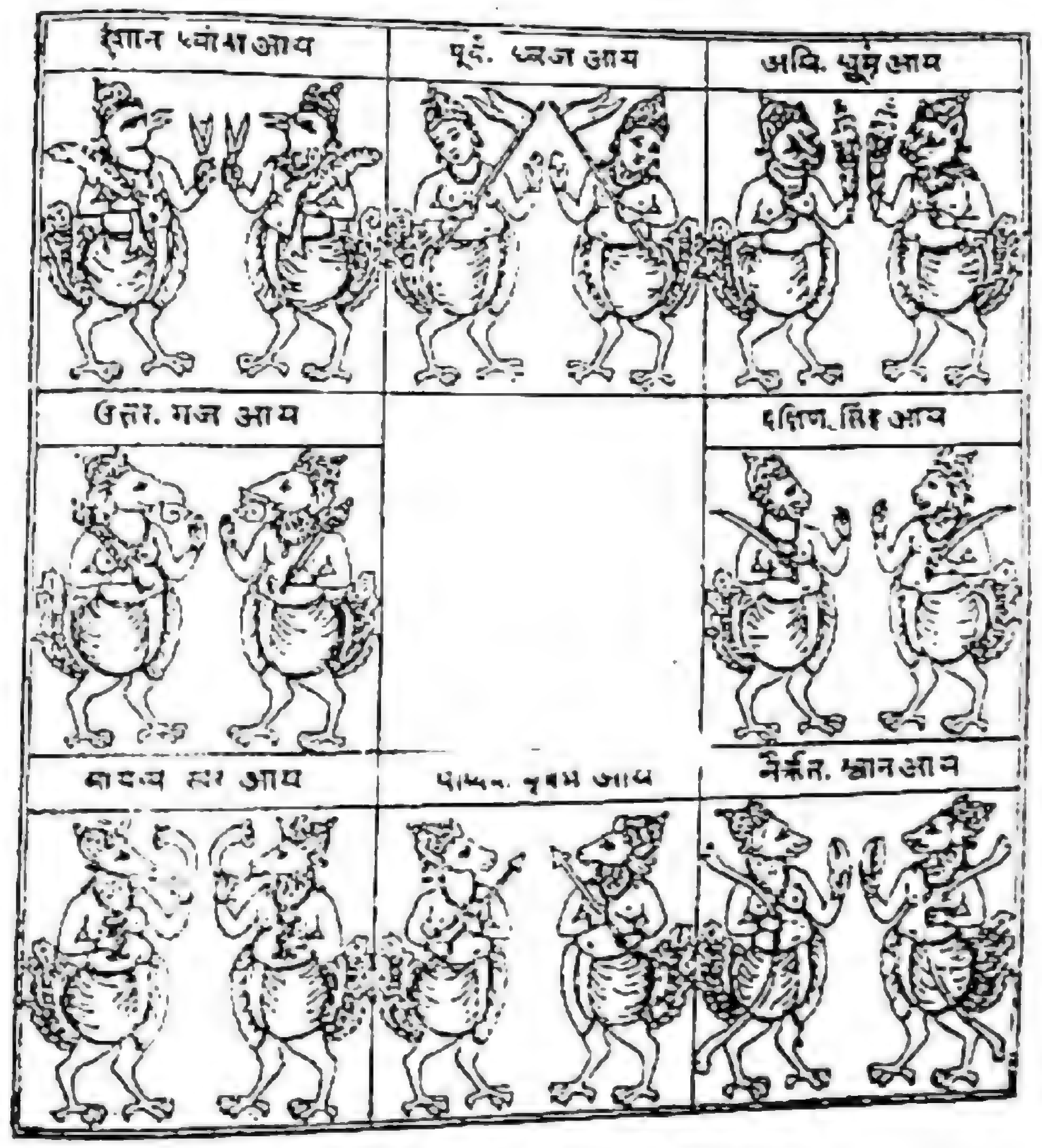

दिशानुसार आयों की स्थिति और उनका स्वरूप

क्षत्रिय को उत्तराभिमुख, वैश्य को पूर्वाभिमुख एवं चतुर्थवर्ण को दक्षिणाभिमुख द्वार रखना शुभ होता है।

तत्र श्रीपतिरप्याह (महादेवटीकायां 12, 4-5; पीयूषधारा. 12, 5) —

ध्वजे प्रतीचीमुखमग्रजानामुदङ्मुखं भूमिभृताञ्च सिंहे।
विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति॥ 38॥

भाषा— ब्राह्मण वर्ण के लिए ध्वजाय में पश्चिमाभिमुख द्वार हो, क्षत्रियों के लिए सिंहाय में उत्तराभिमुख, वैश्यों के लिए वृषाय में पूर्वाभिमुख एवं शूद्रों के लिए गजाय में दक्षिणमुखी द्वार करना शुभद होता है।

अथैवमेवोक्तं वास्तुप्रदीपे (ज्योतिर्निबन्ध पृ. 168, 5-8) —

खेट-कर्पट-कोटेषु वृषः सिंहो गजः शुभः।
वापी-कूप-तडागादौ गजो देयो विचक्षणैः॥ 39॥
आसने योजयेत् सिंहं शयने चैव कुञ्जरम्।
वृषं भोजनपात्रेषु दद्याच्छत्रादिषु (छालादिषु ?) ध्वजम्॥ 40॥
महानसेऽग्निशालायां गृहे वाग्न्युपजीविनाम्।
धूमं दद्यात्तथा श्वानं यवनान्त्यजयोर्गृहे॥ 41॥
खरो वेश्यागृहे योज्यो ध्वांक्षः पक्षिपतेर्गृहे।
वृषं सिंहं गजे दद्यात्प्रासादे सुर(! पुर)मन्दिरे॥ 42॥

भाषा— (वास्तुप्रदीपकार वासुदेव दैवज्ञ का मत है कि) ग्राम्य बस्तियों में खेटक, कर्पट और कोट के निवेश में वृषाय, सिंहाय एवं गजाय शुभ है। बावड़ी, कूप, तड़ाग आदि के लिए ज्ञानियों को गजाय का प्रयोग करना समीचीन है। यदि आसन, कुर्सी आदि का निर्माण करना हो तो सिंहाय एवं शय्यार्थ पर्यङ्क आदि बनाना हो तो गजाय ग्रहण करे। भोजन पात्रों के निर्माण में वृषाय एवं छत्रादि (पाठान्तर से शालादि) में ध्वजाय शुभ है। भोजनशाला, अग्निशाला, अग्निजीवियों के गृह एवं अग्निकर्माधारित जीवनयापन करने वालों के लिए धूमाय तथा यवन, अन्त्यजों के गृहों के लिए श्वानाय ग्रहण करे। वेश्या गृह में खराय योजित करे एवं पक्षीशाला[1] या बाजखाने में ध्वांक्षाय दें और प्रासाद, पुर एवं मन्दिर (पाठान्तर से सुरमन्दिर) में वृष, सिंह एवं गजायों को ग्रहण करना चाहिए।

---

1. 'श्येनशास्त्र' में विभिन्न प्रकार के बाजों के प्रशिक्षण एवं पालन के लिए बाजखाने बनाने का वर्णन मिलता है। द्रष्टव्य— गजशास्त्रसार बाजनामा, पक्षीलक्षण आणि चिकित्सा व चित्ता वहागास चिकित्सा यूज नामा (सम्पादक एवं अनुवादक : राजेश्री ए. कृष्ण स्वामी महाडिक् राव, तंजौर सरस्वती महल, 1952) इसी प्रकार भूलोकमल्ल सोमेश्वर ने अभिलषितार्थचिन्तामणि या मानसोल्लास में भी पक्षीविनोद के अन्तर्गत श्येनविनोद का अच्छा वर्णन किया है। (मानसोल्लास : सम्पादक : एस.जी. गोण्डेकर एवं अनुवादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो. बी. एल. शर्मा, प्रकाशनाधीन)

अथ केषुकेष्वायादिकं न भाव्यमित्युक्तं दैवज्ञवल्लभे (तत्रैव पृ. 170, 50) —

अलिन्दनाव्यूहविनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय।
आयादिकं तेषु न चिन्तनीयं यतो न ते वास्तुपरिग्रहे स्युः॥ 43॥

अलिन्देति। अलिन्दं अलिन्दशब्देन शालाभिधीयते। ब्राह्मे यागे मणिका जालक वृत्ताङ्गणसम्मुखा क्रियते सा ज्ञेयेत्युत्पलः। प्रतिशालाख्यमिति महादेवः। 'प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठे' इत्यमरः। तत्रैव विश्वकर्मा प्रकाशे— केचिदलिन्दकं द्वारं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ केचिदलिन्दं शालां च केचिच्चालिन्दकं च तत्। गृहबाह्यस्थिताः काष्ठा गृहमत्यन्तनिर्गताः॥ काष्ठा काष्ठस्य यद्गेहं तद्वा चालिन्द सञ्ज्ञकम्। गृहाद् बहिश्च य काष्ठा गृहस्यान्तर्गताश्च ये॥ तेषां कोष्ठकृतं तिर्यग्गेहश्चालिन्द संज्ञकम्। स्तम्भहीनं गृहाद् बाह्या निर्गतं काष्ठनिर्मितम्॥ मध्यादूर्ध्वगतं गेहं तच्चालिन्द सञ्ज्ञकम्॥ *(2, 109-113)* निर्व्यूहः नेजूतिः च, विनिर्गमः मार्गेतिः च, तस्य अलङ्करणावसरे तथद्या वास्तुपरिग्रहकाले आयादि न विचारणीयम् इत्यर्थः।

भाषा— भवन के चारों ही दिशाओं में अलिन्द, निर्व्यूह, विनिर्गम आदि सहित जो भी अलङ्करण किया जाता है एवं उनके निर्माणार्थ परिग्रहावसर पर आयादि का विचार नहीं किया जाना चाहिए।

तथा च चिन्तामणौ (मार्तण्डवल्लभा. तत्रैव) —

यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्।
न तत्र चिन्तयेद्विद्वान् गुणानायव्ययादिकान्॥ 44॥

भाषा— (ज्योतिष चिन्तामणि में कहा है कि) यदि भवन या अन्य किसी निर्मिति का विस्तार 32 हाथ से अधिक हो, उसके लिए विद्वानों को आय-व्ययादि की गणना का विचार नहीं करना चाहिए।

तथा च राजमार्तण्डे[1] —

आयव्ययौ मासशुद्धिं चिन्तयेन्न महा(?तृणा) लये॥ 45॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् गृहादीनां मध्ये द्वात्रिंशद्धस्ततो दैर्घ्यं अधिकं तत्र विद्वान् आयव्ययादिकान् गुणान् न चिन्तयेत्। तथा महालये आयव्ययौ मासशुद्धिं च न चिन्तयेत्।

भाषा— घास-पूस की झोंपड़ी (पाठान्तर से महालय) के प्रसङ्ग में आय-व्यय एवं मासादि की शुद्धि अपेक्षित नहीं है।

---

1. 'निषिद्धेपि हि काले तु सानुकूले शुभे दिने। तृणवस्त्रगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते॥' इति राजमार्तण्डे पाठः (843) तथा च विश्वकर्माप्रकाशे (2, 25-26)। तथा च निर्णयसिन्धौ— आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत्। शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारे पुरातने॥ अर्थात्- यदि निषिद्ध काल भी हो तो शुभ दिन को अनुकूल हो जानकर कार्यारम्भ करें और तृण, वस्त्र के गृह या तम्बू आदि में मास दोष पर विचार नहीं करना चाहिए। (निर्णय 7.6)

एवं राजमार्तण्डेऽप्याह[1] —

एकादशयवादूर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्॥ 46॥

एकादशेति। एकादशयवात् ऊर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि गृहं यावत् स्यात् तावत् आयादिङं चिन्त्यं विचार्य्यम। तदूर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्।

भाषा— (प्रसिद्ध उक्ति है कि) ग्यारह यव प्रमाण से लेकर यदि 32 हाथ तक भवनादि की निर्मिति का प्रसङ्ग हो तो आयादि पर विचार करना चाहिए, इससे अधिक होने पर विचार अपेक्षित नहीं।

अत्र च्यवनो विशेष आह-

आयव्ययौ भूशुद्धिं च तृणगेहे न कारयेत्।
शिलान्यासादि न कुर्यात्तथागारे पुरातने॥ 47॥

आयेति। सुगमम्। तद्यथा— आयव्ययौ मासशुद्धि न जीर्णे चिन्तयेद् गृहे। शिलान्यासं प्रकुर्वीत मध्ये तस्य विशेषतः॥ *(विश्वकर्माप्रकाश 2, 93)*

भाषा— यदि घास से गृह, झोंपड़पट्टी बनानी हो तो भूशुद्धि एवं आय-व्यय शोधन नहीं करना चाहिए। वहाँ शिलान्यास भी आवश्यक नहीं होता। पुरातन गृह हो और उसमें कार्य करवाना हो तो वहाँ शिलान्यास आवश्यक नहीं माना जाता है।

विशेष — आयादि की गणना अनेकत्र आई है। आयादि निकालने की विधि बहुत महत्वपूर्ण है। यह वास्तु को पू[illegible] तरह गणितीय प्रतिपादित करने का उपक्रम है। इस बहाने ज्योतिष भी वास्तु से सम्पृक्त होता है। मयमतम्, मानसार, समराङ्गणसूत्रधार सहित अपराजितपृच्छा में भी आय, व्यय आदि पर विचार हुआ है। अपराजितपृच्छा के सूत्र 64 से 66 तक आयादि पर विचार हुआ है। क्षीरार्णव ग्रन्थ में आयादि के 21 अङ्गों पर विचार किया गया है। सूत्रधार मण्डन कृत 'आयतत्त्वं' ग्रन्थ की टीका करते हुए मैंने आयादि सूत्रों पर गम्भीरता से विचार किया है। मयमत में तीन बार आयादि गणित पर विचार हुआ है।

मानसारम् में कहा गया है— परिणाहे पदे वाऽपि चायादिशुद्धि च कारयेत्। केचित्त्वायतने चैवमायं च तद्दिने भवेत्॥ परिणाहे तिथिर्वारं व्यययोनिश्च विस्तरे। वसुभिर्गुणितं भानु (भि) र्हान्यायमष्टशिष्टकम्॥ अष्टाभिर्वर्धिते ऋक्षं हत्वा शेषं क्षपिष्यते। नवभिर्वधेयेत्पः हत्वा तच्छेषं वारमेव च॥ नवभिर्गुणिते त्रिंशता क्षपेच्छेषं तिथिर्भवेत्। एवमायादि षड्वर्ग कुर्यात्तत्र विचक्षणः॥ आयं सर्वहरं पुण्यं व्ययं सर्वगतेन हि। आयाधिक्यं व्ययं हीनं

---

1. प्रकारान्तरेण— '[illegible]॥' (विश्वकर्माप्रकाश 2. 92)

सर्वसम्पत्करं तथा॥ आयहानिरव्ययाधिक्यं सर्वदोषकर भवेत्। *(मान. 9, 33-39)* यहाँ प्रसङ्गानुकूल होने से मयमत् (9, 18-24) के श्लोक उद्धृत हैं, यह बहुत पुरानी गणित है—

आयादिसम्पदर्थं वृद्धि हानिं च यष्टिभिः कुर्यात्॥

भूमि के लिए जो भी प्रमाण दण्ड सम्मत लिया गया हो, उसमें (यदि विसङ्गति हो तो) कुछ दण्ड प्रमाण को जोड़ दें या घटाए जा सकते हैं किन्तु शुभ आय ही ली जानी चाहिए ताकि सम्पतिकारक सिद्ध हों।

आयव्ययर्क्षयोन्यायुभिरथ तिथिभिश्च वारैश्च।

यजमानवस्तुनामजन्मर्क्षेणाविरोधिकं यत्तु॥

(भूमापन इस प्रकार से किया जाना श्रेयस्कर है कि) आय, व्यय, नक्षत्र, योनि, आयु, तिथि और वार— ये सात अङ्ग कभी प्रतिकूल नहीं होने चाहिए। इनकी तुलना गृहपति के नाम और वास्तुस्थल के नाम और नक्षत्र से करनी उचित हैं क्योंकि इनका विपरीत होना उचित नहीं माना जाता।

तन्मानेन समेतं गृह्णीयात् सर्वसम्पत्तयै।

व्यासायामसमूहे वसु$_8$ निधि$_9$ गुणिते दिनेश$_{12}$ धर्म$_{10}$ हृते॥

(किसी क्षेत्र की समस्त) लम्बाई और चौड़ाई को ग्रहण करते हुए दोनों का योग करें। प्राप्त संख्या को यदि आठ से गुणा करने के बाद प्राप्त संख्या में यदि बारह का भाग दिया जाए तो शेष रहने वाली संख्या को 'आय' जानना चाहिए। इसी प्रकार यदि लम्बाई, चौड़ाई को जोड़कर नौ से गुणा करें और प्राप्त फल में दस का भाग दिया जाए तो शेष रहने वाली संख्या को 'व्यय' समझना चाहिए। ग्रन्थकार ने ध्वजादि को योनि की संज्ञा दी है, यथा—

आयव्ययमवशिष्टं राम$_3$ घ्नेऽष्टा$_8$ पहृच्छेषम्।

ध्वजधूमसिंहश्वावृषखरगजकाकाश्च योनिगणाः॥

अष्टौ योनय उदिता ध्वजहरिवृषहस्तिनः शुभदाः।

यदि लम्बाई और चौड़ाई के योग को तीन से गुणा करने के बाद प्राप्त राशि में आठ का भाग दिया जाए तो शेष एक से आठ तक की संख्या को 'योनि' जानना चाहिए। योनियाँ आठ हैं— 1. ध्वज या केतु, 2. धूम, 3. सिंह, 4. श्वान, 5. वृष, 6. खर, 7. गज और 8. काक या ध्वांक्ष। इन आठ योनियों में से ध्वज, सिंह, वृष और गज योनि सदा शुभ जाननी चाहिए।

पुनरपि वसु$_8$भिर्गुणिते त्रिनव$_{27}$हत्या फलं वयः शिष्टम्॥
नक्षत्रं परिणाहे त्रिंशद्घ्याते$_{30}$ तिथिर्यमीशहते।
वारं सूर्यमुखं स्याद् बुद्धैवं सर्ववस्तु करणीयम्॥

पुनः यदि लम्बाई तथा चौड़ाई के योग को आठ से गुणा करें और सत्ताईस से विभाजित करें तो 'वय' (बाल, कुमार, युवा, वृद्ध व मरण) ज्ञात होती है जबकि अधिशेष रहने वाली संख्या से (1 से 27 तक) 'नक्षत्र' का ज्ञान किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि लम्बाई और चौड़ाई का योग कर उनको आठ से गुणा करें और तीस से विभाजित किया जाए तो शेष संख्या को 'तिथि' जानना चाहिए। कुल परिधि को आठ से गुणा करने के बाद सात से भाग दें तो शेष (1 से 7 तक) 'वार' जानना चाहिए। पहली संख्या से रविवार जानना चाहिए। इस प्रकार ज्ञानियों को आयादि का ज्ञान करने के बाद ही समस्त कार्यों को करना चाहिए।

आयाधिकमथ सुखदं व्ययमधिकं सर्वनाशं स्यात्।
विपरीते तु विपत्त्यै तस्मात् सम्यक् परीक्ष्य कर्तव्यम्॥ इति।

(वास्तु-प्रसङ्ग में यदि) आय यदि व्यय से अधिक होगी तो वह सुखद होगी और व्यय यदि आय से अधिक हो तो सर्वनाशकारी समझें। इस प्रकार विपरीत गुण होने पर विपत्ति मिलती है। अतएव इनकी सम्यक् परीक्षा करनी चाहिए।

अथ गृहारम्भे विशेषमाह रामदैवज्ञः (मुहूर्तचिन्तामणि 12, 6) —

गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे पुरः स्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात्॥ 48॥

व्याख्याः — अथ गृहारम्भं विशिष्य कालनिषेधमुपजात्याह- गृहेशेति। अर्कन्द्वीज्यशुक्रे विबले निर्बले, अस्ते अस्तङ्गते, नीचे नीचराशि-गते सति गृहेशतत्स्त्रीसुख-वित्तनाशो भवति। यथा सूर्ये निर्बले नीचस्थिते गृहेशस्य नाशः। इन्दौ चन्द्रे निर्बले अस्तमिते नीचगते वा तदा गृहेशस्य स्त्रीनाशः। गुरौ ईज्ये निर्बलेऽस्तगे नीचेगते वा गृहेशस्य सुखनाशः। शुक्रे निर्बलेऽस्तगे नीचेगे वा वित्तनाशः।

भाषा— वास्तुकार्य के आरम्भ पर गृहस्वामी की जन्मराशि से गोचरोक्त विचार से (अ.) यदि सूर्य निर्बल हो (शत्रुराशि का हो अथवा 4, 8, 12 हो) और नीचराशि (तुला) का हो तो गृह स्वामी के विनाश की आशङ्का रहती है। (ब.) चन्द्रमा निर्बल, अस्त, नीचराशि (वृश्चिक) का हो तो भार्या का विनाश होता है। अनुराधा का चन्द्रमा नीच दोष से मुक्त माना जाता है। (स.) बृहस्पति निर्बल, अस्त, अपनी नीचराशि (मकर) का हो तो स्वामी के पुत्र के लिए घातक होता है। (द.) शुक्र निर्बल, अस्त, नीचराशि (कन्या) का हो तो धन-सम्पदा का विनाश जानना चाहिए। इसलिए गेहारम्भ

काल में सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति और शुक्र का बलि होना, उदयी रहना, उच्च में अथवा उच्च राशि के समीप में रहना आवश्यक है। गृहारम्भ काल के चन्द्रमा और वास्तु का नक्षत्र गृहद्वार के आगे पड़े तो उस घर में गृह स्वामी का निवास नहीं होता और तस्करों का भय भी रहता है।

अत्र वसिष्ठ आह (वशिष्ठसंहिता 39, 31) —

नीचे शत्रुगते जीवे शुक्रे चन्द्रेऽथवा रवौ।
निमितं सदनं शश्वदति[1] निःस्वत्वमाप्नुयात्॥ 49॥

अनेनैवाशयेन ज्योतिष्प्रकाशे (पीयूषधारा. 12, 6) —

अस्तदोषोऽत्र न ग्राह्यः प्रातिदैवतिको बुधैः।
नास्तिदोषः सदा चन्द्रे न[2] मैत्रेऽब्जस्य नीचता॥ 50॥

कर्तुरिति। यन्नक्षत्रे दिनचन्द्रस्तद्विधुभम्। यद् गृहस्य विस्तारायामवशादुत्पन्नभं तद्गृहभं तस्मिन् पुरः स्थिते सम्मुखस्थिते सतिकर्तुर्गृहनिर्माणकर्तुस्तद्गेहे स्थितिर्निवासो न स्यात्। पृष्ठगते वा विधुवास्तुनोर्भे सति खनिः खनन चौरकृतापद्वारं तद्गृहस्वामिनो स्वहानिः स्यादित्यर्थः।

पुरः पृष्ठस्थितत्वं च दिग्द्वारभे क्रमेण। यथा गृहद्वारं यस्यां दिशि विधीयते तद्दिग्नक्षत्रे च गृहारम्भो न कार्यः। वामदक्षिणनक्षत्रेषु गृहारम्भः सुखेन कार्यः। अत्रास्तगतत्वं किं क्षितिजसन्निधिकृतमुत सूर्यकृतं वा विवक्षितम्। अन्यथा [illegible]। अथ तत्र विशेषणानर्थक्यम्।

भाषा— यदि ग्रहारम्भ अवसर पर नीच राशि में बृहस्पति, शुक्र, बुध अथवा सूर्य (पाठान्तर से चन्द्रमा भी) विद्यमान हो तो इस योग में उस भवन का स्वामी निर्धन हो जाता है। ज्योतिषप्रकाश में आया है कि बुद्धिमान् व्यक्ति को प्रतिदिन सूर्य के अस्त होने में दोष नहीं देखना चाहिए। चन्द्रमा का अस्त दोष नहीं होता और अनुराधा नक्षत्र में चन्द्रमा का नीचदोष नहीं होता है।

यदुक्तं ब्रह्मशम्भुना सप्तशलाका चक्रमाह (पीयूषधारा. तत्रैव) —

गृहायलब्धनक्षेच यन्नक्षत्रे च चन्द्रमाः।
शलाकासप्तके ध्येयं कृत्तिकादिक्रमेण च॥ 51॥
वाम-दक्षिणभागे ता प्रशस्तं शान्तिकारिकम्।
अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः॥ 52॥
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते॥ 53॥

---

1. 'शशाङ्के वा कृतं गेहमति' इति पाठः। [illegible] 12, 6
2. 'अस्तदोषः सदा भानोर्न' इति पाठः। [illegible]

अत्रायमाशयः, कृत्तिकादिसप्तनक्षत्रे चन्द्रेषु अनुराधादिसप्तसु वा गृहनक्षत्रे चन्द्रनक्षत्रे सति पूर्वद्वारं पश्चिमद्वारं वा न कार्यम्। तत्र चन्द्रः पृष्ठस्थितोऽग्रस्थितो वा भवति। एवं मघादिसप्तसु धनिष्ठादिसप्तसु वा गृहनक्षत्रे चन्द्रनक्षत्रे वा सति दक्षिणद्वारमुत्तरद्वारं वा न कार्यमित्यर्थः। गृहारम्भो वामदक्षिणगे चन्द्रे ब्रह्मशम्भुः— भानावपि तथैव स्यादधिकं च तदन्तरे। धनलाभो मतिर्व्याधिरविनाशनो विलोमतः। इति, तदनन्ते विदिक्षु। विलोमतः दिग्द्वारनक्षत्रवशेन चन्द्रफलं वास्तुनक्षत्रफलं च—ईशानवायव्यनैर्ऋत्याग्नेयदिक्षु क्रमेण धनलाभो करणं व्याधिः रविनाशः फलं स्यादित्यर्थः। इदं दिग्द्वारनक्षत्रवशेन चन्द्रफलं तुल्यन्यायत्वाद्वास्तुनक्षत्रेऽपि ध्येयम्। तथा च फलमाह विश्वकर्मा:— कृत्तिकाद्यं सप्तपूर्वे मघाद्यं सप्त दक्षिणे। मैत्राद्यं पश्चिमे सपत धनिष्ठाद्यं तथोत्तरे॥ अग्रे चन्द्रे स्वामिभयं कर्मकर्ता च पृष्ठके। दक्षिणे च धनं दद्युर्वामे स्त्रीसुखसम्पदः॥ *(विश्वकर्माप्रकाश 2, 114-115)*

भाषा— क्षेत्रफलगत नक्षत्र एवं चन्द्र नक्षत्र अगर सप्तशलाका चक्र में दाहिने एवं वाम भाग में पड़े तो शुभद होते हैं परन्तु सम्मुख एवं पृष्ठभाग में पड़ना अप्रशस्त होता है। (सात आड़ी एवं सात ही खड़ी रेखाएँ खींचे एवं चारों ही दिशाओं का न्यास करने से बने सप्तशालाका चक्र में ईशान कोण से) कृत्तिकादि सात-सात नक्षत्रों को (साभिजित्) स्थापित करे। इसमें वास्तु नक्षत्र एवं गृहारम्भ का चन्द्र नक्षत्र यदि आगे एवं पीछे पड़े अर्थात् एक पूर्व में एवं दूसरा पश्चिम में स्थित नक्षत्रों में हो तो गृहारम्भ अशुभ एवं यदि उत्तर या दक्षिण के नक्षत्रों में पड़ते हों तो शुभकारक जाने।

अथात्र भृगुराह —

चक्रे सप्तशालाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत्।
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम्॥ 54॥

चक्र इति। सप्तशलाकाख्ये सप्तशलाकानामके चक्रे कृत्तिकादीनि- कृत्तिकादि-अष्टाविंशतिनक्षत्राणि विन्यसेत्। तत्र चन्द्रस्य वास्तोश्च ऋक्षं नक्षत्रं पुरः पृष्ठे अग्रे पृष्ठे च यदि भवेत्तदा नो शुभम्। तथा च विश्वकर्माह— गृहोलब्धे ऋक्षेषु यत्र ऋक्षेषु चन्द्रमाः। शलाका सप्तके देयं कृत्तिकादिक्रमेण च॥ ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते। लग्नादृक्षाद्विचार्योऽसौ चन्द्रः सद्यः फलप्रदः। गृहश्चन्द्रे सम्मुखस्थे पृष्ठस्थे न शुभं गृहम्। वामदक्षिणगश्चन्द्रः प्रशस्तो वास्तुकर्मणि॥ *(विश्वकर्माप्रकाश 2, 116-118)*

भाषा— (पुनः भृगु के मत से कहा जा रहा है) सप्तशालाका चक्र में अभिजित् सहित कृत्तिकादि नक्षत्रों का ईशान कोण से न्यास करने। उसमें यदि चन्द्रमा एवं वास्तु के नक्षत्र परस्पर आगे-पीछे हों तो अशुभ किन्तु पार्श्व में पड़े तो प्रशस्त समझना चाहिए।

सप्तशलाका चक्रम्—

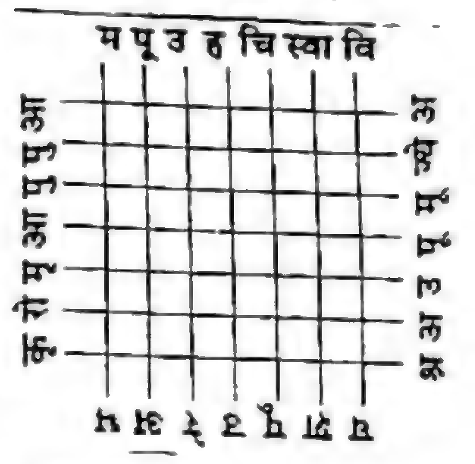

तथाऽत्र श्रीपतिरप्याह (रत्नमाला 17,11) —

क्षपाकरे नैव गृहं पुरःस्थे कुर्याद् वसेत् तत्र न जातु कर्ता।
पतन्ति खन्यानि च पृष्ठसंस्थे यत्नेन तस्मादिदमत्र चिन्त्यम्॥ 55॥

व्याख्या- अत्र पुरः स्थितत्वं लग्नवशात्के चिद्व्याचक्षते। यथा प्राङ्मुखे गृहे कर्तव्ये लग्ने चन्द्रः पुरःस्थितो भवति। दक्षिणमुखे वामगः, पश्चिममुखे पृष्ठगः, उत्तरमुखे तु दक्षिणगः। एवं दशमस्थ चन्द्रो दक्षिणमुखे गृहे सम्मुखः, एवं सर्वास्वपि दिक्षु पृष्ठगतत्वं सम्मुखगतत्वं च ध्येयम्। तत्रार्थाद्दक्षिणवामगतस्य चन्द्रस्य समीचीनं फलमित्यभिप्रायः।

क्षपाकर इति। क्षपाकरे क्षपां रात्रिं करोतीति क्षपाकरश्चन्द्रस्तस्मिन् पुरःस्थे सम्मुखस्थे सति गृहे भवननिर्माणं नैव कुर्यात्। सति कृते जातु कदाचिदपि कर्ता गृहकर्ता तत्र भवने न वसेत्। अथ पृष्ठस्थे चन्द्रे गृहे कृते सतिखन्यानि चौरकृतछिद्राणि पतन्ति भवन्ति। तस्मात्कारणादिदं, अत्र भवननिर्माणावसरे, यत्नेन प्रयासेन चिन्त्यं विचारणीयम्।

भाषा— गृह निर्माण के समय यह विचारणीय है कि यदि चन्द्रमा सम्मुख हो तो निर्माण होने पर भी गृहनिर्माता वहाँ पर नहीं बस पाता है। चन्द्रमा पीठ पर स्थित हो तो और गृह निर्माण किया जाए तो गृहकर्ता को चोर-तस्करों का भय होता है।

विशेष — यह ज्ञातव्य है कि पूर्वद्वार वाले गृह में लग्नस्थ चन्द्रमा सम्मुख पश्चिमद्वार का पृष्ठस्थ एवं पश्चिममुखद्वार के लिए सप्तमस्थ सम्मुख और पूर्वमुखद्वार के लिए पृष्ठस्थ होगा। इसी तरह उत्तर-दक्षिण के लिए चतुर्थ व दशमस्थ चन्द्रमा सामने व पीछे होगा, चक्रानुसार दिग्द्वारम्भ नक्षत्र से सम्मुखादि का ज्ञान किया जाना चाहिए। सम्मुखस्थ गृहद्वार के चन्द्र में गृहारम्भ से उद्वास और पृष्ठ चन्द्रमा हो तो चोर-तस्कर का भय होता है।

अथ व्ययकथनपुरःसरं सफलमंशकानाह रामदैवज्ञः (मुहूर्त. 12, 7) —

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् स पिण्डः।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोन्तकोऽत्र॥ 56॥

व्याख्या- प्रागुक्तदिशा कल्पितं यद्गृहभं तत्रागैरष्टभिस्तष्टम वशिष्टं व्यय ईरितः। यथा रोहिणीभं 4, अयमेव व्ययः। असौ व्ययः ध्रुवादिनामाक्षरयुक्। ध्रुवादिनामानि अधुनैव वक्ष्यति। यानि दिक्षद्वाराणि चिकीर्षितानि तदनुरोधेन यदागतं ध्रुवादिनाम तदक्षरसङ्ख्यया युक्तः। ततः सपिण्डः प्रागानीतपिण्डयुक्तः गुणैस्त्रिभिस्तष्टो भक्तोऽवशिष्टः एक-द्वि-त्रिशेषेण इन्द्रयमराजसञ्ज्ञकास्त्रयोशाः स्युः। अत्र गृहारम्भेऽन्तको यमाख्यो न शुभः। अर्थादिन्द्रराजानौ शुभफलदौ।

भंनागतष्टमिति। भंनागतष्टं अष्टभिर्भक्तं व्यय ईरितः कथितः। असौ व्ययः ध्रुवादिनामाक्षरयुक् कार्यः स पिण्डो भवेत्। स पिण्डः गुणैस्त्रिभिस्तष्टस्तदा इन्द्रकृतान्तभूपाः अंशो भवेयुः। अत्र त्रयाणां मध्ये अन्तकः न शुभः न शुभफलदायको भवेत्।

भाषा— गृह की नक्षत्र संख्या में 8 का भाग दिया जाए तो जो शेष होगा, वह व्यय कहलाता है। इस व्यय में ध्रुव, धान्यादि गृह के नाम के अक्षरों की संख्या के जोड़ से पिण्ड होता है। उसमें यदि 3 का भाग दिया जाए तो शेष 1, 2 एवं 0 रहे तो क्रमशः इन्द्र, यम एवं राज के अंश होते हैं। इनमें से यमांश को शुभ नहीं माना जाता जबकि इन्द्रांश एवं राजांश के भवन शुभ होते हैं।

अथ शालाध्रुवाद्यानयनमाह रामदैवज्ञः (तत्रैव 12, 8) —

दिक्षु पूर्वादितः शालाध्रुवा भूद्वौ कृता गजाः।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम्॥ 57॥

दिक्ष्विति। प्राच्यां द्वारे चिकोर्षिते शालाध्रुवाङ्क एकः, दक्षिणस्यां द्वौ, पश्चिमायां कृताश्चत्वारः, उत्तरस्यां गजा अष्टौ। अथ दिक्परत्वेन भवन्ति द्वाराणि एकं द्वे त्रीणि चत्वारि वा चिकीर्पितानि तावतां शालाध्रुवाङ्कानां संयोगः सैकः एकयुतः सन् ध्रुवादिकं वेश्म गृहं स्यात्। यथा पूर्वस्यां पश्चिमायां द्वारि अभीष्टे शालाध्रुवौ 1, 4 अनयोर्योगः- 5, सैकः = 6, गृहं जातं कान्ताख्यम्। एवं पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्षु शालाध्रुवाणां 1, 2, 8 संयोगः= 11, सैकः- 12, धनदाख्यं गृहम्। दिक्चतुष्टये विजयाख्यं गृहं षोडशमिति।

भाषा— पूर्वादि दिशाओं में गृह के द्वार के अनुक्रम से 1, 2, 4 एवं 8 शाला के ध्रुवाङ्क कल्पित किए गए हैं। जिस-जिस दिशा में द्वार निवेश करना हो, उन-उन [illegible] के शालाध्रुवाङ्कों को जोड़कर उनमें एक और जोड़ दिया जाए तो ध्रुवादि गृह की [illegible] हो जाती है।

अत्र प्रकारान्तरेणाभिहितं रत्नमालायाम् —

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा षट्चन्द्रैर्भागमाहरेत्।
शेषाङ्के तु स्मृतं नाम ध्रुवादिक्रमतो बुधैः॥ 58॥[1]

गृहपिण्डमिति। गृहपिण्डं युगैश्चतुर्भिर्गुणयित्वा षट्चन्द्रैः भागं आहरेत्। शेषाङ्के बुधैः क्रमतः ध्रुवादिनाम स्मृतं कथितम्।

भाषा— गृह के क्षेत्रफल को चार से गुणा करे और सोलह का भाग दे। इस प्रकार जो शेष बचेंगे, उनकी ज्ञानियों ने ध्रुवादि संज्ञाएँ बताई हैं।

अथ तत्रैव ध्रुवादीनां नामान्याह (रत्नमालायां 17, 7-8) —

ध्रुवं च धान्यं च जयं च नन्दनं खरं च कान्तं च मनोरमं च।
सुवक्त्रसञ्ज्ञं खलु दुर्मुखं च क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयं च॥ 59॥
आक्रन्दसञ्ज्ञं विपुलाह्वयं च स्यात्षोडशं तदुविजयाभिधानम्।
इत्येकशागृहाणि विद्यात्प्रस्तारमेषामधुनाऽभिधास्ये॥ 60॥

ध्रुवमिति। इत्यमुनाप्रकारेण यथाक्रममे तेषां संज्ञया एकशालानि गृहाणि जानीयात्। साम्प्रतमेषां प्रस्तारमभिधास्ये कथयामि।

भाषा— इस प्रकार से बनने वाले गृह ध्रुव, धान्य, जय, नन्दन, खर, कान्त, मनोरम, सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रन्द, विपुल और विजय- ये सोलह भेद और संज्ञा वाले होते हैं। ये एकशाला वाले गृह हैं। अब आगे इनका प्रस्तार क्रम कहा जा रहा है।

अथ प्रस्तारक्रममाह वृत्तरत्नाकरे (6, 2-3) —

पादे सर्वगुरावद्याल्लघुं न्यस्य गुरोरधः।
यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्य्यादमुं विधिम्॥ 61॥
ऊने दद्याद् गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत्।
प्रस्तारोऽयं समाख्यातश्छन्दोविचितित्रेदिभिः॥ 62॥

व्याख्या- अत्र यावद्वर्णप्रस्तारोऽभिमतः, तावद्वर्णसंख्यकाः सर्वे गुरवः प्रथमं लेख्याः। तत्राद्या द्गुरोरधो लघुं दद्यात्स्थापयेत्, तत्राधत्वं च गुर्व पेक्षयैव। तथा द्वितीये भेदे आद्यवर्णस्य गुरुत्वाभावातृतीयभेदानुत्पत्तेर्यावत्सर्वलघुरित्यादिवचनं व्यर्थं प्रसज्यते। तथा पुरतोऽग्र यथोपरि यथोपरि पङ्क्तौ गुरवो लघवो वा सन्ति। तथैवाधस्ताल्लेखनीयाः, एवं द्वितीयपङ्क्तौ भवति। अथ तृतीयादिपङ्क्तावुपरिपङ्क्तिस्थितगुरूणां मध्ये आद्यगुरोरधो लघुं स्थापयेत, पुरतस्तु उपरिपंक्तिवदेव। एवं सति तृतीयभेदादौ पश्चात्स्थानस्य शून्यत्वात्तत्र किं

1. प्रकाशित चौपलब्धपाठे नोपलभ्यते।

लेखनीयमित्येतदाह, पश्चादिति—एतदुक्तं भवति यत्र पश्चादेकं स्थानमवशिष्टं तत्रैकमेव गुरुं लिखेत्। यत्र पश्चात्स्थाने द्विरूपमवशिष्टं तत्र द्वौ गुरू, यत्रं स्थानत्रयं तत्र त्रीन् गुरून्, तथा स्थानबहुत्वेन बहून् गुरून्, एवं भूय: अयं विधि: कार्य: यावत्सम्भवं भवेत्। एवं सत्ययं प्रस्तारो भवति।

पाद इति। प्रस्तार्यवृत्तिजातिपादस्थवर्णसङ्ख्याकसर्वगुरौ पादे लिखिते सति तत्राद्यात्प्रथमाद् गुरोरधो लघुं स्थापयेत्। प्रथमत्वं च गुर्वपेक्षया न तु वर्णापेक्षया। तथात्वे हि द्वितीयभेदे आद्यगुरोरभावात् तृतीयभेदानुपपत्ते:। तं लघुं न्यस्य यथोपरि पङ्क्तौ तथैवाधातनाधस्तनपङ्क्तौ, शेषं पादवर्णसङ्ख्यापूर्त्यवधि द्वितीयादिकं गुरु लघु वा लिखेत्, यथोपरि गुरुस्तत्राधस्तादपि गुरुर्यत्रोपरि लघुस्तत्राधस्तादपि लघुरित्यर्थ:। भूय: पुनरमुं पूर्वोक्तं विधिं लेखनरूपं कुर्य्यात्तृतीयादिपंक्तौ गुरुमध्ये आद्यगुरोरधो लघु: शेषं चोपरिवदेवेत्यर्थ:। एवं सतिं तृतीयभेदे आद्यस्थानस्य शून्यत्वात् तत्र किं लेख्यमित्यत आह—ऊन इति-ऊने न्यूनस्थाने गुरूनेव दद्याल्लिखेत्। बहुवचनमुत्तरोत्तपङ्क्तावपि न्यूने गुरूणां प्राप्त्यर्थम्। तत: भूय: शब्दोऽपि वीप्सार्थो ज्ञेय:। तेन पुन: पुनर्गुर्वपेक्षया आद्याद् गुरारधो लघुं लिखित्वा शेषमुपरिवदेव सम्पाद्य ऊने स्थाने गुरवो देया इत्यर्थ:। प्रस्तार-करणेऽवधिमाह— यावदिति। सर्वलघु: पाद: प्रस्तारो वा यावद्भवेत्तावदेवं कुर्यात्। प्रस्तारोक्तिमुपसंहरति— प्रस्तारोऽयमिति। प्रस्तार्य्यते इति प्रस्तार:, प्रस्तार्यतेऽनेन छन्द इति वा छन्दोविचितिश्छन्द: शास्त्रमिति।

भाषा— (केदारभट्ट कृत वृत्तरत्नाकर में) प्रस्तार विधि इस प्रकार से कही गई है— सर्वगुरु पाद में प्रथम गुरु (ऽ) के नीचे (।) लघु को लिखे। तब ऊपर की पङ्क्ति के अनुसार शेष (दाहिनी ओर के) रिक्त स्थान को पूरा करे यानी ऊपर लिखे गुरु-लघु के अनुसार नीचे भी गुरु-लघु को लिखकर पङ्क्ति को पूरा करे। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी पङ्क्ति को भी लिखें लेकिन जो शेष (बायीं ओर का) रिक्त स्थान हो, उसमें गुरु वर्ण को ही लिखना चाहिए, जब तक सर्वलघु की प्राप्ति न हो जाए, तब तक उक्त विधि को करता जाए। छन्दशास्त्र के ज्ञानी इस विधि को 'प्रस्तार' कहते हैं।

एवमेवोक्तं प्रस्तारचिन्तामणौ —

अधो लघुं गुरोराद्यात्पुरतस्तु यथोपरि।
पश्चाद्दद्याद्गुरूनेव वर्णप्रस्तार ईदृश: ॥ 63 ॥

भाषा— प्रस्तार के लिए नीचे से सर्वप्रथम लघु (।।।।) लिखें, इसके बाद ऊपर पहले लघु पर गुरु व शेष लघु-लघु (ऽ।।।) लिखे। इस प्रकार बारी-बारी ऊपर में ऊपर से ऊपर बढ़ाए, जब तक की सभी गुरु न हो जाए। इस प्रकार से वर्ण प्रस्तार क्रम होता है।

तथा च रत्नमालायाम् (17, 9) —

स्थापयेल्लघुमधो गुरो: पुर: स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत्।
पश्चिमं च गुरुभि: पुन: पुन: सर्वलघ्वधिरित्ययं विधि: ॥ 64 ॥

स्थापयेदिति। प्रथमं च चतुर्गुरु संस्थाप्य प्रथम गुरोरधस्ताल्लघुं विन्यसेत् शेषमुपरि सदृशं गुरोरधोगुल्व्यसेत्। पुनरपि गुरोरधस्ताल्लघुं विन्यस्य शेषमुपरितनेन समकुर्यात् पश्चिं च गुरुभि: पुन: प्रपूरयेत्। एवं सर्वगुरुस्थानं यावत्सर्वेलघवो भवन्ति। एवं सति षोडश गृहा भवन्ति।

भाषा— भवन के लिए छन्द शास्त्रानुसार प्रस्तार क्रम समझना चाहिए। इसके लिए पहले चार गुरु (ऽऽऽऽ) लिखें, तदोपरान्त प्रथम गुरु के नीचे लघु और वाम भाग में गुरु लिखें तथा आगे जैसा पूर्व में लिखा गया है, वैसा ही लिखें (।ऽऽऽ)। इसी प्रकार सबके लघु (।।।।) होने तक लिखें तो प्रस्तार क्रम न्यास हो जाता है।

अथ ध्रुवादिगृहाणां प्रस्तारवशेन षोडशप्रकारानयनमाह रत्नमालायाम् —

प्रदक्षिणं सद्ममुखादलिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितञ्च।
गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दशषट् च भेदा: ॥ 65 ॥

प्रदक्षिणेति। ऊर्ध्वमुखद्वारे प्रथमगृहं ध्रुवं ऽऽऽऽ, पूर्वद्वारे उत्तरार्द्धे द्वितीयं धान्यं-।ऽऽऽ, दक्षिणद्वारं तृतीयं जयं ऽ।ऽऽ, प्राग्दक्षिणद्वारं चतुर्थनन्दं, ।।ऽऽ, पश्चिमद्वारं पञ्चमं खरं ऽऽ।ऽ, प्राक्पश्चिमद्वारं षष्ठं कान्तं।ऽ।ऽ, दक्षिण-पश्चिमद्वारं सप्तमं मनोरमं ऽ।।ऽ, प्राग्दक्षिणपश्चिमद्वारं सुवक्त्रमष्टमं।।।ऽ, उत्तरद्वारं नवमं दुर्मुखं ऽऽऽ।, पूर्वोत्तरद्वारं दशममुग्रं। ऽऽ।, दक्षिणोत्तरद्वारं रिपुदमेकादशं ऽ।ऽ।, पूर्व-दक्षिणोत्तरद्वारं द्वादशं वित्तदं ।।ऽ।, पश्चिमोत्तरद्वारं नाशं त्रयोदशं ऽऽ।।, प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चतुर्दशमाक्रन्दनं ।ऽ।।, चतुर्दिक्षद्वारं षोडशाख्यं विजयं।।।।, एषां फलानि नामानुसारतो ज्ञेयानि।

भाषा— गुरु-लघु जनित प्रस्तार के अनुसार पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से अलिन्द व द्वार लघु स्थान में किया जाए, गुरु स्थान में कदापि नहीं दें। इस प्रकार से द्वार और अलिन्द क्रम से सोलह प्रकार के गृहों के नाम होते हैं।

विशेष— वशिष्ठ ने इन गृहों के नामानुसार फल भी बताए हैं- ध्रुवसञ्ज्ञं गृहं त्वायं धनधान्यसुखप्रदं। धान्यं धनप्रदं नृणां जयं तद्विजयप्रदम्॥ नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम्। पुत्रपौत्र प्रदं कान्त श्रीप्रदं यन्मनोरमम्॥ सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं वि-सुखप्रदम्। सर्वदु:खप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम्॥ वित्तदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयप्रदम्। आक्रन्दं शोककजननं विपुलश्रीयश:प्रदम्। विपुलं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम्॥ *(प्रमिताक्षरा. 12, 11-12; वशिष्ठसंहिता 39, 100-103)*

सं.	प्रस्तार.	गृहनामानि	द्वारनामानि	अक्षर	फलानि
1	S S S S	ध्रुवम्	ऊर्ध्वमुखं	2	धनधान्यसुखं
2	I S S S	धान्यम्	पूर्वमुखं	2	धनप्रदं
3	S I S S	जयसंज्ञम्	दक्षिणद्वारं	2	विजयप्रदं
4	I I S S	नन्दसंज्ञम्	पूर्वदक्षिण	2	स्त्रीहानिप्रदं
5	S S I S	खराभिधम्	पश्चिमद्वारं	2	सम्पद्विनाशः
6	I S I S	कान्तम्	पूर्वपश्चिमद्वारं	2	पुत्र-पौत्रप्रदं
7	S I I S	मनोरमम्	दक्षिणपश्चिमद्वारं	4	लक्ष्मीप्रदं
8	I I I S	सुमुखम्	पूर्वयाम्यपश्चिमद्वारं	3	भोगदं
9	S S S I	दुर्मुखम्	उत्तरद्वारं	3	विमुखप्रदं
10	I S S I	उग्रम्	पूर्वोत्तरद्वारं	2	सर्वदुःखप्रदं
11	S I S I	रिपुदम्	दक्षिणोत्तरद्वारं	3	शत्रुभीतिदं
12	I I S I	वित्तदम्	पूर्वयाम्योत्तरद्वारं	3	धनदं
13	S S I I	नाशाख्यम्	पश्चिमोत्तरद्वारं	2	सर्वक्षयं
14	I S I I	आक्रन्दम्	पूर्वपश्चिमत्तरद्वारं	3	शोकप्रदं
15	S I I I	विपुलम्	याम्यपश्चिमोत्तरमुखं	3	श्रीजयप्रदं
16	I I I I	विजयसंज्ञम	चतुर्मुखं	3	लाभप्रदं

अथ गृहाणामायादिनवकमाह रामदैवज्ञः (प्रमिता., पीयूष. 12, 11–12) —

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाग्निनागैर्गुणिते क्रमेण।
विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यर्क्षखभानुभिश्च ॥ 66 ॥
आयो वारोऽंशको द्रव्यमृणमृक्षन्ति तिथिर्युतिः।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षं गृहभैक्यं मृत्तिप्रदम् ॥ 67 ॥

पिण्ड इति। आय इति। पिण्डे क्षेत्रफले नवधा स्थापिते क्रमेण नवादिभिरङ्कैर्गुणितैः क्रमेण नागादिभिरङ्कैर्भक्ते च सति यदवशिष्टं तदायादिकं स्यात्। यथा-क्षेत्रफलं नवभिर्गुणितं अष्टभिर्भक्तं शिष्टमायः स्यात्। तद्यथा पिण्डः 79 नवाहतेऽष्टभक्ते शेषं-7 गजायः। एवं सर्वेप्यानीताः, वारः बुधः- 4, अंशकः- 6, द्रव्यं-8, ऋणंः- 5, नक्षत्रं पूर्वाफाल्गुनी - 11, द्वितीयातिथिः-2, परिघयोगः- 19, आयुः- 32;

भाषा— (रामदैवज्ञ ने आय व्यायादि नौ गणितीय सूत्रों का प्रतिपादन पूर्व शास्त्रों के अनुसार किया है। पिण्ड से आय-वार आदि के विचार पूर्वक गृहस्वामी के साथ नक्षत्र मेलापक द्वारा अधिक आयु के पिण्डात्मक आवास निर्माण के निमित्त गणितज्ञ [illegible]दं के आदेशानुसार वास्तुकार्य करवाना चाहिए। रामदैवज्ञ ने नौ द्रव्यों में आय, वार, अंश, धन, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और शेष आयु माना और उन्हें ज्ञात करने के लिए यह सूत्र दिया-)

इष्टगृह के क्षेत्रफल को 9 स्थलों पर रखें। इसके बाद निम्न विधि करें—

(1.) पहले स्थल पर रखे गए क्षेत्रफल को यदि 9 से गुणाकर 8 से भाजित करें तो शेष को 'आय' कहा जाता है।

(2.) द्वितीय स्थल पर रखे गए क्षेत्रफल को 9 से गुणाकर 7 से भाजित करें तो शेष 'वार' होता है।

(3.) तृतीय स्थलस्थ क्षेत्रफल को 6 से गुणाकर 9 से भाजित करने पर शेष को 'अंश' कहा जाता है।

(4.) चतुर्थ स्थल पर रखे गए क्षेत्रफल को यदि 8 से गुणाकर 12 से विभाजित किया जाए तो जो शेष बचेगा, वह 'द्रव्य' होता है।

(5.) पाँचवें स्थान रखे गए क्षेत्रफल को यदि 3 से गुणाकर 7 से विभाजित किया जाए तो शेष 'ऋण' संज्ञक होता है।

(6.) छठवें स्थान पर रखे गए क्षेत्रफल यदि 8 से गुणित कर 27 से विभाजित किया जाए तो शेष अश्विनी आदि के क्रम से नक्षत्र होगा।

(7.) सातवें स्थानस्थ क्षेत्रफल को यदि 8 से गुणाकर 15 से विभाजित करें तो ज्ञान संख्या 'तिथि' की परिचायक होगी।

(8.) आठवें स्थल पर रखे गए क्षेत्रफल को यदि 4 से गुणाकर 27 का भाग दिया जाए तो शेष को 'विष्कम्भ' आदि योग जानना चाहिए।

(9.) यदि नवें स्थान पर न्यस्थ क्षेत्रफल को 8 से गुणाकर 120 से भाजित करें तो शेष से 'गृह की आयु' का ज्ञान किया जाएगा।[1]

उदाहरण — किसी गृह भूखण्ड का कुल क्षेत्रफल 957 हुआ। उसे 9 से गुणा किया तो 8613 लब्ध हुआ। इसमें 8 का भाग दिया तो शेष 5 बचे इस प्रकार यह पञ्चम आय 'वृष' निकली। इसी प्रकार वार आदि को भी ज्ञात किया जा सकता है।

---

1. प्रकारान्तरेणापि फलाद्यानयनेऽस्मद्गुरुणां पद्यम्। हालुगिदैवज्ञमतेपिण्डानयनप्रकारः—
व्येकेष्टर्क्षहता द्वियाणशशिनो 152 उत्पष्टया 17 युतास्तेऽपि च व्येकेष्टायहतैकनागसहिताः 81 षण्मूर्च्छनाभिर्हृताः 216 ।
शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रजं स्याद्दैर्घ्यं तदभीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृतं विस्तृतिः ॥ (मुहूर्तकल्पद्रुमे 17, 28) अर्थात्— प्रकारान्तर से मुहूर्तकल्पद्रुमकार हालुगिदैवज्ञ का यह सूत्र उद्धृत किया है कि इष्ट नक्षत्र संख्या में 1 कम करके शेष को 152 से गुणा करें, उसमें 17 जोड़ें, आय में एक कम करके शेष 81 को गुणा करें, दोनों को जोड़कर 216 का भाग दें जो शेष होगा, वह इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय सम्बन्धी पिण्ड होगा। इसमें दीर्घ से हो भाग देने से विस्तार होगा। विस्तार से भाजित करने पर दीर्घ होगा।

<u>स्पष्टार्थचक्र</u>

क्रम	गृहपिण्ड		गुणक	गुणनफल	भाजक	लब्धि	शेष	संज्ञा
1.	203	×	9	= 1827	÷ 8	=228	3	आय
2.	203	×	9	= 1827	÷ 7	=261	0	वार
3.	203	×	6	= 1218	÷ 9	=135	3	अंश
4.	203	×	8	= 1624	÷ 12	=135	4	द्रव्य
5.	203	×	3	= 609	÷ 8	=76	2	ऋण
6.	203	×	8	= 1624	÷ 27	=60	4	नक्षत्र
7.	203	×	8	= 1624	÷ 15	=108	4	तिथि
8.	203	×	4	= 812	÷ 27	=32	18	योग
9.	203	×	8	= 1624	÷ 120	=13	64	आय

तदुक्तं ग्रन्थान्तरे (वास्तुसौख्यं 162-163)— 'गोऽङ्कर्त्वष्टगुणाष्टनागजलधिव्यालै (9, 9, 6, 3, 8, 8, 4, 8) र्हते भूफले। नागाद्र्यङ्कदिवाकराष्टभ तिथीर्योगैः खसूर्यै (8, 7, 9, 12, 8, 27, 15, 27, 120) र्भजेत्। आयं वारमथांशकं धनमृणं तारां तिथिं चिन्तयेद्योगं चायुरितीह शेषकपदे भागैर्हते तान्त्रिकैः' इति।[1]

भाषा— क्षेत्रफल को क्रमशः 9, 9, 6, 3, 8, 8, 4, 8 से पृथक्-पृथक् गुणा करें और प्राप्त गुणनफल में पृथक्-पृथक् ही क्रमशः 8, 7, 9, 12, 8, 27, 15, 27, 120 का भाग दें। जो शेष बचे उससे क्रमशः आय, वार, अंशक, धन, ऋण, तारा, तिथि, योग एवं आयु का ज्ञान वास्तुतन्त्रविद् करते हैं।

<u>स्पष्टार्थचक्र</u>

गुणकः	9	9	6	8	3	8	8	4	8
भाजकः	8	7	9	12	8	20	15	27	120
संज्ञाः	आय	वार	अंशक	धन	ऋण	तारा	तिथि	योग	आयु

आयादीनां फलानि (पीयूषधारा. तत्रैव) —

एषमायादीनां प्रयोजनमुच्यते आयस्य तावत्— '*विषमायः शुभायैव समायः शोकदुःखदः*' इति वसिष्ठोक्तेः। वाराणां चः '*सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः। शेषग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः*' इति। यथा गणितागतो भौमवारो रविवारो वा शनिवारः स निन्द्यः। तद्राशी मेषवृश्चिकौ तौ निन्द्यौ। तदंशा यस्मिन्कस्मिंश्चिल्लग्ने मेषवृश्चिकनवांशाः। निषिद्धाः। एव सूर्यवारोऽपि। अन्येषां वारराश्यंशोः शुभाः। अंशानां च। एवमन्येष्वपि ग्रहेषु नवांशाः नव '*गृहस्यागतनक्षत्रं तदुद्विराश्यात्मकं यदि। तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा*

गृहम्' इति। यथा कृत्तिका द्विराश्यात्मिका, तत्रैकशेषे मेषः, द्व्यादिशेषे वृषः, मृगभे द्व्याधिके शेषे मिथुनम्, अन्यथा वृषः। पुनर्वस्वाद्यंशत्रयं यावन्मिथुनम्, एवमुत्तर-फल्गुन्यादिषु द्विराश्यात्मकेषूहनीयम् विद्वद्भिः। न तु निः सन्दिग्धेष्वेकराश्यात्मकेषु अश्विन्यादिषु।

भाषा— वसिष्ठादि का मत है कि यहाँ आय की संख्या यदि विषम मिले तो शुभ एवं सम हो तो शोक एवं दुःखद होती है। वारों में यदि सूर्य, भौम एवं शनिवार के लिए गृह निर्माण हो तो अग्निभय होता है, शेष ग्रहों के वारांशों में गृहकर्ता को इष्टसिद्धि लब्ध होती है। यहाँ नवांश ज्ञात हो और यदि मेष, वृश्चिक नवांश हो तो निषिद्ध जाने। इसी प्रकार गृह नक्षत्र में द्विस्वभाव की राशियाँ अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन आएँ तो गृह निर्माण में भय होता है। गृह के लिए सदैव उसको नवांश के कारण जानना चाहिए।

धनर्णविचारो गृहारम्भे (तत्रैव) —

धनर्णयोश्च—'धनादिकं गृहं वृद्धौ निर्धनाय ऋणाधिकम्' इति। धनाधिकं गृहं वृद्धौ भवति। ऋणाधिकं निर्धनाव भवति।

भाषा— यदि धन अधिक हो तो गृह अपने कर्ता को वृद्धि देता है जबकि ऋण अधिक हो तो निर्धनता का कारक बनता है।

नक्षत्रस्य फलं तु ताराद्वारा तद्यथाह (तत्रैव)—

विप्रत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा।
निधनाख्या तारका तु सर्वदा निधनप्रदा॥

अस्यार्थः- गृहकर्तुर्नक्षत्राद् गृहनक्षत्रं यत्संख्यं नवभक्तावशिष्टं यदि विपत्तारादिकं स्यात्तदा तद्गृहमनिष्टं स्यात्।

भाषा— तीसरी विपन्न नामक तारा को विपत्ति प्रदान करने वाली मानी है। पाँचवें नक्षत्र की प्रत्यरि तारा प्रतिकूल फल देती है एवं सातवीं निधना तारा को तो सदा ही मृत्युदायी स्वीकारा गया है।

अन्यथा शुभमिति कश्यपः (तत्रैव)-

दत्ते दुःखं तृतीयर्क्ष पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम्।
आयुःक्षयं सप्तमर्क्ष कर्तुर्भाद्यदि सद्मभम्॥

यदा तु गृहकर्तुर्गृहस्य चैकमेव नक्षत्रं तत्र स्वयमेव निर्णयमाहगृहेति। गृहेशर्क्षं स्वामिनक्षत्रं प्रागुक्तप्रकारेणानीतं गृहभं च तयोरैक्यं एकमेव चेद्भं स्यात्तदा तद्गृहकर्तुर्मरणप्रदं स्यात्।

भाषा— इसी प्रकार कश्यप का मत है कि कर्ता के नक्षत्र से क्षेत्रफल से ज्ञात नक्षत्र यदि तीसरा हो तो निस्तर पीड़ा, पाँचवें में यश का क्षय और सातवें नक्षत्र में आयु का क्षय या निधन का द्योतक है।

'गृहस्य तत्पतेस्त्वेकं धिष्ण्यं चेन्निधनप्रदम्' इति वसिष्ठोक्तेः।

भाषा— वसिष्ठ का मत है कि यदि क्षेत्रफल जनित नक्षत्र एवं गृहकर्ता का नक्षत्र एक ही हो तो निश्चत ही मृत्युदायक जानना चाहिए।

वास्तुशास्त्रे द्विराश्यात्मकभेषु राश्यादिनिर्णयोऽन्यथाऽभिहितः—

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।

मूलादित्रितयं चापे शेषेषु नव राशयः॥

भाषा— अश्विनी, भरणी, कृतिका इन तीन नक्षत्रों से मेषराशि होती है; मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी से सिंह; मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा इन तीन-तीन नक्षत्रों से धनु राशि एवं शेष दो-दो नक्षत्रों की नौ राशियाँ होती हैं।

अयं पक्षो वास्तुशास्त्रनवांशानुक्तेरुक्तः। गृहस्य नक्षत्रराशिज्ञाने वर्णोवश्यं तथा तारा योनिरित्याद्युक्तप्रकारेण गृहस्वामिनक्षत्रवशान्नाडिकादिविचारः कर्तव्यः।

तत्र नाडीवेधे प्राशस्त्यमुक्तं ज्योतिश्चिन्तामणौ —

सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि।

परस्परं मित्रयोश्चैकनाडी प्रशस्यते इति॥

तिथिप्रयोजनं दर्शं रिक्तां च वर्जयेदिति। योगानामपि दुष्टयोगाश्च वर्ज्याः। आयुः-प्रयोजनं तावत्कालं गृहावस्थितिरिति। अत्राभीष्टांशादिसिद्ध्यर्थमङ्गुलादिकं प्रक्षिप्य विशोध्य वा क्षेत्रफलं साध्यम्।

भाषा— सेव्य-सेवक एवं गृह-गृहस्वामी में मित्र की भाँति एक ही नाड़ी हो तो सदैव शुभ होती है। तिथि में अमावस्या, रिक्ता तिथि को वर्जित जाने। योगों में जो दुष्ट योग हों, उनको त्याग देना चाहिए। इसी प्रकार आयु प्रयोजन के अन्तर्गत स्थैर्य एवं अधिक आयु को लेना चाहिए। यदि कोई शुद्धि नहीं हो तो अङ्गुल प्रमाण न्यूनाधिक कर क्षेत्रफल का शोधन करना आवश्यक होता है।

अथ गृहारम्भे वृषवास्तुचक्रं राजमार्तण्डे[1] —

वृषचक्रं वृषाकारं सर्वावयवसंयुतम्।
यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुस्तत्रादौ त्रीणिमस्तके॥ 68॥
अग्रपादे च चत्वारि पुनश्चत्वारि पश्चिमे।
पृष्ठे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि दक्षिणे॥ 69॥
पुच्छे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि वामके।
मुखे त्रीणि च धिष्ण्यानि अष्टाविंशतितारकाः॥ 70॥[2]

वृषचक्रमिति। सर्वावयवसंयुतं सर्वैरवयवैः संयुतं वृषाकारं वृषचक्रं लिखेदिति शेषः। भानुः सूर्यः यस्मिन्नृक्षे स्थितस्तत्रादौ प्रथमं सूर्यभात् त्रीणि नक्षत्राणि मस्तके स्थाप्यानि, चत्वारि नक्षत्राणि अग्रपादे स्थाप्यानि, पश्चिमे पृष्ठपादेपुनश्चत्वारि नक्षत्राणि स्थाप्यानि, दक्षिणे कुक्षौ चत्वारि स्थाप्यानि, पुच्छेत्रीणि धिष्ण्यानि स्थाप्यानि, वामके कुक्षौ चत्वारि स्थाप्यानि, मुखे त्रीणि नक्षत्राणि स्थाप्यानि। इत्यष्टाविंशतितारकाः क्रमेण स्थाप्याः।

भाषा— वृष वास्तुचक्र में सूर्य के नक्षत्र से लेकर अभिजित् पर्यन्त क्रमानुसार 28 नक्षत्रों की संख्या का न्यास करें और उनका फलाफल निम्नानुसार जानना चाहिए—

अङ्ग	नक्षत्र	फल
शीर्ष	3	वज्रपात, अग्निभय
अग्रपाद	4	शून्य, उद्वेग
पृष्ठपाद	4	स्थिरता
पृष्ठ	3	लक्ष्मीप्राप्ति
दक्षिणकुक्षी	4	जय एवं लाभ
पूँछ	3	स्वामीनाश
वामकुक्षी	4	दारिद्र्य या निर्धनता
मुख	3	निरन्तर पीड़ा, असत्

---

1. राजमार्तण्डपाण्डुलिप्यां नोपलभ्यते। ज्योतिष्प्रकाशेऽपि— वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्च व्यासेन भाषितम्। यदृक्षे वर्तते भानुस्तत्रादौ त्रीणि मस्तके॥ चतुष्कमग्रपादे स्यात् पुनश्चत्वारि पश्चिमे। पृष्ठे च त्रीणि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारि यामतः॥ चत्वारि दक्षिणे कुक्षौ पुच्छे भत्रयमेव च। मुखे भत्रयमेवं स्युष्टाविंशतितारकाः। शिरस्ताराग्निदाहाय: गृहवासोऽग्र पादयोः॥ स्थैर्यं स्यात् पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः। कुक्षौ स्याद्दक्षिणे लाभो वामकुक्षौ दरिद्रता॥ पुच्छे स्वामिविनाशः स्यान्मुखे पीडा निरन्तरम्। (पीयूषधाराटीकायां 12, 13-14)
2. तथा च— त्रि वेदा ब्धि त्रि वेदा ब्धि त्रि वेदा ब्धि द्वि त्रिकेष्वर्कतः शशी: कुर्याल्लक्ष्मी समुद्वाम्यस्थैर्यलक्ष्मीर्दरिद्रा। धनं व्याधिः क्रमान्मसुप्रवेशारम्भयोर्वृषे॥ इति क्वचित्पाठः।

अथैषां फलान्याह तत्रैव —

शिरसां वज्रपातः स्याद् दुद्वेगश्चाग्रपादयोः।
स्थिरत्वं पश्चिमे पादे पृष्ठे चैवं धनागमः॥ 71॥
दक्षकुक्षौ जयो लाभः पुच्छे स्वामिविनाशनम्।
वामकुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीडा निरन्तरम्॥ 72॥
सूर्यभात्तु त्यजेत्सप्त ततश्चैकादशे धनम्।
ततोऽन्यभेषु दुष्टं स्यादिति वास्तुनि कीर्तितम्॥ 73॥

शिरसा वज्रपात इति। शिरसा मस्तकस्थितनक्षत्रेण गृहारम्भे सति वज्रपातः स्यात्, अग्रपादयोः अग्रपादद्वयगतनक्षत्रेषु उद्वेगश्चित्तविभ्रमः स्यात्, पश्चिमे पादे पृष्ठस्थितपादगतनक्षत्रेषु स्थिरत्वं गृहारम्भकर्तुः स्थैर्य्यं स्यात्, पृष्ठे पृष्ठस्थितनक्षत्रेषु च धनागमः स्यात्। दक्षकुक्षौ दक्षिणकुक्षौ जयो लाभश्च स्यात्, पुच्छे पुच्छगतनक्षत्रेषु स्वामिविनाशनं गृहस्वामिनोनाशः स्यात्। वामकुक्षौ वामकुक्षिगतनक्षत्रेषु दारिद्रयं दरिद्रता स्यात्, मुखे मुखगतनक्षत्रेषु निरन्तारं सन्ततं पीड़ा स्यात्।

अथ संक्षेपेण फलादेशमाह— सूर्यभात् सूर्याक्रान्तनक्षत्रात् सप्तनक्षत्राणि त्यजेत्। ततः सप्तनक्षत्रादनन्तर मेकादशे- एकादशसमनक्षत्रेषु धनं स्यात्। ततोऽन्यमेषु शेषदशनक्षत्रेषु दुष्टं दुष्टफलं स्यात्, इति वास्तुनि गृहारम्भे कीर्तितम्।

भाषा— उक्त श्लोकों के फल चक्र में द्रष्टव्य है। इस चक्र में सूर्य के नक्षत्र से वास्तुकार्यारम्भ में 7 नक्षत्र में अशुभ, पश्चात् 11 नक्षत्र में धन, इसके बाद 10 नक्षत्रों में दूषित फल जानना चाहिए।

अथैव रामदैवज्ञोप्याह (13-14) —

गेहाद्यारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहो वेदभैरग्रपादे।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीर्युगैर्दक्षकुक्षौ॥ 74॥
लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैःस्व्यं वामकुक्षो मुखस्थैः।
रामैः पीडाः सन्ततं चार्कधिष्ण्यादश्वैरुद्रैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत्तत्॥ 75॥

गेहाद्यारम्भ इति। गेहं गृहमादिशब्देन। प्रासादग्रामादि तदारम्भे सति अर्कभात् सूर्याक्रान्तनक्षत्राद्, रामैस्त्रिभिर्भैः, वृषस्य वत्सस्य, शीर्षस्थितैः सद्भिः दाहः फलं स्यात्, ततो वेदभैः अग्रपादे पुरस्थितपादस्थितैः शून्यं गृहं जनवासरहित स्यात्। ततश्चतुर्भैः गृहकर्तुः स्थिरत्वं स्यात्। ततो रामैस्त्रिभिर्नक्षत्रैः पृष्ठस्थैः श्रीः लक्ष्मीः स्यात्। ततो युगैश्चतुर्भिर्दक्षिणकुक्षिस्थितैः लाभः, ततस्त्रिभिर्नक्षत्रैः पुच्छगैः स्वामिनो गृहकर्तुर्नाशः। ततो वेदैश्चतुर्भिः वामकुक्षिस्थितैः नैः स्वयं दारिद्रयम्। ततस्त्रिभिर्मुखस्थैः सन्ततमनवरतं गृहकर्तुः

पीडा स्यात्। गेहारम्भे वास्तुसौख्ये (98) शीर्षान्त्यैत्यज्य पितामहान्तचरणा अपि— [illegible] भानि: शीर्षं गृहेत्। दाहो विनाशः स्थिरता धनं श्रीः शून्यं च दारिद्रयभी क्रमेण। इति। (पीयूषधारा. 12, 13-14)

भाषा— गृहारम्भ में सूर्याक्रान्त नक्षत्र से चन्द्रमा वाले वर्तमान के नक्षत्र तक गणनाकर प्रथम 3 नक्षत्र वृष वास्तुचक्र के सिर में कल्पित करें। उनमें यदि गृहारम्भ हो तो अग्निदाह होता है। इसके बाद, 4 नक्षत्र अगले पाँव में रखें और उसका फल शून्य बताया है। पुनः 4 नक्षत्र पिछले पाँव में रखें तो स्थिरता, पुनः 3 नक्षत्र पीठ में दें जिनका फल लक्ष्मी प्राप्ति, तदोपरान्त 4 नक्षत्र दक्षिणी कुक्षि में लाभप्रद और 3 नक्षत्र पूँछ में दें जिनका फल स्वामी का नाश, उसके पश्चात् 4 नक्षत्र वाम कुक्षि में दें जिनका फल दरिद्रता है। पुनः 3 नक्षत्र मुख में दें जो नित्य पीड़ाप्रद होते हैं। इस प्रकार सूर्य के नक्षत्र से वास्तुकार्यारम्भ में 7 नक्षत्र में अशुभ, पश्चात् 11 नक्षत्र में शुभ, इसके बाद 10 नक्षत्रों में अशुभ फल होता है।

तत्रोक्तं केनाप्याचार्येण (पीयूषधारा. 12, 13-14) —

रविभात्सप्त नेष्टानि शुभान्येकादशाष्टभात्।
दश शेषान्यनिष्टानि साभिजिद्वृषवास्तुनि॥ 76॥

रवि इति। वृषवास्तुचक्रे साभिजित् नक्षत्रं न्यसेत्, रविभात् सूर्याक्रान्तात् सप्त नक्षत्रं नेष्टं, एकादश नक्षत्रं शुभं, शेषं दशं नक्षत्रं अनिष्टम् इत्यर्थः। पूर्वं सविस्तरोक्तिस्तु मूलवाक्यानुरोधात्।

भाषा— वृष वास्तुचक्र में नक्षत्रों का पूर्वानुसार न्यास करे और जाने कि प्रथम (शीर्ष व अग्रपाद के) सात नक्षत्र अशुभ, द्वितीय (पृष्ठपाद, पृष्ठ व दक्षिण कुक्षि के) ग्यारह नक्षत्र शुभ एवं तृतीय (पूँछ, वामकुक्षि व मुख के) दस नक्षत्र अशुभ होते हैं।

अथ राहुसम्मुखत्वेन द्वारनिषेधनाह —

अलित्रये पूर्वभागे दक्षिणे कुम्भतस्त्रिभे।
वृषात्त्रिभे परे भागे उत्तरे सिंहतस्त्रिभे॥ 77॥
यस्यां दिशि यदा राहुः स्थितो लोकभयङ्करः।
तस्यां दिशि तदा द्वारं न कर्तव्यं बुधैरिह॥ 78॥

अलित्रय इति। अलित्रये वृश्चिकधनुर्मकरेतित्रये पूर्वभागे, कुम्भतस्त्रिभे कुम्भमीनमेषेतित्रये दक्षिणे, वृषात्त्रिभे वृषमिथुनकर्केतित्रये परे पश्चिमे भागे, सिंहतस्त्रिभे उत्तरे राहुस्तिष्ठति। लोकभयङ्करो राहुः यदा यस्यां दिशि तिष्ठति, इह तस्यां दिशि बुधैस्तदा द्वारं न कर्तव्यम्।

भाषा— वृश्चिक से तीन राशियों (वृश्चिक, धनु व मकर) में सूर्य के विद्यमान रहने तक राहु पूर्व में रहता है। कुम्भ से तीन राशियों (कुम्भ, मीन व मेष) में सूर्य के विद्यमान रहते राहु दक्षिण में रहता है। वृष से तीन राशियों (वृष, मिथुन व कर्क) में सूर्य के रहते पश्चिम में और सिंह से तीन राशियों (सिंह, कन्या व तुला) में सूर्य के विद्यमान रहते उत्तर की ओर राहु रहता है। ऐसे में जिस अवधि में जिस ओर लोक भयङ्कर (राहु) हो, उस दिशा में ज्ञानियों को भवन का द्वार नहीं रखना चाहिए।

अथैतत्फलमाह —

यदि कश्चिज्जनस्तस्यां द्वारं चेत्कुरुते भ्रमात्।
तदा मुख्यजनो गेहे विनाशमुपगच्छति॥ 79॥

यदीति। यदि कश्चिज्जनः तस्यां राहुगताशाभिमुखं भ्रमादनवधानाद्द्वारं कुरुते चेत्तदा गेहे मुख्यजनः प्रधानलोकः विनाशं मरणमुपगच्छति प्राप्नोति।

भाषा— कोई व्यक्ति यदि त्रुटि से भी सम्मुख राहु में द्वार का निवेश करता है तो उस गृह के मुखिया विनाश के मार्ग पर चला जाता है, ऐसा जानना चाहिए।

विशेष— शिल्पशास्त्र में आया है कि वास्तुनाग के शयनानुसार उसके सिर, पीठ और पुच्छ पर खातकर्म नहीं किया जाना चाहिए, यह अशुभ होता है। शयनानुसार उसके वाम-पार्श्व तथा कुक्षी-क्रोड में खात शुभ होता है— शिरसा पृष्ठपुच्छाभ्यामशुभं च भवेद् गृहम्। शयनं वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे शुभं भवेत्॥ *(शिल्प. 2, 17)*

अथ तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधमाह व्यवहारसमुच्चये (पीयूष. 12, 17) —

पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद् गृहम्।
उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम्॥ 80॥
अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत्।
नवम्यां दक्षिणास्यं हि यावच्छुक्लचतुर्दशीम्॥ 81॥

पूर्णिमात इति। पूर्णिमातः अष्टमीं यावत् कृष्णाष्टमीं यावत् पूर्वास्यं पूर्वमुखं गृहं वर्जयेत्। नवम्यादिचतुर्दशीं कृष्णपक्षीयनवमीमारभ्य कृष्णचतुर्दशी यावत् उत्तरास्यं सौम्यमुखं गृहं न कुर्वीत। अमायाः सकाशात् अष्टम्, शुक्लाष्टमी यावत् पश्चिमास्यं पश्चिमाभिमुखं गृहं विवर्जयेत् गृहारम्भं त्यजेत्। तथा नवम्याः सकाशात् शुक्लपक्षीयनवमीमारभ्य शुक्लचतुर्दशीं यावत् दक्षिणास्यं गृहं न कुर्वीत।

भाषा— किसी भी माह में पूर्णिमा से आगामी कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि पर्यन्त पूर्वाभिमुख गृह नहीं बनाएं। कृष्ण पक्ष की नवमी से कृष्ण पक्ष की ही चतुर्दशी

---

* [illegible] प्रकाशित पाठः।

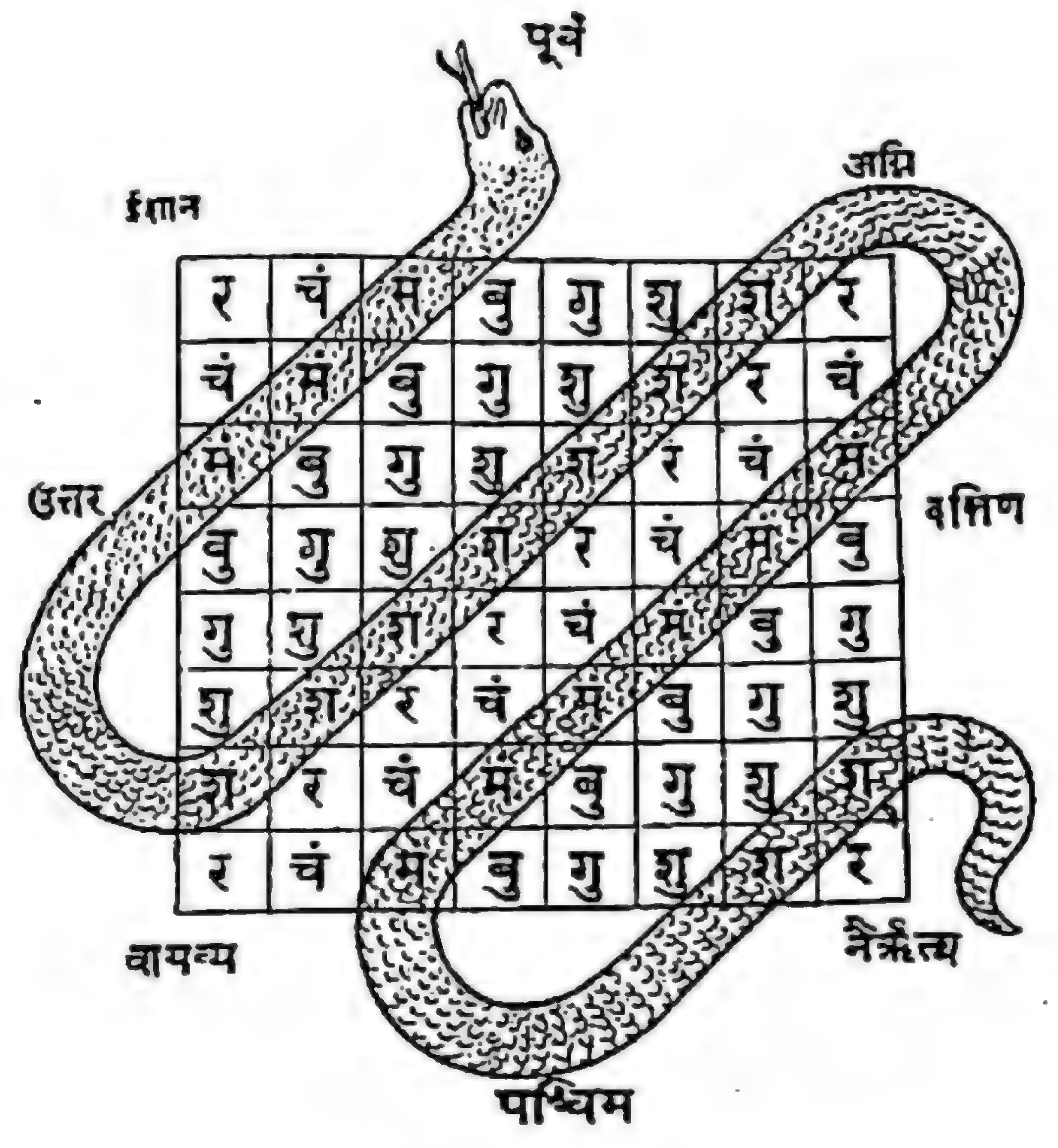

गृहारम्भ के लिए द्रष्टव्य नागचक्र

पर्यन्त उत्तराभिमुखी गृह नहीं बनाए। अमावस्या से शुक्ल पक्ष की अष्टमी पर्यन्त पश्चिमाभिमुख गृह का निषेध जाने और शुक्ल पक्ष की नवमी से शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त दक्षिणाभिमुखी गृह नहीं बनाना चाहिए।

उक्तं च रामदैवज्ञैर्मुहूर्तचिन्तामणौ (12, 17) —

पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरास्यं त्वथ पश्चिमास्यम्।
दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति॥ 82॥

व्याख्या- पूर्णेन्दुतः पूर्णिमातः कृष्णाष्टमीपर्य्यन्तं पूर्वमुखं गृहं न शुभं वदन्ति। कृष्णपक्षनवमीतः चतुर्दशीपर्य्यन्तमुत्तरास्यं न शुभमिति। अथ दर्शादितः अमायाः सकाशात्

शुक्लपक्षाष्टमीपर्य्यन्तं पश्चिमास्यं पश्चिममुखं गृहं न शुभमिति। शुक्लपक्षनवमीतः चतुर्दशी-पर्य्यन्तं दक्षिणास्यं गृह न शुभमिति।

भाषा— इसका अर्थ व्यवहारसमुच्चय के पूर्वोद्धृत श्लोक के समान ही है।

अथ राहुविचारे विशेषमाह नारदः (ज्योतिर्निबन्ध पृ. 172, 1-2; नारदसंहिता 31, 34-35) —

नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम्।
पूर्वादिदिक् शिरो वास्तु' कुर्य्यात्तद्दिङ्मुखं गृहम्॥ 83 ॥
प्रतिकूलमुखं गेहं दुःखशोकभयप्रदम्।
सर्वतोमुखगेहानामेष दोषो न विद्यते॥ 84 ॥

नमस्येति। नभस्यादिषु नभस्यादिर्यस्यासौ भाद्रपदस्तदादिक त्रिषु मासेषु पूर्वादिदिक्यथाक्रमं शिरो राहोः शिरस्तिष्ठतीति शेषः। तद्दिङ्मुखं वास्तु गृह कुर्य्यात्। प्रतिकूलमुख प्रतिपादितादन्यमुखं गेहं गृह दुःखशोकभयप्रद स्यात् दुःखशोकभयदो भवति। परञ्च सर्वतश्चतुर्दिक्षुमु वगेहानामेष दोषः न विद्यते।

भाषा— भाद्रपद से आरम्भ कर तीन-तीन माह तक पूर्वादि दिशाओं में वास्तुपुरुष यानी राहु का मुख रहता है।

अतः जिस दिशा में राहु मुख हो, उसी दिशा में गृह का द्वार रखना शुभ फलदायक होता है। वास्तुपुरुष के मुख की दिशा के अतिरिक्त दिशा में गृह का द्वार बनाने से रोग-शोक एवं भय होता है किन्तु यह फल चारों ही दिशाओं में द्वार के निवेश पर नहीं होता है।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

क्रम	मास	राहु मुख
1.	भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक	पूर्व दिशा
2.	मार्गशीर्ष, पौष, माघ	दक्षिण दिशा
3.	फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	पश्चिम दिशा
4.	ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण	उत्तर दिशा

अथ खननस्थाननिर्णयमाह (शिल्पशास्त्रे 2, 23) —

वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षो च पृष्ठतः।
आयुष्कामः खनेन्नैव वामकुक्षौ खनिः शुभा॥ 85 ॥

व्याख्या- वास्तुक्षेत्रं कल्पयित्वा मध्ये वामपार्श्वसुप्तं वास्तुपुरुषं प्रागादिशिरस्कं

ध्यात्वा, तमेवोत्तानिकं ध्यायेत्। कथं भूतं अष्टाश्विनी भागा यस्मिन् स तथा तं ध्यायेत्। एतदुक्तं भवति- क्षेत्रप्रमाणं कृकलाशरूपं वास्तुपुरुषं प्रकल्प्य ततोऽष्टाविंशतिधा कुर्य्यात्। एवमष्टाविंशतिभागं प्रकल्प्य पुच्छादारभ्य अगेन्दुर्सम्मितलवान् सप्तदशविभागान् त्यक्त्वा अग्रभागे नाभिशिरस्सकांशादेकादशे भागे नाभिरिति तस्मान्ना'ोः सकाशाद्वामे वामभागे एकांशमात्रं खनेत्। तदनन्तरं पाषाणैः पूरयेदित्यर्थः।

भाषा— वास्तुपुरुष के सिर, पूँछ, दक्षिण कुक्षि एवं पृष्ठ भाग में दीर्घायु की कामना वाले पुरुष को खात (गड्ढा) नहीं करना चाहिए। ऐसे में वाम कुक्षि में ही खातकर्म शुभ कहा गया है।

विशेष— शिल्पशास्त्रम् में यह भी आया है कि यदि वास्तुनाग के शिर पर खनन किया जाए तो पत्नी और बच्चों का विनाश हो जाता है। हृदय स्थल पर खात किया जाए तो श्री-सम्पति व प्रभुत्व की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जठर या पेट पर खात किया जाता है तो सभी प्रकार का सुख व यदि नाभि पर खनन हो तो अतिशय भय, गुह्याङ्ग से रोग, जानु से लम्बा प्रवास, जघन पर क्षय तथा पुच्छ प्रदेश पर खनन से मृत्यु मिलती है— दारापत्यप्रणाशो भवति च खनने मस्तके नागराजस्य। श्रीसम्पतिः प्रभुत्वं यदि हृदि जठरे सर्वभागैरुपेतः॥ नाभिगात्रे रतिशयभयदो गुह्यदेशे च रोगो। जान्वो दीर्घप्रवासी क्षयमपि जघने पुच्छदेशे च मृत्युः॥ *(शिल्प. 2, 21-22)*

शिल्पप्रकाश में नागबन्ध के सम्बन्ध में कहा गया है- तोरणं पूर्वभागं च सिद्धः साधारणं यथा। न कुर्यात् वास्तुपूजादि श्रावण भाद्रवे तथा॥ मार्गशीर्षे च पौषे च दक्षिणे नागमस्तकम्। शुभकाले ततो नीत्वा यथाशास्त्रानुसारतः॥ नागबन्धानुसारेण शङ्कुस्थापन-मुत्तमम्। अन्ते करणीयं यन्त्रं प्रासादभित्तिस्थापनम्॥ यतो दैर्घ्य भवेत् शिखा ततो भागत्रयं तथा। तदा गर्तभूमिमध्ये तिर्यग्गर्तः न संशयः॥ गर्भभूमिगर्भपीठे यन्त्रं कुर्यात् मनोरमम्। तदनुसारतो गर्तं पूरयेत् गठनान्तरे॥ *(तत्रैव 1, 56-60)*

अत्र वत्सचक्रं लल्लाचार्योऽप्याह (ज्योतिर्निबन्ध पृ. 167, 6-7) —

त्यजेद्दश शिरोभागे बाह्ये (ह्यग्रे!) सप्तदशांशकान्।
मध्ये नाभिं (कुक्षिं!) विजानीयात्तत्र शङ्कुं निवेशयेत्॥ 86 ॥
अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्गणयेत्करैः।
दैर्घ्यं वा विस्तृतिं चैव कृत्वाऽष्टाश्विमितांशकान्॥ 87 ॥

त्यजेदिति। शिरोभागे वास्तुपुरुषस्य शिरःप्रदेशे दश त्यजेत् दशांशान् त्यजेत् बाह्ये बाह्यप्रदेशे सप्तदशांशकान् त्यजेत्। मध्ये नाभिं नाभिदेशं विजानीयात् तत्र तस्यां नाभौ शङ्कुं निवेशयेत्। अस्थिरस्य वास्तोः वास्तुपुरुषस्य यत्र शिरोमवेत् तत् अष्टाश्वि-मितांशकान् कृत्वा करैः दैर्घ्यं वा विस्तृतिं गणयेत् सङ्ख्यानं कुर्यात्।

भाषा— वास्तुपुरुष को कुल 28 भागों में कल्पित करें और सिर की ओर के दस भाग एवं पूँछ की ओर के 17 भाग त्यागकर मध्य के नाभि भाग में शङ्कुन्यास करना चाहिए। (द्वितीय श्लोक में भी यही मत है) जहाँ पर वास्तुपुरुष का सिर हो, वहाँ से पूरे अङ्ग की लम्बाई या विस्तार की गणना कर उसे अट्ठाईस भागों में बाँटकर नाभिस्थान पर शङ्कु को स्थापित करना चाहिए।

अथ शङ्कुलक्षणमाह राजमार्तण्डे (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 167, 9-12) —

स्याच्चतुर्विंश$_{24}$ विंशा$_{20}$ष्टि$_{18}$द्वादशाङ्गुलकः$_{12}$ क्रमात्।
विप्रादीनां शङ्कुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृतम्॥ 88॥
खदिरार्जुनशालोत्थ युग यत्रतरूद्भवम्।
रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम्॥ 89॥
नीम्बकारञ्जकुटजंवैणवं बिल्ववृक्षजम्।
शङ्कुं त्रिधा विभज्यादौ चतुरस्त्रं ततः परम्॥ 90॥
अष्टास्त्रं च तृतीयांशमजस्त्रमृदुमव्रणम्।
एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्यं शुभे दिने॥ 91॥

व्याख्या— अत्रकुक्षिस्थले चतुर्विंशत्यङ्गुलात्मकः शङ्कुर्निधेयः, क्षत्रियेण विंशाङ्गुलः, वैश्येन षोडशाङ्गुलः, शूद्रेण द्वादशाङ्गुलः। उक्ततरुजः खदिरादितरुभवः। पुनर्यथाप्रमाणशङ्कुं त्रिधा विभज्य आद्यं त्र्यंशंचतुरस्त्रं, द्वितीयं त्र्यंशं अष्टास्त्रं, तृतीयं त्र्यंशं वर्तुलं कुर्य्यात्। एतादृशः शङ्कुं स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृतः सन् निवेश्य इति।

भाषा— उक्त स्थल पर न्यास के लिए विप्र वर्ण को 24 अङ्गुल, क्षत्रिय को 20, वैश्य को 16 एवं शूद्रादि वर्ण को 12 अङ्गुल का शङ्कु बनाना चाहिए। उसे स्वर्ण, वस्त्रादि से अलंकृत करें। शङ्कु को खदिर, अर्जुन, शाल या जो वृक्ष जहाँ हो, उससे बनाएँ। रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल, नीम, करञ्ज, कुटज, वैणव एवं बिल्व वृक्षों में से किसी एक के काष्ठ का भी बनाया जा सकता है। शङ्कु को रचनात्मक रूप से तीन भाग का करें। ये भाग नीचे से क्रमशः चौकोर, अष्टकोण एवं वृत्ताकार होंगे। वह सीधा व अव्रण वाला हो। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त शङ्कु को शुभ दिन में बनाना चाहिए।

अथ रेखाकरणप्रकारमाह लल्लाचार्यः (तत्रैव पृ. 167, 3) —

कुर्यात् सूत्रनिपातं मध्याङ्गुल्याऽथवा प्रदेशिन्या।
अङ्गुष्ठेन वा मणिना कक्षान्तरजमुक्ताभिः॥ 92॥

---

1 'कृत्वा सूत्रनिपातं मध्याङ्गुल्याऽथवा प्रदेशिन्या। अङ्गुष्ठेन च मणिना कक्षान्तरजमुक्ताभिः॥' इति पाठः।

केनाङ्गेन रेखा कर्तव्येत्यत्राह, कुर्व्वीत। मध्याङ्गुल्या मध्यमया, अथवा प्रदेशिन्या तर्ज्जन्या (तर्ज्जनी स्यात्प्रदेशिनीत्यमरः) च पुनः अङ्गुष्ठेन, वा मणिना मुक्तया, वा कक्षान्तरजमुक्ताभिः सूत्रनिपातं कुर्य्यात्।

भाषा— शङ्कु न्यास के बाद सूत्र डालने या रेखाकरण के लिए मध्यमा अङ्गुली, प्रदेशिनी या अँगूठे का प्रयोग करें या मणि अथवा कक्षान्तर से उत्पन्न मोती से रेखा डालनी चाहिए।

अत्र भृगुराह (तत्रैव पृ. 167, 4) —

विप्रः शीर्षं नृपो वक्षो वैश्यश्चोरू परः पदौ।
स्पृष्ट्वा रेखां गृहारम्भे कुर्य्यादग्रेः प्रदक्षिणम्॥ 93॥

किमङ्गं स्पृष्ट्वा पूर्वोक्तरेखा कर्तव्येत्यत्राह, विप्र इति। विप्रो ब्राह्मणः, शीर्षे शिरः, नृपो राजन्यः, वक्षो वक्षस्थलं, वैश्यश्च विट्च, ऊरू, परः शूद्रः, पदौ पादौ स्पृष्ट्वा अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा रेखां कुर्य्यात्।

भाषा— रेखाकरण से पूर्व विप्र को सिर, क्षत्रिय को वक्षस्थल, वैश्य को ऊरु एवं शूद्र को पाँवों का स्पर्शकर, अग्नि की परिक्रमा करनी चाहिए। अर्थात् इन क्रियाओं के बाद ही रेखा डालें।

अथ शिलान्यासमाह वराहसंहितायाम् (52, 110) —

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेनैव स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः॥ 94॥

दक्षिणपूर्व इति। दक्षिणपूर्वे कोणे आग्नेयादिदिशि, स्रग्गन्धधूपाम्बरोपहारि हिरण्यादिभिः, पूजां पूजनं, कृत्वा विधाय, प्रथममादौ शिलां न्यसेत् स्थापयेत्। शेषां परिशिष्टाः, शिलाः प्रदक्षिणेनैव न्यास्याः। एतदुक्तं भवति, प्राग्दक्षिणस्यां दिशि शिलान्यासं विधाय ततो दक्षिणस्यां ततो नैर्ऋत्यां ततः पश्चिमायां ततो वायव्यां तत उत्तरस्यां तत ऐशान्यां ततः पूर्वस्यां दिशि शिलान्यासं कुर्य्यादिति। केचित् 'उत्तपूर्वे कोणे कृत्वा पूजा शिलां न्यसेत् प्रथममिति' पठन्ति। उत्तरपूर्वे चैशानकोणे प्रथमं शिलान्यासं कृत्वा ततः शेषाः प्रदक्षिणेन न्यास्या इत्येतल्लोके स्थपतिषु दृश्यत इति। स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः, एवमनेनैव प्रकारेण स्तम्भाः समुत्थाप्याः। यथा शिलान्यासो विहितस्तथा स्तम्भानामुत्थापनं कार्यमित्यर्थः।

भाषा— दक्षिण-पूर्व कोण यानी आग्नेय कोण में पहली शिला स्थापित कर शेष शिलाओं को प्रदक्षिणादि से क्रमानुसार करना चाहिए। भवन में अपेक्षित स्तम्भों का निवेश भी इसी प्रकार प्रदक्षितः करते जाना चाहिए।

अथ देवालयादौ राहुमुखन्यासमाह मुहूर्तचिन्तामणौ (12, 10)—

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक्शुभा भवेत्॥ 95॥

देवालय इति। अत्र यथासङ्ख्यं सम्बन्धः। देवालयप्रारम्भे राहुमुखं मीनार्कत स्त्रिराश्यवस्थिते सूर्ये ऐशानतो विलोमतो विपरीतं विदिक्षु वायव्यादिषु राहुमुखं स्यात्। यथा मीनमेषवृश्चिकराश्यवस्थिते सूर्ये ऐशान्यां राहुमुखम्। मिथुनकर्कसिंहस्थितेऽर्के वायव्यां राहुमुखम्। कन्यातुलावृश्चिकस्थे ऽर्के नैर्ऋत्यां। धनुर्मकरकुम्भराश्यवस्थिते सूर्ये आग्नेय्यां राहुमुखमित्यर्थः। राहुमुखं गृहारम्भे— एवं गृहद्वारेऽपि गृहारम्भेऽपि सिंहार्कत- स्त्रिराश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखं स्यात्। वृश्चिकादित्रये वायव्यां, कुम्भादित्रये नैर्ऋत्याम्, वृषादित्रय आग्नेय्यां राहुमुखं स्यात्। एवं जलाशयप्रारम्भेऽपि मकरतस्त्रि- राश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखं स्यात्। मेषादितः त्रये वायव्यां, कर्कादित्रये नैर्ऋत्यां, तुलात्रय आग्नेय्यां राहुमुखं स्यादित्यर्थः। फलमाह खात इति। देवालयादिविषयके खाते भूमिशोधने कर्तव्ये सति राहुमुखाक्रान्तदिशः सकाशात्पृष्ठवर्तिनी विदिक् शुभा भवेत्। यथैशान्यां राहुमुखं तत्पृष्ठदिगाग्नेयी, तस्यां प्रथम खातारम्भः शुभफलदः। एवं वायव्यां राहुमुखं तत्पृष्ठविदिङ्नैर्ऋती तस्यां खातारम्भः शुभः, एवं नैर्ऋत्यकोणे राहुमुखे सति वायुकोणे खातारम्भः शुभः, अग्निकोणे राहुमुखे सति ईशानकोणे खातारम्भः शुभ इति। एवं सर्वत्र।

भाषा— देवप्रासाद (मन्दिर, देवालय) के आरम्भ में मीन राशि से 3, 3 राशि में सूर्य के होने पर; मनुष्यालय (गृह, भवन) के आरम्भ में सिंह से 3, 3 राशियों में सूर्य के होने पर; जलस्रोत (जलाशय, तडाग, वापी) के आरम्भ में मकर से 3, 3 राशियों में सूर्य के रहने पर ईशान कोण से विपरीत (ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य एवं आग्नेय) में राहु का मुख होता है जबकि उसके पीछे के कोण में राहु की पीठ मानी जाती है। इसका आशय यह है कि राहु का मुख ईशान कोण में हो तो पीठ आग्नेय कोण में; वायव्य कोण में मुख हो तो पीठ ईशान में; नैर्ऋत्य कोण में मुख हो तो वायव्य में और मुख आग्नेय कोण में हो तो ईशान में पीठ होती है। ऐसे में पीठ के भाग में ही खात करना चाहिए।

अथात्रान्योप्याह विश्वकर्मा (पीयूषधारा. 12, 19) —

ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु।
शेषस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्चतुर्थम्॥ 97॥

ईशानेति। अयं त्रिप्रकारो वास्तुरुक्तस्तत्रवास्तुर्यस्यां दिशि तद्दिङ्मुखगृहं कार्यमित्येवमर्थः।

भाषा— ईशान कोण से काल सर्प के सरकने पर सृष्टि (आरम्भ) को छोड़कर

दिशाओं की गणना करनी चाहिए। तथा वास्तु के मुख, मध्य, पूंछ एवं पार्श्व भाग को छोड़कर चतुर्थ स्थान (कुक्षि) में खात करना चाहिए।

विशेष— दैवज्ञ नारायणभट्ट ने इसके कुछ के परिणाम को भी लिखा है कि यदि काल सर्प के फण पर खात होगा तो मरण, मध्य में पुत्र ... एवं पूंछ में स्वजनों का क्षय होता है। ऐसे में विवाह की वेदी आदि के निर्माण में शून्य प्रदेश का ही ध्यान रखना चाहिए। वास्तुपुरुष को ही वस्तुतः कालसर्प कहा गया है। यह मान्यता बहुत पुरानी है— गुर्जरदेशे क्वचित् कालसर्पमवलोक्य तत्पृष्ठदिशि प्रथम स्तम्भनिष्ठां कुर्वन्ति। तदसत्। यतस्तदवलोकनं विवाहवेद्यां कोणेषु शून्यागर्त स्तम्भान् रोपयन्ति ...। तदप्येकदेशीयं न बहुसम्मतम्।[1]

ज्योतिश्चिन्तामणौ (तत्रैवोद्धृत) —

वृषार्कादित्रयं वेद्यां सिंहादि गणयेद् गृहे।
देवालये च मीनादि तडागं मकरादिकम्॥ 98॥

वृषार्कादिति। सुगमम्।

भाषा— वृष, मिथुन एवं कर्क राशि के सूर्य में वेदी आदि के लिए; सिंह, कन्या एवं तुला के सूर्य में गृहादि; मीन, मेष एवं वृष में सूर्य से देवालयादि एवं मकर, कुम्भ एवं मीन के सूर्य में जलाशय के लिए खात करना चाहिए, ऐसा ज्योतिश्चिन्तामणि में कहा गया है।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

कार्य	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य	आग्नेय
देवालय	मीन मेष वृष	मिथुन कर्क सिंह	कन्या तुला वृश्चिक	धनु मकर कुंभ
गृह	सिंह क. तुला	वृश्चिक धनु मकर	कुंभ मीन मेष	वृष मिथुन कर्क
जलाशय	मकर कुं. मी.	मेष वृष मिथुन	कर्क सिंह कन्या	तु. वृश्चिक धनु
खातकोण	वायव्य	नैर्ऋत्य	आग्नेय	ईशान

अथ वास्तुनक्षत्राणयुक्तानि गर्गेण (ज्यातिर्निबन्ध पृ. 174, 10) —

त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये।[2]
धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते॥ 99॥

1. तथा च मार्तण्डवल्लभाटीकायां— ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु। पश्चाद्गतिस्तन्मुखमध्यपुच्छं त्रिकं त्रिकं वै वृषसङ्क्रमादेः। अहेः फणायां मरणं परस्य मध्ये कुमार्याः स्वजनस्य पुच्छे। विधेयमेकं किलशून्यदेशे विवाहवेद्यां निखनेच्च कीलम्॥ (मुहूर्तमार्तण्ड 6, 17)
२. 'त्र्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये।' इति पाठः।

त्र्युत्तरेति। सुगमम्।

भाषा— गृहारम्भ के लिए गर्ग ने उत्तरा त्रय (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ व उत्तरा भाद्रपद), रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, धनिष्ठा, शततारक एवं रेवती इन ग्यारह नक्षत्रों को शुभ कहा है।

अथान्यत्राप्युक्तम् —

अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्।
स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते॥ 100॥[1]

अश्विन्येति। सुगमम्।

भाषा— अन्यत्र आया है कि गृहारम्भ अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त एवं अनुराधा नक्षत्रों में करना प्रशस्त होता है।

अथ सूतिकागृहनिर्माणनक्षत्राण्याह वराहः (पीयूषधारा. 12, 15) —

हस्तादित्यशशाङ्कपुष्यपवनप्रोन्येशमित्रोत्तराचित्राश्वि-
श्रवणेषु वृश्चिकघटौ त्यक्त्वा (हित्वा!) विरिक्ते तिथौ।
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनां वारेऽनुकूले विधौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमङ्करः कीर्तितः॥ 101॥

हस्त इति। हस्तः, आदित्यः पुनर्वसूः, शशाङ्को मृगशिरा, तिष्य पुष्यः, पवनः स्वाती, प्राजेशः शतभिषा, मित्रोऽनुराधा, उत्तरात्रयं, चित्रा, अश्वि अश्विनी, श्रवणा एतेषु त्रयोदशनक्षत्रेषु। वृश्चिकघटावलिकुम्भलग्नौ, त्यक्त्वा विहाय, अन्यलग्नेषु। विरिक्ते (चतुर्थी नवमी चतुर्दशी भिन्ने) तिथौ। शुक्रो भृगुः, आचार्यो गुरुः, शनैश्चरो यमः, ज्ञो बुधः, शशी चन्द्र एतेषां वारे दिवसे। विधौ चन्द्रे, अनुकूले स्वराशितोऽनुकूलस्थानस्थे सति, सद्भिः पण्डितैः, वेश्मनि सद्मनि, सूतिकागृहविधिः सूतिकागृहनिर्माणविधिः, क्षेमङ्करः कल्याणकरः, कीर्तितः कथितः।

भाषा— हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, शतभिषा, अनुराधा, उत्तरा त्रय, चित्रा, अश्विनी एवं श्रवण संज्ञक तेरह नक्षत्रों में; वृश्चिक एवं कुम्भ को त्यागकर अन्य लग्नों में; रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, चतुर्दशी एवं नवमी) को छोड़ अन्य शुभ तिथियों में; शुक्र, वृहस्पति, शनि, बुध एवं सोमवार में और अपनी राशि से चन्द्रमा की अनुकूलता को देखकर भवन में सूतिकागार बनाना कल्याकारी होता है।

-----

1. तथा च ऋक्षोच्चयेऽप्येवमाह— चित्रा शतभिषा स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसू। रोहिणी रेवती मूलं श्रवणोत्तरफाल्गुनी॥ धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रपदोत्तरा। अश्विनी मृगशीर्षे द्वे अनुराधा तथैव च॥ वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः। स प्राप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः॥

अथ गृहनिर्माणविधौ दुष्टयोगानाह वास्तुराजवल्लभे (11, 13) —

सूर्ये कार्मुकमीनगे सुरगुरौ सिंहे विधौ दुर्बले
गण्डान्तव्यतिपातवैधृतिदिने दग्धे तिथौ भे तथा।
शुक्रेऽस्तेऽथ गुरौ च पातसमये विष्ट्यां च मासाधिके
चन्द्रे पापविलोकिते च सहिते कार्यं न किञ्चिच्छुभम्॥ 102॥

सूर्य इति। सूर्ये रवौ, कार्मुकमीनगे धनुर्मीनगे, सुरगुरौ बृहस्पतौ, सिंहे, विधौ चन्द्रे, दुर्बले बलरहिते, गण्डान्तव्यतिपातवैधृतिदिने गण्डान्तव्यतिपातवैधृतियोगत्रयान्वितदिवसे, दग्धे दग्धतिथौ, तथा दग्धे भे नक्षत्रे, शुक्रेऽथ च गुरौ अस्ते अस्तङ्गते, पातसमये पातयोगान्वितदिने, विष्ट्यां भद्रायां, पुनः मासाधिके अधिमाससमये, चन्द्रे पापविलोकिते पापग्रहनिरीक्षिते, सहिते, पापयुक्ते च, एतादृशे पूर्वप्रतिपादितसमये किञ्चिच्छुभं किञ्चिदपि शुभकार्यं न कार्यं न विधेयम्।

भाषा— धनु अथवा मीन राशि का सूर्य हो, गुरु सिंहस्थ हो, चन्द्रमा दुर्बल हो, गडान्त नामक योग, व्यतिपात योग, वैधृति योग, दग्धा तिथि या नक्षत्र; शुक्र अस्त, गुरु अस्त, पात योग, विष्टिकरण, अधिकमास, चन्द्रमा पर पाप ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो अथवा चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ पड़ता हो तो ऐसे दिनों में कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

अत्रान्यदप्याहे गृहनिवेशनम् (11, 14) —

आदौ भूमिपरीक्षणं शुभदिने पश्चाच्च वास्त्वर्चनं
भूमेः शोधनकं ततोऽपि विधिवत् पाषाणतोयान्तकम्।
पश्चाद्वेश्मसुरालयादिरचनार्थं पादसंस्थापनं
कार्यं लग्नशशाङ्कशाकुनबलैः श्रेष्ठे दिने धीमता॥ 103॥

आदौविति। शुभदिने पूर्वप्रतिपादितशुभदिवसे, आदौ प्रथमं, भूमिपरीक्षणं वास्तुकर्तुं योग्यानवेतीत्याकारकं परीक्षणं कार्यम्। पश्चातदनन्तरं वास्त्वर्चनं वास्तुपुरुषस्यार्चनं कार्यम्। ततोऽनन्तरं, विधिवद्विधिपूर्वकं, पषाणतोयान्तकं प्रस्तरजलान्तकं, भूमेः पृथिव्याः, शोधनकं कार्यम्। पश्चादनन्तरं वेशमसुरालयादिरचनार्थं भवनदेवालयादिविधानार्थं, लग्नशशाङ्कशाकुन बलैः लग्नं, शशाङ्कश्चन्द्रः, शकुनं च तेषां लग्नशशाङ्कशाकुनानां बलैः, श्रेष्ठे उत्तमे दिने धीमता मतिमता, पादस्थापनं शिलान्यासः कार्यः।

भाषा— मन्दिर, भवनादि निर्माण से पूर्व शुभ दिन भूमि की परीक्षा कर वास्तु देव का पूजन करें। पूजनोपरान्त भूमि को कठोर भाग या पानी आने तक खोदकर शोधित करें। इसके उपरान्त लग्न, चन्द्रमा एवं शकुन तथा श्रेष्ठ दिवस देखकर बुद्धिमानों को आधारशिला रखनी चाहिए।

अथ वास्तुकर्मणि शुभर्क्षवाराद्यमाहे (11, 15) —

वास्तोः कर्मणिधिष्ण्यवारतिथयोऽश्विन्युत्तरा रेवती
हस्तादित्रयमैत्रतोयवसुभे पुष्यो मृगो रोहिणी।
निन्द्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दा तिथि-
र्नेष्टा वैधृतिगण्डशूलपरिघा व्याघातवज्रावऽपि॥ 104॥

वास्तोरिति। वास्तोः कर्मणि धिष्ण्यवारतिथयो धिष्ण्यानि वाराश्चतिथयश्च धिष्ण्यवारतिथयः विहितनक्षत्रवारतिथयः, कथ्यन्त इति शेषः। अश्विनी, उत्तरात्रयं, रेवती, हस्तादित्रयं हस्तश्चित्रा स्वाती, मैत्रोऽनुराधा, तोयं पूर्वाषाढः, वसुर्धनिष्ठा, पुष्यः, मृगो मृगशिरा, रोहिणी, एतानि चतुर्दशनक्षत्राणि शुभानि स्युः। भूसुतभास्करौ मङ्गलसूर्यौ निन्द्यौ अशुभौ ज्ञेयाविति शेषः। पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, पञ्चदशी), नन्दा (प्रतिपत्, षष्ठी, एकादशी) च तिथिः शुभदा शुभदायिनो। वैधृतिगण्डशूलपरिधा योगा नेष्टा नेष्टफलदा भवन्ति। व्याघातवज्रावपि योगौ नेष्टफलदौ भवतः इति।

भाषा— वास्तुकर्म में नक्षत्र, वार व तिथियों के अनुसार कार्य करने की दृष्टि से अश्विनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, मृगशीर्ष व रोहिणी नक्षत्र प्रमुख हैं। वारों में मङ्गल व रविवार नहीं लेना चाहिए। पूर्णा (पञ्चमी, दशमी एवं पूर्णिमा) एवं नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठि, एकादशी) तिथियाँ ग्रहण करना श्रेष्ठ है, लेकिन वैधृति, गण्ड, शूल, परिघ, व्याघात और वज्रपात जैसे योग स्वीकारना अप्रशस्त होता है।

अथ शुभाशुभयोगकरणलग्नान्याहे (11, 16)—

विष्कम्भव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः
शस्तं नागबवाख्यतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत्।
मौहूर्तं त्वथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरोगाद्रिकं श्रेष्ठं च
द्वितयं तुला वृषघटौ युग्मं धनुःकन्यके॥ 105॥

विष्कुम्भव्यतिपातकाविति। विष्कुम्भव्यतिपातकौ योगौ न शुभौ। परेऽन्ये योगाः शोभनाः शुभफलदाः स्युः। नागबवाख्यतैतिलगरं करणं शस्तं शुभफलदं भवति। युग्मां समां, तिथि (द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, दशमी, द्वादशी चतुर्दशी) वर्जयेत्। अथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरागाद्रिकं मौहूर्तं श्रेष्ठं, द्वितयं च मौहूर्तं श्रेष्ठं, द्वितयं च मौहूर्तं श्रेष्ठमिति। तुला, वृषघटौ वृषकुम्भौ, युग्मं मिथुनं, धनुः, कन्यके च शुभप्रदे भवत इति।

भाषा— इसी प्रकार से इसमें विष्कम्भ एवं व्यतिपात दोनों योग श्रेष्ठ नहीं है। [illegible] अतिरिक्त सारे योग श्रेष्ठ स्वीकारे जाते हैं। इसी तरह करणों में नाग, बव, तैतिल व [illegible] श्रेष्ठ हैं लेकिन युग्म तिथियों (2, 4, 6, 8, 10, 12, 14, 30) का त्याग करना

चाहिए। दिन में दो घड़ियों के मुहूर्तों में तेरहवाँ, आठवाँ, नवाँ, पाँचवाँ, तीसरा, छठवाँ, सातवाँ और दूसरा मुहूर्त श्रेष्ठ है। इसी तरह तुला, वृष, कुम्भ, मिथुन, धनु और कन्या लग्न भी प्रशस्त कहे गए हैं।

अथ लग्नशुद्धिमाह (11, 17)—

द्व्यङ्गे वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्ने शुभैर्वीक्षिते
सौम्यैर्वीर्यसमन्वितैश्च दशमे निर्माणमाहुर्बुधाः।
तैर्वा धीनवकेन्द्रगैः सुफलदं पापैस्त्रिषष्ठायगैः
क्रूरो ह्यष्टमसंस्थितोऽपि मरणं कर्तुर्विधत्तेतराम्॥ 106॥

द्व्यङ्ग इति। द्व्यङ्गे द्विःस्वभावराशौ, वा स्थिरभे स्थिरराशौ लग्ने, सौम्यसहिते शुभग्रहयुते, शुभैः शुभग्रहैः, वीक्षितेऽवलोकिते सति, कर्तुर्वास्तुकर्तुः शुभं स्यात्। वीर्यसमन्वितैः बलयुक्तैः, सौम्यैः शुभगृहैः दशमे दशमस्थाने स्थितैः, तदा वास्तुकर्तुः शुभंस्यात्। वा तैः सौम्यै धीनवकेन्द्रगैः पञ्चमनवमकेन्द्रस्थानस्थैः, पापैः पापग्रहैः त्रिषष्ठायगैः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थैस्तदा वास्तुकर्तुः सुफलदं शुभफलकारकं, बुधाः पण्डिताः आहुः कथयन्ति। क्रूरः पापग्रहः, अष्टमसंस्थितः अष्टमस्थानस्थः, कर्तुर्वास्तुकर्तुः तरामत्यर्थेन, मरणं निधनं, विधत्ते करोति। अन्यदपि उक्तं तेनैव— द्व्यङ्गे स्थिरे वा भवने विलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा। कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्च सौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्य सन्तः॥ शुद्धकेन्द्रनिधनस्थिरोदये सौम्यवर्गमनुजोद्गमेऽपि च। सन्निवेश उदितो हि वास्तुनः सूरिभिर्न तु चरोदये क्वचित्॥ *(पीयूषधारा 12, 18)*

भाषा— द्विस्वभाव लग्न (3, 6, 9, 12 बुध, गुरु की राशि) अथवा स्थिर लग्न (2, 5, 8, 11) के सम्मुख यदि सौम्य ग्रह हो या ऐसे लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि, दसवें स्थान में पुष्ट सौम्य ग्रह हो, तब गृहारम्भ करें। पाँचवें, दूसरे व केन्द्र स्थान में शुभ ग्रह बली हो तो श्रेष्ठ फलद जाने। तीसरे, छठवें व ग्यारहवें स्थान में पापग्रह हों तो भी शुभद है परन्तु गृहारम्भ के समय क्रूर ग्रह आठवें भवन में हो तो मृत्युकारक है।

अथ गृहारम्भे पञ्चाङ्गशुद्धिमाह रामदैवज्ञः (12, 18) —

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेऽङ्गे विपञ्चके।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्यायारिगैः खलैः॥ 107॥

भौमार्केति। भौमार्कौ मङ्गलसूर्यौ वारौ, रिक्ताश्च (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) प्रसिद्धाः, अमा अमावास्या, आदिः प्रतिपत्, उपलक्षणत्वादष्टम्यपि, एतैरूने वर्जिते काले, तथा पञ्चकं धनिष्ठादिका पञ्चनक्षत्री पञ्चकमित्युच्यते। विगतं पञ्चकं यस्मिन्नेवं विधे च काले सति। चरोने चरराशिभिर्मेषकर्कतुलामकरैरूनेऽङ्गे लग्ने स्थिरे द्विस्वभावे च गृहारम्भः कार्यः। व्यष्टान्त्यस्थैरिति। व्यष्टान्त्यस्थैः अष्टमस्थानद्वादशस्थान व्यतिरिक्तस्थानस्थैः शुभैः,

खलैः पापग्रहैः, त्र्यायारिगैः तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थैर्गृहारम्भः कार्यः।

भाषा— वारों में मङ्गलवार एवं रविवार; रिक्ता तिथि; अमावस्या, प्रतिपदा (उपलक्षणात् अष्टमी)— इनसे रहित तिथियों एवं वारों में (2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15 एवं सोम, बुध, गुरु, शुक्र व शनिवार) में; चर लग्न (1, 4, 7, 10) एवं सिंह को छोड़कर शेष लग्नों (2, 3, 6, 8, 9, 11 व 12) लग्नों में; आठवें एवं 12वें स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों में शुभ ग्रहों के विद्यमान रहने पर, 3, 6, 11वें स्थान में पाप ग्रहों के रहने पर गृहारम्भ किया जाना प्रशस्त कहा गया है।

अथ तिथिफलमाह व्यवहारसमुच्चये (पीयूषधारा. 12, 17) —

दारिद्र्यं प्रतिपत् कुर्य्याच्चतुर्थी धनहारिणी।
अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी॥ 108॥
अमायां राजभीतिश्च चतुर्दश्यां स्त्रियः क्षयः॥ 109॥[1]

दारिद्र्यमिति। प्रतिपत् दारिद्र्यं दरिद्रतां कुर्य्यात्। चतुर्थी धनहारिणी धननाशिनी भवेत्। अष्टमी उच्चाटनं करोति। नवमी शस्त्रघातिनी भवेत्। अमायां राजभीतिर्नृपतिभयं स्यात्। चतुर्दश्यां स्त्रियोयोषितः क्षयो नाशः स्यात्।

भाषा— व्यवहारसमुच्चय का मत है कि यदि प्रतिपदा में गृहारम्भ किया जाए तो दारिद्र्य होता है। चतुर्थी धनहारिणी है। अष्टमी उच्चाटन करने वाली है जबकि नवमी आयुधघातिनी सिद्ध होती है। अमावस्या में गृहारम्भ से राजभय होता है जबकि चतुर्दशी में गृह कार्यारम्भ करने से स्त्री हानि होती है।

अथात्र ग्रन्थकारेण निष्कृष्टार्थो विलिख्यते —

शीघ्रोपस्थित्यर्थं वास्तुमासनक्षत्रवारतिथिलग्नशुद्धिर्यथा—फाल्गुनवैशाखश्रावणकार्तिकमार्गशीर्षमासानामन्यतमे मासे, शुक्लपक्षे, रिक्तामाष्टामीवर्जिततिथौ, रविकुजरहिते वासरे, उत्तरात्रयं रोहिणी मृगचित्रारेवत्यनुराधाशतभिषर्क्षस्वातीधनिष्ठाहस्तपुष्यनक्षत्राणामन्यतमे नक्षत्रे, स्थिरलग्ने द्विःस्वभावलग्ने च व्ययाष्टरहितैः, शुभ-ग्रहैः, पापैस्त्रिषष्ठलाभगतैः एतादृशे समये नूतनगृहारम्भः शुभ इति।

भाषा— यदि अतिशीघ्र कार्य करना हो तो वास्तु के लिए आवश्यक मास, नक्षत्र, दिन, तिथि एवं लग्नशुद्धि निम्नानुसार ज्ञातव्य है— फाल्गुन, वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष महीनों में से किसी एक मास को ग्रहण करें। शुक्ल पक्ष को लें। रिक्ता तिथि, अमावस्या व अष्टमी को त्यागकर अन्य किसी तिथि को लें। रविवार एवं

---

1. 'दर्शे राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनम्' इति पाठः। पक्षफलञ्च तत्रैव— शुक्लपक्षे भवेत् सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्। तस्माद्विचार्य कर्तव्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥ (पीयूषधारा. 12, 17)

मङ्गलवार को त्यागकर अन्य वार को ग्रहण करें। उत्तरा त्रय, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त एवं पुष्य नक्षत्रों में कोई एक ग्रहण करें। स्थिर लग्न अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ तथा द्विस्वभाव लग्न यानी मिथुन, कन्या, धनु व मीन लग्नों में और बारहवें, ग्यारहवें एवं आठवें स्थान में शुभ ग्रह (बुध, बृहस्पति, शुक्र, पूर्णचन्द्रमा) नहीं हो तथा तीसरे, छठवें एवं ग्यारहवें स्थान में खल ग्रह (सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु व केतु व इनसे युक्त बुध एवं क्षीण चन्द्रमा) हो तो ऐसे उपयुक्त समय का चयन कर नवीन गृहारम्भ किया जाना प्रशस्त कहा गया है।

अथ खातारम्भादिनक्षत्राण्याह लल्लः (वास्तुसौख्यं 450)' —

अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम्।
तिर्यङ्मुखैर्द्वारि कपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैस्तु॥ 110॥

अधोमुखैरिति। अधोमुखैर्भैः अधोमुखैर्नक्षत्रैः खातं विदधीत। ऊर्ध्वमुखैर्नक्षत्रैः शिलां पट्टञ्च तथैव विदधीत। तिर्यङ्मुखैर्नक्षत्रैः द्वारिकपाटदानं विदधीत। मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैः गृहप्रवेशं विदधीत।

भाषा— अधोमुख संज्ञक नक्षत्र (मूल, कृत्तिका, मघा, विशाखा, भरणी, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद) में खातकर्म किया जाना चाहिए। ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्र (पुष्य, आर्द्रा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा, रोहिणी, धनिष्ठा) में शिलान्यास एवं ऊर्ध्वपट्ट न्यास करना चाहिए। तिर्यङ्मुख संज्ञक नक्षत्र (ज्येष्ठा, पुनर्वसु, हस्त, अश्विनी, मृगशिरा, रेवती, अनुराधा, स्वाती, चित्रा) में द्वार, उसके लिए किंवाड़ और सवारी यान का कार्य करें और मृदु संज्ञक नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती) एवं ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी) में गृहप्रवेश कार्य करना शुभ है।

अथ प्रसङ्गादधोमुखनक्षत्राणि तत्र कर्तव्यञ्चाह (राजवल्लभ. 13, 1) —

पूर्वात्रयं सार्पयमाग्निधिष्ण्यमधोमुखं मूलमघाविशाखाः।
खाते च भूम्यां निधिरोपणे च तथोग्रकार्ये मुनयो वदन्ति॥ 111॥

भाषा— पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, आश्लेषा, भरणी, कृत्तिका, मूल, मघा व विशाखा नक्षत्रों को अधोमुखी माना गया है। इन नक्षत्रों में भूमि में खात करना, धन गाड़ना तथा अन्य क्रूर कार्यों को करना चाहिए।

तिर्यङ्मुखनक्षत्राणि तत्र कर्तव्यञ्चाह (तत्रैव 13, 2) —

चित्राश्विमैत्रादितिवायुधिष्ण्यं ज्येष्ठामृगी पौष्णकरौ तथैव।
स्याद्वाहने यन्त्रहलप्रवाहे चतुष्पदाद्येऽपि च पार्श्ववक्त्रम्॥ 112॥

भाषा— चित्रा, अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती, ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती और हस्त नक्षत्र तीर्यङ्मुख या पार्श्वमुख होते हैं। इनका उपयोग वाहन, चक्रादि यन्त्र, हल जोतने या कर्षण कार्य तथा पशुधन विषयक कार्यों में किया जाना चाहिए।

तत ऊर्ध्वमुखनक्षत्राणि तत्र कर्तव्यञ्चाह (तत्रैव 13, 3) —

पुष्योत्तरार्द्राश्रुतयो धनिष्ठा स्याद्रोहिणी वारुणमूर्ध्ववक्त्रम्।
प्राकारदेवालयच्छत्रहर्म्यराज्याभिषेकादि च याति सिद्धम्॥ 113॥

1. ज्योतिर्निबन्धे 'वास्तुप्रदीपस्तु' (पृ. 175, 18)

भाषा—पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपद, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी और शतभिषा नक्षत्र ऊर्ध्वमुख कहे जाते हैं। इन नक्षत्रों में दुर्गार्थ परकोटा निर्माण, मन्दिर, छत्र-मुकुट धारण, हवेली निर्माण और राज्याभिषेक आदि कार्य सिद्ध होते हैं।

अथ गृहकूपनिर्माणे दिग्वशेन फलमाह रामदैवज्ञः (12, 20) —

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थहानिस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्॥ 114॥

व्याख्या- वास्तोर्गृहस्य मध्यदेशे मध्यभागे, कूपे जलकूपे सति, स्वामिनो गृहपतेरर्थनाशः स्यात्। अथैशान्यादिषु सृष्टिमार्गेणाष्टसु दिक्षु पुष्टिरित्यादि फलम्। यथा ऐशान्यां कूपे पुष्टिः, पूर्वस्यां कूपे ऐश्वर्यवृद्धिः, आग्नेय्यां कूपे पुत्रनाशः, दक्षिणस्यां कूपे स्त्रीविनाशः, नैर्ऋत्यां कूपे गृहकर्तुर्मृतिः पश्चिमायां कूपे सम्पत् शोभनम्, वायव्यां कूपे शत्रुतः सकाशात्पीडा, उत्तरस्यां कूपे सुखं गृहस्वामिन इति।

भाषा— वास्तुक्षेत्र के मध्य भाग में यदि कुआँ बनवाया जाए तो धन का नाश हो व दरिद्रता का आगमन होता है। ईशान कोण में कूप से पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य में अभिवृद्धि, अग्निकोण में पुत्र हानि, दक्षिण में स्त्री नाश, नैर्ऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में सम्पदा, वायव्य में शत्रु से पीड़ा और उत्तर में कुआँ बनवाएँ तो सुख प्राप्ति होती है।

स्पष्टार्थ कूपचक्रम्—

ईशान		पूर्व		आग्नेय
उत्तर	पुष्टि सौख्य शत्रुपीड़ा	ऐश्वर्य धननाश संपत्ति	पुत्रनाश स्त्रीनाश मृत्यु	दक्षिण
वायव्य		पश्चिम		नैर्ऋत्य

उक्तं चात्र वसिष्ठेन (पीयूषधारा, तत्रैव; वसिष्ठसंहिता 39, 189-190) —

ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत्।
सम्पच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात्॥ 115॥
मध्ये भागे कृते कूपे धनहानिश्च निश्चयात्।
(तस्मात्सम्यग्विचार्याथ कूपं कुर्याच्च बुद्धिमान्)॥ 116॥

भाषा— अर्थ सुगम है और चक्रानुसार जानना चाहिए।

अथ सूर्यभात्कूपारम्भे चक्रमाह —

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशस्त्रिभिस्त्रिभिः।
स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं च [1]मिश्रितम्॥ 117॥
मिष्टं जलं क्षारजलं [2]क्रमेण पुरातनैरुक्तमतिप्रवीणैः॥ 118॥

कूपे इति। कूपे कूपचक्रे, अर्कभात् सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात्, मध्यगतैः मध्यस्थैः, त्रिभिर्भैः त्रिभिर्नक्षत्रैः, स्वादूदकं स्वादुजलं ज्ञेयम्। पूर्वदिशः सकाशात् त्रिभिस्त्रिभिर्नक्षत्रैः क्रमेण स्वल्पं जलं, स्वादुजलं, जलक्षयं, स्वादूदकं, क्षारजलं, मिश्रितं, च मिष्टं जल, क्षारजलं, अतिप्रवीणैः अतिधुरन्धरैः, पुरातनैः प्राचीनैः, उक्तं प्रतिपादितम्।

भाषा— कूपचक्र का न्यास करने के लिए मध्य में सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से गिनकर तीन नक्षत्र रखें। इसके बाद पूर्वादि क्रम से तीन-तीन नक्षत्र रखें और जिस दिशा में जो नक्षत्र पड़ता हो, उसे देखकर चक्र के अनुसार फल जानना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्रम्—

मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
3	3	3	3	3	3	3	3	3
स्वादु	स्वल्प	स्वादु	जलहानि	स्वादु	क्षार	मिश्रित	मिष्ट	क्षार

अथ प्रकारान्तरेण कूपचक्रमाह ज्यौतिषप्रकाशे —

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूपचक्रं वरानने।
रोहिण्यादि लिखेच्चक्रं त्रयं मध्ये प्रतिष्ठितम्॥ 119॥
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु त्रिभिमार्गेण दीयते।
मध्ये शीघ्रं जलं स्वादु पूर्वे भूमिश्च खण्डिता॥ 120॥
आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जलं तथा।

1. 'शिलाक्ष' इति पाठः।
2. 'क्रमात्फलं ज्ञेयं बुधैर्भास्करभात्सदा ग्रहैः' इति पाठः।

नैर्ऋत्ये चामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम्॥ 121॥
वायव्येऽपि जलं हन्ति चोत्तरे स्वादुकं जलम्।
ईशाने कटुकं क्षारमम्लतीक्ष्णसमं जलम्॥ 123॥
(दिग्विभागेन विज्ञेयमेवं वारिविनिश्चयम्)।

अथात इति। हे वरानने अथातः अस्मादनन्तरं कूपचक्रं सम्प्रवक्ष्यामि। रोहिण्यादि चक्रं रोहिणीनक्षत्रमारभ्य चक्रं लिखेत्। मध्ये मध्यकोष्ठे त्रयं त्रिसंख्यकं नक्षत्रं प्रतिष्ठितं कार्यम्। पूर्वादिदिक्षु सर्वासु त्रिभिर्मार्गेण त्रिभिनक्षत्रक्रमेण दीयते। मध्ये मध्यस्थत्रिनक्षत्रे कूपारम्भे शीघ्रं स्वादुजलं स्यात्। पूर्वे पूर्वदिशि संस्थितनक्षत्रे खण्डिता भूमिः स्यात्। आग्नेय्यां मग्निकोणस्थनक्षत्रे, सुजलं सुष्ठुजलं प्रोक्तं कथितम्। दक्षिणे दक्षिणस्थनक्षत्रे निर्जलं जलहीनं स्यात्। नैर्ऋत्ये नैर्ऋत्यकोणे वारि जलं, अमृतं अमृतसदृशं ज्ञेयम्। पश्चिमे पश्चिमदिशि, शोभनं सुन्दरं जलं स्यात्। वायव्ये वायव्यकोणेऽपि निश्चयेन जलं, हन्ति नाशयति। उत्तरदिशि स्वादुकं जलं स्यात्। ईशाने कटुकं, क्षारं, अम्लतीक्ष्णसमं जलं ज्ञेयम्।

भाषा— (शिव पार्वती से कहते हैं) अब कूपचक्र कहता हूँ। इसमें रोहिणी नक्षत्र के क्रम से तीन नक्षत्र मध्य में और तीन नक्षत्र पूर्वादि आठों दिशाओं में स्थापित करे। इसके अनुसार फल निम्न चक्रानुसार होगा।[1]

स्पष्टार्थ रोहिणीभात् कूपचक्रम् —

दिशा	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
नक्षत्र	3	3	3	3	3	3	3	3	3
नाम	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशाखा	मूल	श्रवण	पूभा	अश्वि.
नक्षत्र	मृग.	पुष्य	पूफा	चित्रा	अनु.	पूषा	धनिष्ठा	उभा	भरणी
	आर्द्रा	आश्लेषा	उफा	स्वाती	ज्येष्ठा	उषा	शत.	रेवती	कृति.
फल	शीघ्र	खंडित	सुजल	निर्जल	अमृत	शोभन	जलक्षय	स्वादु	कटु

1. तथा च कूपप्रश्ने— 'कर्किकन्यातुलाचापवृश्चिका नक्रमीनकौ। यदि स्थानं भवेदत्र शोभनं जलमुच्यते॥' तथा चान्ये—कूपं कुम्भगतं श्रेष्ठं मध्यमं मीनमेषयोः। अधमं मकरस्थं हि कूपान्येवं विदुर्बुधाः॥ बहिः सञ्चारमाश्रित्य कूपद्वयमथापरम्। +++++++++++++ तत् कूपद्वयमुच्यते॥ कूपद्वयमथान्यच्च प्राकाराद् बहिरुच्यते। मेषस्वामिति यं प्राहुर्मीने वारि गुरु (स्मि ?स्मृ)तम्॥ कुम्भे मीनगते कूपे लघुवारि च शोभने। मनोदुःखहरे चैव पुत्रपौत्रविवर्धने॥ वायव्ये च तथा कूपे गुणदोषविवर्जिते। विषभागे विषं विद्यादमृतेऽमृतमुच्यते॥ वंशे वंशक्षयं विद्यात् स्तम्भस्थे सर्वसङ्करम्। क(र्म ?र्ण) सूत्रे मृतिं क(र्म ?र्ण) बहिःसूत्रेषु विस्मृतिः॥ चोरतागुणोत्पाता गृहसूत्रे विदुर्बुधाः। प्राकारस्य बहिःसूत्रे तडागे शुभगोचरे॥ (इति सर्वदेवानां मते, वास्तुविद्यायां उद्धृते)

अथ दिक्पतत्वेन गृहाण्याह रामदैवज्ञः (12, 21) —

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजश्च धान्य-
भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम॥ 124॥

स्नानेति। पूर्वतः पूर्वाद्यष्टदिक्षु स्नानगृहादीनि गृहाणि स्युः। यथा पूर्वस्यां स्नानगृहं, आग्नेय्यां पाकगृहं, दक्षिणस्यां शयनगृहं, नैर्ऋत्यां शस्त्रगृहं, पश्चिमायां भोजगृहं, वायव्यां धान्यसङ्ग्रहगृहं, उत्तरस्यां भाण्डारस्य द्रव्यस्य गृहं, ऐशान्यां दैवतगृहं स्यादित्यर्थः। तन्मध्यतः इत्यादि। पूर्वाद्यष्टदिक्षु तन्मध्यतस्तयोर्दिग्विदिशोर्मध्ये अष्टसंख्यके मथना द्यष्टौ गृहाणि स्युः। यथा पूर्वाग्नेययोर्मध्ये मथनस्य दध्यालोडनस्य गृहं, आग्नेयदक्षिणयोर्मध्ये आज्यस्य घृतसंग्रहस्य गृहं, नैर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य गृहं, पश्चिमवायव्योर्मध्ये रोदनस्य गृहं, उत्तरवायव्योर्मध्ये रतस्य सम्भोगस्य गृहं, उत्तरैशान्योर्मध्ये औषधस्य गृहं, ऐशानी-प्राच्योर्मध्ये उक्तव्यतिरिक्तसर्ववस्तूनां धाम गृहं कार्यं स्यादित्यर्थः।

भाषा— रामदैवज्ञ का मत है कि वास्तुक्षेत्र के पूर्वभाग में स्नानगृह, आग्नेय कोण में रसोईघर, दक्षिण में शयनगृह, नैर्ऋत्य में शस्त्रागार, पश्चिम में भोजनगृह, वायव्य में अन्नागार, उत्तर में भण्डार और ईशान कोण में देवपूजन गृह बनाना चाहिए। इन गृहों के बीच-बीच में मन्थनादि कक्ष भी बनाएँ। इनका स्थान निर्देश इस प्रकार होगा— पूर्व-अग्निकोण के बीच में मन्थन कक्ष, आग्नेय-दक्षिण के बीच घृत कक्ष, दक्षिण-नैर्ऋत्य के बीच पाखाना, नैर्ऋत्य-पश्चिम के बीच विद्याभ्यास, पश्चिम-वायव्य के बीच रुदन कक्ष, वायव्य-उत्तर के बीच संभोग स्थल, उत्तर-ईशान के मध्य औषधालय और ईशान तथा पूर्व के बीच में सर्व सामग्री संग्रह स्थल होना चाहिए।

अत्राह वसिष्ठः (वसिष्ठसंहिता 39, 164-165; पीयूषधारा 12, 21) —

ऐन्द्र्यां स्नानगेहकार्यमाग्नेय्यां पचनालयः।
याम्यायां शयनं वेश्म नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्॥ 125॥
वारुण्यां भोजनगृहं वायव्यां पशु(धान्य!)मन्दिरम्।
उदीच्यां हाटकं सद्म ऐशान्यां देवमन्दिरम्॥ 126॥

ऐन्द्र्यामेति। हाटकं सुवर्णस्येदं हाटकम्, शेष सुगमम्।

भाषा— निर्धारित क्षेत्र पर पूर्व दिशा में स्नानागार बनाए। आग्नेय कोण में भोजनशाला, दक्षिण में शयनागार एवं नैर्ऋत्य कोण में शस्त्रागार बनाना चाहिए। इसी प्रकार पश्चिम दिशा में भोजनगृह, वायव्य कोण में पशुशाला (पाठान्तर से धान्यालय), उत्तर में हाटक (शृङ्गार-प्रसाधन कक्ष) तथा ईशान कोण में देवार्थ आलय की रचना

करनी चाहिए।

अत्र कश्यपोऽप्याह (पीयूषधारा. तत्रैव) —

प्राच्यां दिशि स्नानगृहमाग्नेय्यां पचनालयः।
शयनं याम्यदिग्भागे नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्॥ 127॥
प्रतीच्यां भोजनगृहं वायुभागेऽन्नसङ्ग्रहम्।
भाण्डारसदनं सौम्ये त्वैशान्यां देवतालयम्॥ 128॥

प्राच्यां इति। सुगमम्।

भाषा— कश्यप का मत है कि पूर्व में स्नानागार, आग्नेय कोण में भोजनशाला, दक्षिण में शयनकक्ष, नैर्ऋत्य में शस्त्रमन्दिर बनाए। पश्चिम में भोजनगृह, वायव्य में अन्नसंग्रह, उत्तर में भण्डारगृह और ईशान में देवतालय होना चाहिए।

अत्र नारदस्तु विशेषमाह (तत्रैव) —

भाण्डागारं तूत्तरे स्याद्वायव्यां पशुमन्दिरम्।[1]

भाषा— नारद का मत है कि उत्तर में भाण्डार एवं वायव्य दिशा में पशुगृह होना चाहिए।

अत्र विश्वकर्मा आह —

उत्तरस्यां जलस्नानं पूर्वस्यां श्रीगृहं तथा॥ 129॥

भाषा— विश्वकर्मा का कथन है कि उत्तर में जल व स्नानगृह एवं पूर्व दिशा में श्रीगृह होना अपेक्षित है।

यदाहात्र वसिष्ठः (वसिष्ठसंहिता 39, 167–170) —

इद्राग्न्योर्मन्थनं गेहं याम्याग्न्योर्घृत(रति!)मन्दिरम्।
याम्यराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम्॥ 130॥
राक्षसाम्बुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम्।
तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनं मन्दिरं स्मृतम्॥ 131॥
वायव्योत्तरयोर्मध्ये सम्भोगस्यैव मन्दिरम्।
उत्तरेशानयोर्मध्ये त्वौषधागारमुच्यते॥ 132॥
(पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुसु सङ्ग्रहम्)।
सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश॥ 133॥

इन्द्राग्न्योमिति। सुगमम्।

---

1. [illegible]

भाषा— पूर्व एवं आग्नेय कोण के मध्य में दही मथने का कक्ष (1) बनाएँ। दक्षिण एवं आग्नेय कोण के बीच गतिर्मन्दिर (2) या शृङ्गार भू विलास (पाठान्तर से घृत आदि रखने का कक्ष) बनाए। दक्षिण एवं नैर्ऋत्य कोण के बीच में मल-मूत्रादि विसर्जन का कक्ष (3) हो। नैर्ऋत्य कोण एवं पश्चिम के बीच अध्ययन कक्ष (4) हो और पश्चिम व वायव्य कोण के बीच में रुदन कक्ष (5.) या कोपगृह होना चाहिए। वायव्य कोण व उत्तर के बीच में काम व उपभोग कक्ष (6) होगा जबकि उत्तर व ईशान कोण के बीच में औषधागार (7) होगा। ईशान कोण व पूर्व के बीच समस्त वस्तु संग्रह गृह (8) होगा। इस प्रकार (पूर्वोद्धृत श्लोक 125–126 के अनुसार आठ गृहों सहित) क्रमशः सोलह कक्षों को बनाना चाहिए।

गृह के सोलह कक्ष

पू

देवगृह	सर्ववस्तु संग्रह कक्ष	स्नानगृह	मथन गृह	रसोई
औषध-गृह				आज्यगृह
भाण्डार		आँगन		शयनकक्ष
रतिगृह				शौचालय
धान्यगृह	कोपभवन	भोजनकक्ष	विद्याभ्यास कक्ष	शस्त्रागार

उ (बाएँ) — द (दाएँ)

प

अथ कश्यपोऽप्याह —

इन्द्राग्न्योर्मन्थनं[1] गेहं यमाग्न्योर्घृतमन्दिरम्।
पुरीषत्यागसदनं मध्ये राक्षसकालयोः॥ 134॥
विद्या जलेशनैर्ऋत्योर्मध्ये च सदनं स्मृतम्।
रौदनं सदनं नूनं जलाधीशसमीरयोः॥ 135॥
नवरत्नालयं मध्ये कुबेरेश्वरयोस्तथा॥ 136॥

इन्द्राग्न्यो इति। इन्द्रेशयोर्धान्यगृहमिति। शेष सुगमम्।

भाषा— कश्यप का भी मत है कि पूर्व-आग्नेय कोण के बीच दही मन्थन कक्ष होगा। दक्षिण-आग्नेय कोण के बीच घृतगृह; दक्षिण-नैर्ऋत्य कोण के बीच में पुरीष-मल त्याग-कक्ष; नैर्ऋत्य कोण-पश्चिम के बीच विद्याकक्ष होगा। पश्चिम-वायव्य कोण के बीच रुदनकक्ष एवं नए रत्नों का भण्डागृह उत्तर व ईशान कोण के मध्य में होगा।

अथ श्रावणे मासि सप्तसकारविशेषेण गृहारम्भस्य प्राशस्त्यमुक्तं वास्तुरत्नप्रदीपे-

शनिः स्वाती सिंहलग्नं शुक्लपक्षश्च सप्तमी।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्त कीर्तिताः॥ 137॥
सप्तानां योगतो वास्तु पुत्रपौत्रप्रदं सदा।
गजाश्वधनधान्यादि पुरे तिष्ठन्ति सर्वतः॥ 138॥

शनिरिति। शनिः शनिवासरः, स्वाती नक्षत्रं, सिंह लग्नं, शुक्लपक्षः, सप्तमी तिथिः, शुभयोगः, श्रावणः श्रावणमासः, इमे सप्त सकाराः कीर्तिताः कथिताः। एषां पूर्वोक्तानां सप्तानामेककाले योगतः यद्वास्तुकर्म भवेत्तत् सदा पुत्रपौत्रप्रदं स्यात्। तथा तत्र पुरे गजाश्वधनधान्यानि सर्वतः समन्तात्तिष्ठन्ति वर्तन्ते।

भाषा— यदि 1. श्रावण मास, 2. शनिवार, 3. स्वाती नक्षत्र, 4. सिंह लग्न, 5. शुक्ल पक्ष, 6. सप्तमी तिथि और 7. शुभ करण का योग— ये सात सकार एक साथ हों तो वो सकारात्मक परिणामप्रद होते हैं। इनमें यदि वास्तु कार्य किया जाए तो वह गृह सदा ही पुत्र-पौत्रप्रद, गज-अश्वादि वाहनों और सर्व धन-धान्यादि से भरपूर रहता है।

अथ सुप्तभूमिलक्षणमाह (रत्नोद्योत 5, 13)[2] —

प्रद्योतनात्पञ्च$_{5}$नगा$_{7}$ङ्क$_{9}$सूर्य$_{12}$नवेन्दु$_{19}$षड्विंशमितेषु$_{26}$भेषु।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडाग-वापीखननं न शस्तम्॥ 131॥

प्रद्योतनादिति। प्रद्योतनात् सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात्, पञ्चनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु, मही पृथ्वी शेते, अतस्तदा गृहं नैव विधेयम्। तडागवापीखननं च न शस्तम्।

भाषा— (रत्नोद्योतकार गङ्गाराम द्विवेदी का मत है) सूर्य के नक्षत्र से पाँचवें, सातवें, नवें, बारहवें, उन्नीसवें और छब्बीसवें नक्षत्र वाले दिन भूमि शयन करती है। अतः इन नक्षत्रों में, भूमि शयन के समय गृह निर्माण नहीं करे। जलाशय और वापी का खनन भी प्रशस्त नहीं होता है।

विशेष— इसका परिहार यह है कि शयन के उक्त नक्षत्रों में क्रमशः 1, 4, 12, 27, 16 घटी तक ही पृथ्वी शयन होता है, शेष घटियों में पृथ्वी जागृत रहती है— स्यात्नाडी शयने शशीमित$_{1}$ तथा तुर्य$_{4}$स्तयार्के$_{12}$मिता। ऋक्षे$_{27}$ भूपतिभि$_{16}$र्नगैः$_{7}$ परिमिते शेषेभवेज्जाग्रतिः॥ *(वास्तुप्रबोध 46)*

1. 'इन्द्रान्द्वंन्द्वेपुनं' इति प्रकाशित पाठः।
2. सहृद्रत्नमाला (20, 210); वास्तुप्रबोधे (1, 45); वास्तुभूषणे च वास्तुरत्नाकरे (9, 42)।

पृथ्वीशयन का विचार पूर्व प्रकरण में स्पष्ट करने में कारण यह है क्योंकि जब भूमि सोयी हुई होती तब उस पर कोई कार्य करना कैसे शुभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त, अम्बुवाची योग, भूकम्प, ग्रहणादि अवसरों पर भी पृथ्वी का खनन नहीं करना चाहिए। आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अम्बुवाची योग होता है क्योंकि पृथ्वी ऋतुमती रहती है। ऐसे में जो पृथ्वी को खोदते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगता है और मरने पर चार युगों तक कृमिदंश नरक मिलता है। भूकम्प व ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदने पर महत्पाप लगता है और ऐसा करने वाला दूसरे जन्म में भी अङ्गहीन होता है— अम्बुवाच्यां भूकर्षं यः करोति च मानवः। स याति कृमिदंशं च तिष्ठेत्तत्र चतुर्युगम्॥ भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापी अङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ अम्बुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये। कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ *(देवीभागवत 9, 10, 14 व 28 एवं 9, 34, 48)* भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापी सोऽङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ *(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड 9, 23)*

यदि कभी भूल, त्रुटिवश ऐसा हो जाए तो निम्न स्तोत्र का पाठ करना चाहिए— यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे॥ सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे॥ सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे। सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे॥ मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे॥ भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपाल परायणे। भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे॥ *(ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्ड 8, 53-57)*

अथ वास्तुकाले पूजनीयदेवाः पूजाप्रकारश्च वास्तुप्रदीपे —

बलिभिः पुष्पधूपाद्यैर्लोकपालान्नवग्रहान्।
पूजयेत्क्षेत्रपालांश्च क्रूरभूतांश्च बाह्यतः॥ 132॥
कुशपुष्पैस्तथा लाजैस्तिलतण्डुलमिश्रितैः।
ब्राह्मणं वास्तुपुरुषं तद्देशस्थाश्च देवताः॥ 133॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥ 134॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेव्या सहार्चयेत्।
पूर्णकुम्भं सनारोप्य चूतपल्लवसंयुतम्॥ 135॥
गन्धपुष्पादिभिर्लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन प्रपूजयेत्।
इन्द्रादिलोकपालांश्च स्वस्वदिक्षु घटस्थितान्॥ 136॥
अष्टौ वसूंश्च सम्पूज्य चतुर्दश च मातरः।
वासुकिं तक्षकं चैव कुलिकं कर्कोटकं तथा।
पद्मं च शङ्खचूडं च महापद्मं धनञ्जयम्॥ 137॥

पूजयेद् गन्धमालाद्यैर्नागानष्टौ प्रयत्नतः।
हस्तमात्रमिते गर्ते सपद्मं सहिरण्यकम्॥ 138॥
वास्तोः पतेति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं घटाम्बुभिः।
पृथ्वी नवग्रहधरामरशक्रपूर्वाः
नागाः प्रजापतिपराशरमाम्रपणः।
वास्तोः पतिं दधियुताक्षतधूपगन्धैः
पूज्या धरामरणगणा विधिवद् गणेशः॥ 139॥

वलिभिः पुष्पधूपाद्यैरिति। पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः लोकपालान्नवग्रहानक्षेत्रपालांश्च पूजयेत्। बाह्यतो बाह्ये (सप्तम्यर्थे तसिल्) तथा तेनैव विधिना कुशपुष्पैः तिलकण्डुल मिश्रितैर्लाजैः पूजयेत्। ब्राह्मण, पुरोहित, वास्तुपुरुषं तद्देशस्था देवताश्च पूजयेत्। ततो 1. गौरी, 2.पद्मा, 3. शची, 4. मेधा, 5. सावित्री, 6. विजया, 7. जया, 8. देवसेना, 9. स्वधा, 10. स्वाहा 11. माता, 12. लोकमाता, 13. हष्टिः, 14. पुष्टिः 15. तुष्टिः, एता:देव्यः आत्मदेव्या सह अर्चयेत्। अथ चूतपल्लवसंयुतं पूर्णकुम्भं समारोप्य श्रीसूक्तेनेति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः लक्ष्मीं प्रपूजयेत्। स्वस्वदिक्षु स्वस्वाशासु घटस्थितान् लोकपालान् अष्टौ वसूंश्च सम्पूज्य, चतुर्दश मातरश्च पूजयेत्। एवं पूर्वोक्तदिशा अनन्तं वास्तपुरुषं कूर्म्मं पृथ्वीं नवग्रहान् वासुकिं तक्षकं कुलिकं कर्कोटकं तथा पद्म शंखचूडं च महापद्म धनञ्जय अष्टौ नागान् प्रयत्नतः गन्धमाल्याद्यैः पूजयेत्। हस्तमात्रमिते एकहस्तपरिमिते गर्ते सपद्मं सहिरण्यकं वास्तोः पतेति मन्त्रेण घटाम्बुभिरर्घ्यं दद्यात्। आम्रपर्णैः चूतपत्रैः प्रजापति पराशरं पूजयेत्। दधियुताक्षतपुष्पगन्धैः वास्तोः पति पूजयेत्। धरामरगणा विश्वम्भरास्थिता देवगणाश्च पूज्याः विधिवद्विधिपूर्वकं गणेशश्च पूज्यः।

भाषा— वास्तुकाल में पूजनीय देवी-देवताओं के सम्बन्ध में वास्तुप्रदीप के अनुसार कहा जा रहा है। वास्तुपूजन के अन्तर्गत देवताओं के लिए इष्ट नैवेद्य पुष्प, धूपादि लेकर सर्वप्रथम लोकपाल (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, कुबेर व ईशान), नवग्रह (सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु व केतु), क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए। क्रूर देवताओं (अष्टभैरव— रुरु, संहार, काल, असिताङ्ग, क्रोध, भीषण, महा एवं खट्वाङ्ग भैरवादि), भूतादि (वेताल, ब्रह्मराक्षसादि) की पूजा बाहर में कुश, पुष्प, लाजा, तिल, तण्डुल को मिश्रित कर करनी चाहिए। इसी अवसर पर वहाँ विप्र, वास्तुपुरुष और स्थानीय देवताओं की भी पूजा करे।

इसी प्रकार सोलह मातृकाओं यथा—1. गौरी, 2.पद्मा, 3. इन्द्राणी, 4. मेधा, 5. सावित्री, 6. विजया, 7. जया, 8. देवसेना, 9. स्वधा, 10. स्वाहा, 11. मातर, 12. लोकमातर, 13. हष्टि, 14. पुष्टि, 15. तुष्टि, देवियों सहित 16. आत्मदेवी की पूजा करनी चाहिए।

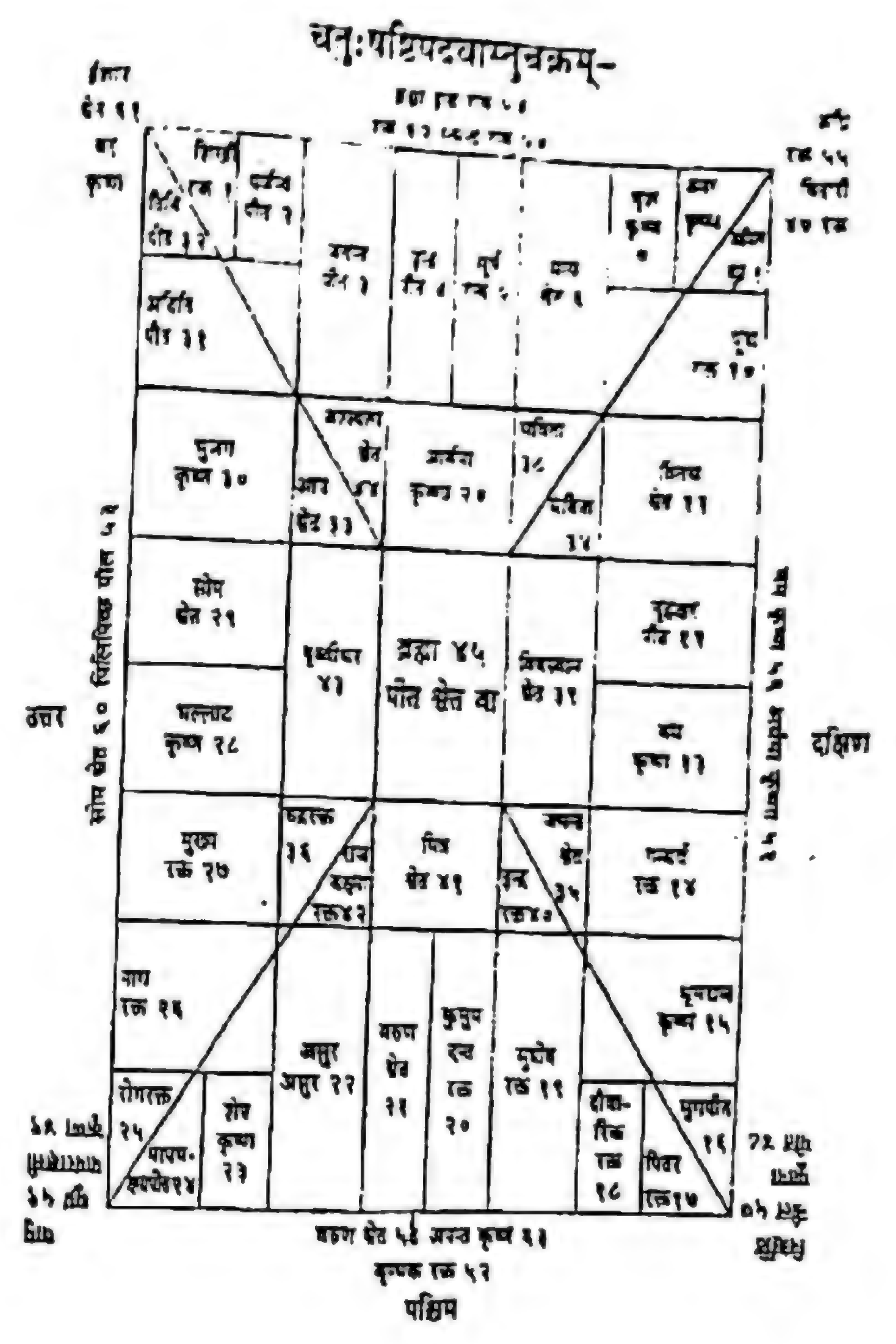

पूर्व

एकाशीतिपदवास्तुचक्रम्

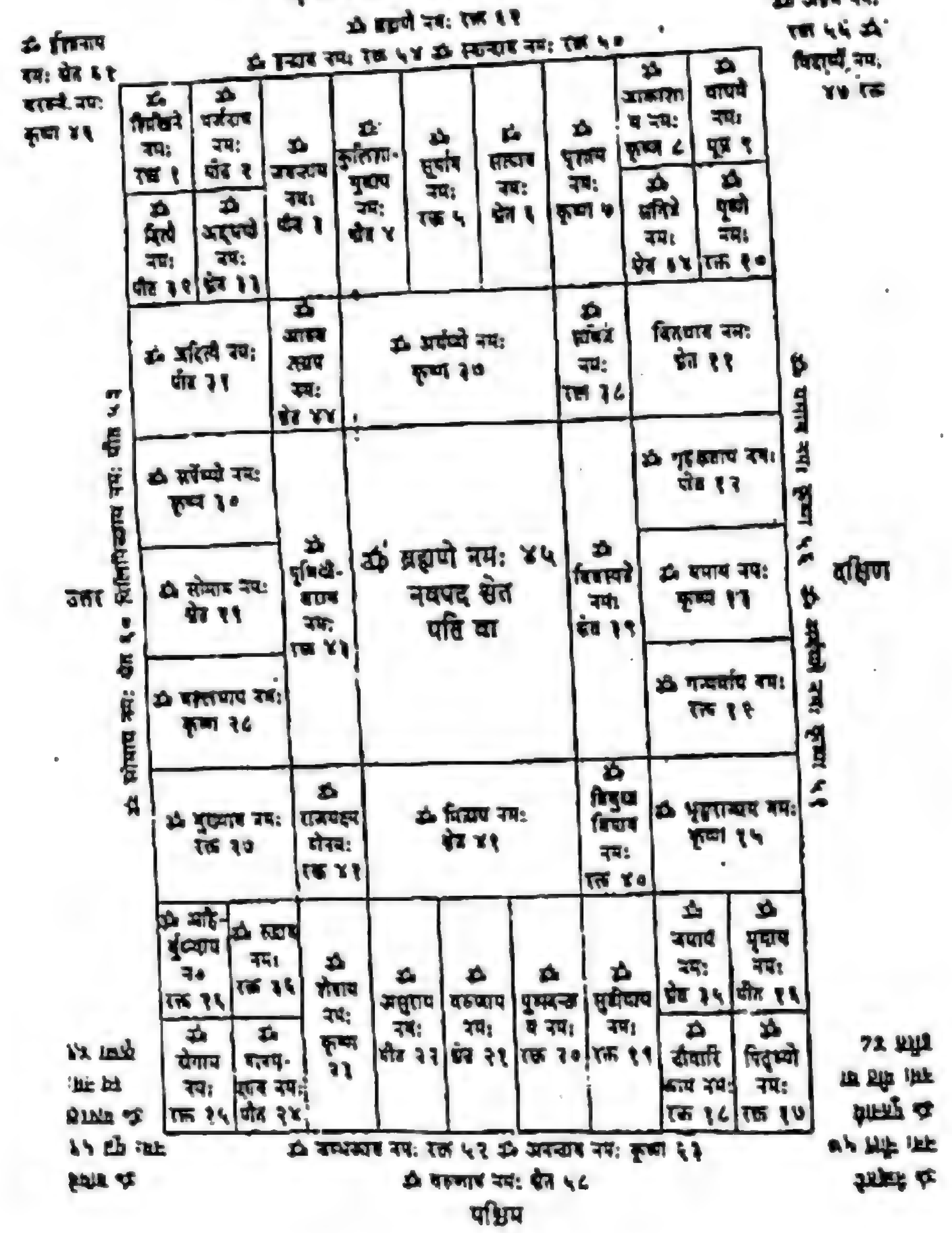

पुनः जलपूरित कुम्भ को रखकर उसे आम्रपल्लवों से सज्जित करें और गन्ध, पुष्पादि के साथ भगवती लक्ष्मी की श्रीसूक्त के साथ पूजा करे।

इसी प्रकार आठों दिशाओं में घट स्थापित कर इन्द्रादि लोकपालों को उन-उनकी दिशा में पूजा करें। आठों वसुओं (अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा व नक्षत्र) और चौदह माताओं भी पूजा करें।

इसके अनन्तर 1. वासुकी, 2. तक्षक, 3. कुलिक, 4. कर्कोटक, 5. पद्म, 6. शङ्खचूड, 7. महापद्म और 8. धनञ्जय नामक आठों ही नागों का प्रयत्नपूर्वक गन्ध, मालादि से पूजन करना चाहिए।

उक्त पूजादि कृत्य के बाद एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ ही गहरा गड्ढा करें और उसमें पद्म, स्वर्ण निवेशकर 'वास्तोष्पते' मन्त्र से घट के पवित्र जल से अर्घ्य देना चाहिए।

इस प्रकार पृथ्वी और पूर्वोक्त सूर्यादि नवग्रह, शेष, इन्द्रादि देवगण, आठों नागदेव, प्रजापति और ऋषि पराशर की आम्रपल्लवों से पूजा करनी चाहिए। दधि से युक्त अक्षत, धूप, गन्धादि से वास्तुपुरुष एवं गणेश की भी विधिवत पूजा करनी चाहिए।

अथ क्षित्यर्घदानमन्त्रः —

वसुधे हेमगर्भासि शेषस्योपरि शायिनि।
तव पृष्ठे ददाम्येतद् गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे ॥ 140 ॥

अथ कूर्मस्यार्धदानमन्त्रः—

सर्वलक्षणसम्पन्न सर्वेश कमलाधिप।
स्थानं देहि गृहं कर्तुं गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥ 141 ॥

---

1. वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
हे वास्तोष्पते गृहपालक देव! आप हमें जगाएं। हमारे गृह में पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को नीरोग एवं सुखी करें। जो धन हम आपसे माँगें, वह हमें प्रदान कीजिए।
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥
हे वास्तोष्पते! आप हमारे लिए कल्याणकारी धन का विस्तार-प्रसार करें। हे सोम! हम आपकी कृपा से गौओं तथा अश्वों के साथ नीरोग रहें। आप हमारा पुत्रवत् पालन करें।
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ *(ऋग्वेद 7, 54, 1-3)*
हे वास्तोष्पते! हम आपसे सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त स्थान प्राप्त करें। हमें प्राप्त और प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ धन वैभव की आप रक्षा करें। हमें सदा कल्याणकारी साधनों-उपस्करों से सुरक्षित रखें।

अथानन्तरयार्घदानमन्त्रः—

हिमकुन्दप्रतीकाश नागानन्त महाफणिन्।
स्थानं देहि गृहं कर्तुं गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥ 142 ॥

अथ घटे जलदानमन्त्रः—

वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवान्।
यत्त्वमहे प्रतितन्नोजुषस्व शन्नो भव द्विपदेशञ्चतुष्पदे स्वाहा ॥ 143 ॥

अथ- 'ओं सर्वज्ञानक्रियाव्यक्तकमलासनाय योगपीठाय नमः' इति मन्त्रेण मध्ये पीठं सम्पूज्य तत्र ब्रह्माणं पूजयेत्।

अथ स्तम्भरोपणमन्त्रः (नाट्यशास्त्रे अभिनव. 2, 62)—

ओं यथाचलो गिरिर्मेरुर्हिमवांश्च महाबलः।
जयावहो नरेन्द्रस्य तथा त्वमचलो भव ॥ 144 ॥[1]

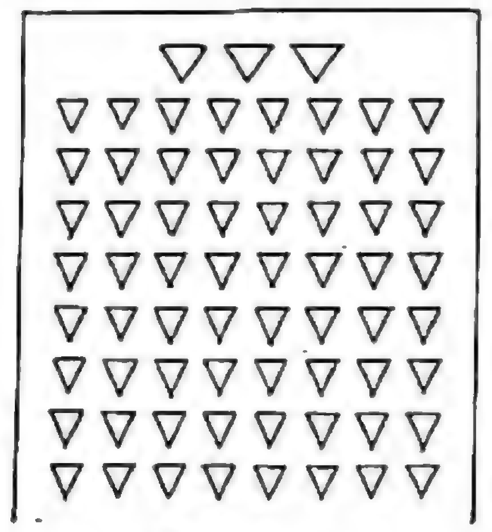

योगिनी स्थापन

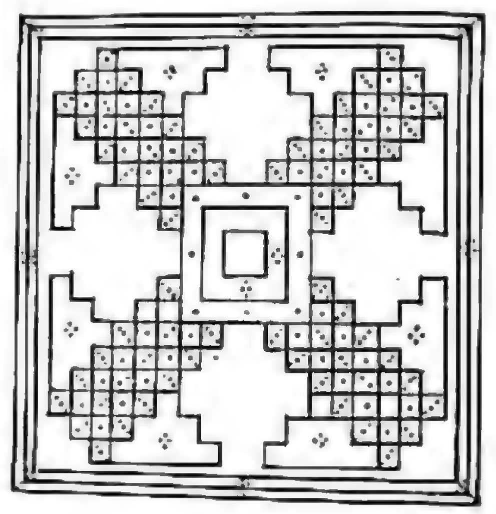

सर्वतोभद्र मंडल

ततः सङ्कल्पं कुर्य्यात्-

ओं अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रस्यामुकशर्म्मण एतत्स्थान-निर्विघ्न पूर्वकचिरकालवाससुखसौमनस्यनैरुज्यदीर्घायुष्ट्वाबलपुष्टिप्राप्ति कामो वास्तु-

---

1. 'ओं यथाचलो गुरुर्मेरुरावासमचलं कुरु। आरोपितगृहस्तम्भं तथात्वमचलं भव॥' इति प्रकाशित पाठः। अभिनवभारतीटीकायां— यथेति। प्रणवनमस्कारमध्यवर्ती चायं पठितव्य इति वास्तुविद्याविदः। अचलो भवेति पूर्व(अपू)र्वविधिः। न तेन तदनुवादेन जयावहो भवेत्यस्य न पौनरुक्त्यम्।
अर्थात्— जैसे महा (सुमेरु) पर्वत अचल है, उसी प्रकार इस आवास को अचल करो। मैं यहाँ इस गृहस्तम्भ को स्थापित कर रहा हूँ, वह अचल सिद्ध हों।

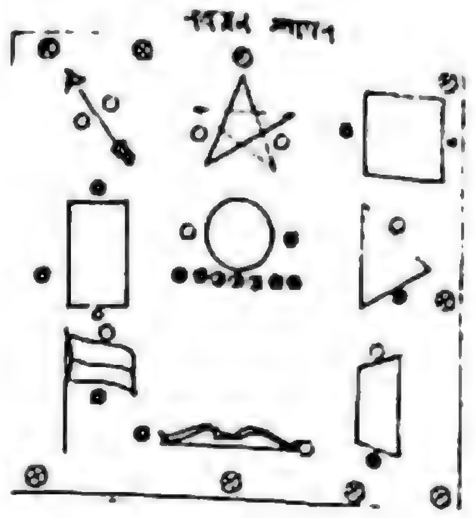

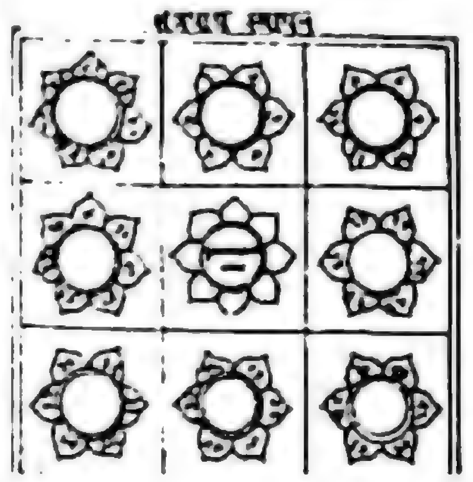

वास्तु स्थापन

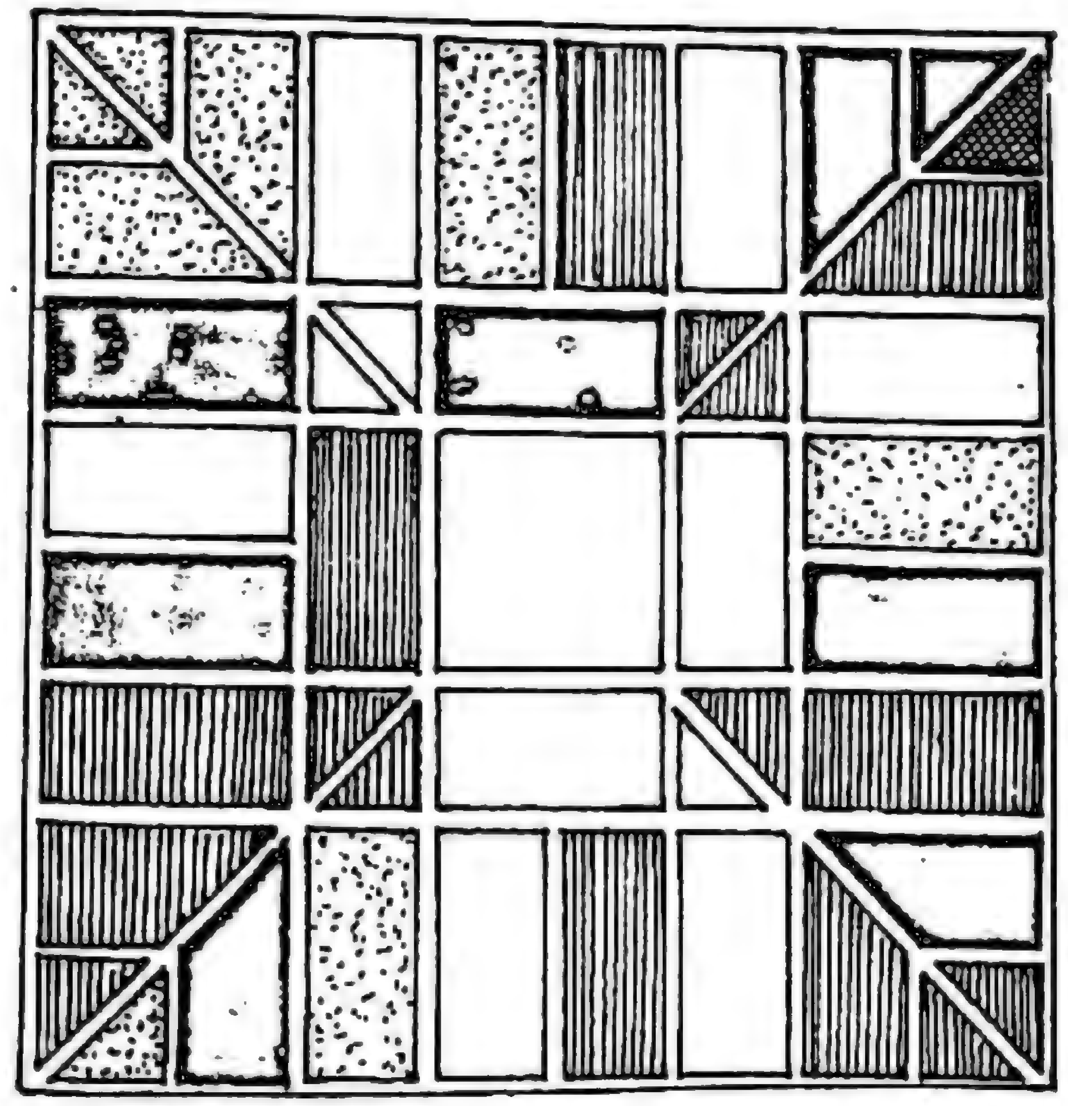

कर्मतदङ्गतया गणेश पूजनकलशस्थापन पञ्चदेवतानवग्रहदशदिक्पालक्रूरक्षेत्रपाल षोडशमातृकाऽनन्तपृथ्वीकूर्म्मनागवास्तुपुरुषपूजनमहं करिष्ये।

ततः पूजनीयदेवताः सम्पूज्य, कूर्म्मार्घ्यं दत्वा, पृथिव्यर्घ्यं दत्वा वास्तुपुरुषार्घ्यं दत्वा, ततो दध्यक्षतदूर्वाम्रपल्लवयुतकलशजलं गर्ते दत्वा मृत्तिकाः पूरयेत्।

ततः पूर्वदिशि बलिदानमन्त्रः—

ओं गजवाहनाय वज्रहस्ताय तेजोधिपतये एष दधिमाषबलिरिन्द्राय नमः।

ततोऽग्निकोणे-

ओं छागवाहनाय शक्तिहस्ताय वैश्वानरमूर्तये एष बलिनमः।

ततो दक्षिणे-

ओं महिषवाहनाय दण्डहस्ताय यममूर्तये नमः।

ततो नैर्ऋत्याम्-

ओं गजवाहनाय खड्गहस्ताय निर्ऋतिमूर्तये नमः।

ततः पश्चिमे-

ओं गरुडवाहनाय शङ्खचक्रगदापद्महस्ताय वरुणमूर्तये नमः।

ततो वायुकोणे-

ओं क्षेत्रपालाय मृगवाहनाय वायुमूर्तये नमः।

तत उत्तरे-

ओं कुबेराय गदाहस्ताय नरवाहनाय नमः।

तत ईशाने-

ओं वृषवाहनाय त्रिशूलशक्तिहस्ताय त्रिनेत्राय एष सदधिमाषबलिर्नमः।

मध्यगृहे-

ओं पातालक्षेत्राय सहस्रफणाय द्विसहस्रलोचनाय वासुकिनागाय शक्तिहस्ताय सर्वनागाधिपतये एष दधिमाषबलिर्नमः।

ततो दक्षिणा-

ओमद्य कृतैतद्वास्तुकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं स्वर्णं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे।

अत्र सर्वं पद्धत्यनुसारादूहनीयं, विस्तरभयान्न लिखितमिति।

वास्तुलग्नकुण्डलीफलं (विश्वकर्मप्रकाश 3, 48-49)[1] तत्रादौ तनुभावस्थानां ग्रहाणां फलमाह —

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात्कोशहानिश्च शीतगौ।
मृत्युर्विश्वम्भरासूनौ दारिद्र्यं रविनन्दने॥ 145॥
जीवे धर्मार्थकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे।
चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्धते॥ 146॥

लग्नर्के इति। अर्के रवौ, लग्ने वास्तुलग्ने स्थिते सति वज्रपातः तत्रगृहे वज्रपातः स्याद्भवेत्। शीतगौ चन्द्रे लग्ने कोशहानिः द्रव्यागारनाशः स्यात्। विश्वम्भरासूनौ भूपुत्रो मङ्गल इत्यर्थः लग्ने मृत्युर्मरणं स्यात्। रविनन्दने शनैश्चरे लग्ने दारिद्र्यं दरिद्रता स्यात्। जीवे गुरौ लग्ने धर्मार्थकामाः धर्मार्थकामरूपास्त्रिवर्गाः स्युर्भवेयुः। भार्गवे लग्ने सुतोत्पत्तिः स्यात्। चन्द्रजे बुधे लग्ने कुशला भव्या शक्तिः बलं स्यात्, तथा जनस्य वास्तुकर्तुर्लोकस्य आयुरायुर्दायं प्रवर्धते।

भाषा— यदि गृहारम्भ के लग्न स्थान में सूर्य स्थित हो तो वज्रपात, चन्द्रमा हो तो हानि, मङ्गल हो तो मृत्यु, शनि हो तो दारिद्र्य, बृहस्पति हो तो धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति, शुक्र हो तो पुत्र प्राप्ति, बुध हो तो सामर्थ्य और आयु की वृद्धि सम्भव होती है।

विशेष— प्रत्येक ग्रह का अपना निजी स्थान, उच्च व नीच राशि सहित मूल त्रिकोणादि की गणना ज्योतिष में की गई है। यह निम्न चक्र से समझा जा सकता है—

ग्रह	स्वगृह	उच्च राशि	नीच राशि	मूल त्रिकोण
सूर्य	सिंह	मेष	तुला	सिंह 1°-20°
चन्द्र	कर्क	वृष	वृश्चिक	वृष 3°-30°
मङ्गल	मेष, वृश्चिक	मकर	कर्क	मेष 18° तक
बुध	मिथुन, कन्या	कन्या	मीन	कन्या 16°-20°
गुरु	धनु, मीन	कर्क	मकर	धनु 1°-13°
शुक्र	वृष व तुला	मीन	कन्या	तुला 1°-10°
शनि	मकर, कुम्भ	तुला	मेष	कुम्भ 1°-20°

ततो द्वितीयभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 50-51) —

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत्।

1. प्रकाशितपाठे— ग्रन्थकारः श्लोकद्वयं वास्तुप्रदीपात् कथितम्।

भूसुते बन्धनं प्रोक्तं नाना विघ्नानि भानुजे ॥ 147 ॥
बुधे द्रविणसम्पत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः ।
तथा कामविनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥ 148 ॥

द्वितीयस्थ इति। रवौ द्वितीयस्थे सति हानिः स्यात्, चन्द्रे द्वितीयस्थे शत्रुक्षयः रिपुविनाशो भवेत्, भूसुते कुजे बन्धनं प्रोक्तम्, भानुजे शनैश्चरे द्वितीयस्थे भावा विघ्नाः भवेयुः, बुधे द्वितीयस्थे द्रविणसम्पत्तिर्भूरिसम्पत्तिः स्यात्। गुरौ वृहस्पतौ द्वितीयस्थे धर्मसमागमः स्यात् तथा भृगौ शुक्रे द्वितीयस्थे कामविनोदेन स्मरक्रीडाऽऽमोदेन, इह पृथिव्यां कालं व्रजेद् गच्छेद् ग्रहकर्तुरिति।

भाषा— गृहारम्भ काल में यदि द्वितीय भाव में सूर्य हो तो हानि, चन्द्रमा हो तो शत्रु का संहार, मङ्गल हो तो बन्धन, शनि हो तो अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं। बुध द्वितीयस्थ हो तो सम्पत्ति, गुरु हो तो धर्म-अध्यात्म की वृद्धि, शुक्र हो तो कालक्रमानुसार काम-विनोद आदि की प्राप्ति, पूर्ति होती है।

ततस्तृतीयगतग्रहाणाणां फलम् (तत्रैव 3, 52) —

तृतीयस्थेषु पापेषु सौम्यष्वेव विशेषतः।[1]
सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥ 149 ॥

सौम्यग्रहा इति। तृतीयस्थाः सौम्यग्रहाः शुभग्रहाः, विशेषतो विशेषेण तृतीयस्थाः पापाः पापग्रहा अपि यथाभिलषितं प्रति यथाभीष्टं प्रति, अचिरादेव शीघ्रमेव सिद्धिः स्यात्।

भाषा— गृहारम्भावसर पर यदि तृतीय भाव में पाप ग्रह (सूर्य, मङ्गल, शनि) हो और विशेषकर यदि सौम्य ग्रह (गुरु, शुक्र, चन्द्रमा व बुध) हो तो दीर्घ लम्बित इच्छाओं की सिद्धि होती है।

अथ चतुर्थभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 53-54) —

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा सम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे ॥ 150 ॥
वियोगः सुहृदां भानौ मित्र(मन्त्र!)भेदो धरासुते।
बुद्धिनाशो निशानाथे [1]महालाभोऽर्कनन्दने ॥ 151 ॥

चतुर्थस्थानग इति। जीवे वृहस्पतौ चतुर्थस्थानगे सति नृपाद्राज्ञः, पूजा पूजनं, सम्पद्यते लभ्यते। चन्द्रजे बुधे चतुर्थस्थानगे सदा सर्वदा लाभःस्यात्। भार्गवे शुक्रे चतुर्थस्थानगे भूमिलाभः भूमेः पृथिव्यालाभः स्यात्। भानौ रवौ चतुर्थस्थानगे सुहृदां मित्राणां वियोगः

1 'सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः।' इति प्रकाशित पाठः।

स्यात्। भरासुते कुजे चतुर्थस्थानगे मित्रभेदः मन्त्रभेदः स्यात्। निशानाथे चन्द्रे चतुर्थस्थानगे बुद्धिनाशः स्यात्। अर्कनन्दने शनौ चतुर्थस्थानगे महल्लाभो बहुलाभः स्यात्।

भाषा— गृह कार्यारम्भ अवसर पर यदि चतुर्थ भाव में गुरु हो तो शासन की ओर से बहुमान होता है। बुध हो तो धन का लाभ एवं शुक्र हो तो भूमि का लाभ होता है। यदि सूर्य हो तो मित्रों का वियोग (पाठान्तर से गुप्त रहस्य का उजागर होना), मङ्गल हो तो मित्रों में भेद-दुराव, चन्द्रमा हो तो बुद्धि का नाश और शनि हो तो महालाभ (पाठान्तर से सर्वनाश) होता है।

अथ पञ्चमभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 55-56) —

[2]पञ्चमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्त्रधनागमः।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिन्दुजे ॥ 152 ॥
सुतदुःखं सदा सूर्ये शशाङ्के कलहागमः।
भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥ 153 ॥

पञ्चमस्थ इति। सुराचार्ये वृहस्पतौ पञ्चमस्थे मित्रवस्त्रधनागमः मित्राणं सुहृदां वस्त्राणामंशुकानां धनानां चागमः आगमनं स्यात्। शुक्रे पञ्चमस्थे पुत्रधनप्राप्तिः पुत्राणां धनानां प्राप्तिलीभः स्यात्। इन्दुजे बुधे पञ्चमस्थे हेमाभरणं सुवर्णाभूषणं गृहकर्ता प्राप्नोतीति शेषः। सूर्ये पञ्चमस्थे सेदा सुतःदुःखं स्यात्। शशाङ्के चन्द्रे पञ्चमस्थे कलहागमः स्यात्। भौमेकामविरोधः स्यात्। शनौ पञ्चमस्थे कामविमर्दनं स्यात्।

भाषा— पाँचवें भाव में गुरु हो तो मैत्री, वस्त्र व धन का लाभ होता है, शुक्र हो तो पुत्र व धन प्राप्त होता है एवं बुध हो तो स्वर्णाभरण का लाभ होता है। पाँचवें भाव में ही सूर्य हो तो सन्तान को कष्ट, चन्द्रमा हो तो कलह बढ़ता है, मङ्गल हो तो काम का विरोध और यदि शनि हो तो काम का नाश करता है।

अथ षष्ठभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 57-58) —

षष्ठस्थानगते सूर्ये [1]पूजा सम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥ 154 ॥
गुरौ चार्थोदयः[2] प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत्।
मानज्ञानस्य कौशल्यं[3] नक्षत्रपतिनन्दने ॥ 155 ॥

षष्ठस्थानग इति। षष्ठस्थानगते सूर्ये नृपात् पूजा सम्पद्यते। चन्द्रे षष्ठस्थानगते पुष्टिः स्यात्। कुजे प्राप्तिः स्यात्। सौरे शनौ चतुर्थस्थानगे शत्रुवलक्षयः शत्रूणां वलविनाशः

1. 'महालाभोऽर्कनन्दने' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः (3, 54)।
२. 'पञ्चमस्थे सुराचार्ये मित्रं वसुधनागमः। शुक्रे पुत्रसुखावाप्ती रत्नलाभस्त्येन्दुजे॥ सुतदुःखं सहस्रांशौ शशाङ्के कलह स्मृतः। भौमे कार्यावरोधः स्यात्सौरे बन्धुविमर्दनम्॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः(3, 55-56)।

स्यात्। गुरौ षष्ठस्थानगते अर्थोदयः धनागमः प्रोक्तः। मृगौ शुक्रे षष्ठस्थानगते विद्यागमः
भवेत्। नक्षत्रपतिनन्दने चन्द्रजे बुधे चतुर्थस्थानगे मानज्ञानस्य कौशल्यं स्यात्।

भाषा— यदि छठवें भाव में सूर्य हो तो राजा से सम्मान हो, चन्द्रमा हो तो पुष्टिवर्धन, मङ्गल हो तो प्राप्ति, शनि हो तो शत्रुबल क्षय, गुरु हो तो धन की सम्भावनाओं का उदय, शुक्र हो तो विद्या-अध्ययन के प्रति रुझान का बढ़ना और बुध हो तो भलीभाँति मानादि की विशेषज्ञता मिलती है।

अथ सप्तमभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 59-60) —

[४]लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते।
गजवाजिधरित्रीणां क्रमोद्भोगं विनिर्दिशेत्॥ 156॥
भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात् कुजे विग्रहमादिशेत्।
चन्द्रे मन्दे युते मान्द्यं हीनाङ्गत्वं भयं तथा॥ 157॥

लग्नात्सप्तमग इति। लग्नाद् गृहारम्भकालिकलग्नात् सप्तमगे सप्तमस्थानगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते शुक्रे च तदा क्रमात् क्रमेण गजवाजिधरित्रीणां भोगं विनिर्दिशेत्। तद्यथा जीवे सप्तमस्थानगे गजानां कुञ्जराणां, बुधे सप्तमस्थानगे वाजिनां घोटकानां, शुक्रे धरित्रीणां भुवां, भोगं विनिर्दिशेत्। भास्करे सूर्ये सप्तमस्थानगे कीर्तिभङ्गः स्यात् यशोविनाशः स्यात्। कुजे सप्तमस्थानगे विग्रहं युद्धमादिशेत्। चन्द्रे शनैश्चरे युते सप्तमस्थानयुते क्रमेण मान्द्यं मन्दत्वं, भयं समादिशेत्।

भाषा— यदि गृह निर्माण करें तब सातवें भाव में गुरु हो तो गज लाभ, बुध हो तो अश्व का लाभ, शुक्र हो तो गृहपति को भूमि का उपभोग होता है। इसी प्रकार सातवें भाव में सूर्य हो तो कीर्ति का विनाश, मङ्गल हो तो वैर-विरोध या विपत्ति, चन्द्रमा हो तो जड़मति एवं शनि हो तो भय होता है।

अथाष्टमभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 61-62) —

[1]निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुता विपदः सदा।
हानिः शीतमयूखे च मङ्गले रविजे भयम्॥ 158॥
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान्।
शुक्रे स्वजनतो दद्यात्सुखं पुंसां विशेषतः॥ 159॥

1. 'सूर्ये रोगनाशं विनिर्दिशेत्' इति पाठः।
2. 'मन्त्रोदयो' इति पाठः।
3. 'सम्यग्ज्ञानार्थकौशल्यं' इति पाठः।
४. 'सप्तमस्थागने जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते। गजवाजिधरित्रीणां क्रमाल्लाभो विनिर्दिशेत्॥ भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात्कुजे विपदमादिशेत्। निमग्नौ क्लेश आयासः पतङ्गे व्यङ्गताभयम्॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः(3, 55-56)।

निधनस्थ इति। सहस्रांशौ सूर्ये निधनस्थे गृहारम्भकालिकलग्नादष्टमस्थानगे सति सदा शत्रुता विपदश्च स्यात्, शीतमयूखे शीतकिरणेऽष्टमस्थानगे हानिः स्यात्। मङ्गले रविजे शनैश्चरे चाष्टमस्थानगे भयं स्यात्। बुधेऽष्टमस्थानगे मानधनप्राप्तिः मान एव धनं तस्य प्राप्तिः स्यात्। सुरेज्ये गुरावष्टमस्थानगे महान् विजयः स्यात्। शुक्रेऽष्टमस्थानगे पुंसां पुरुषाणां विशेषतः स्वजनतः सुखं दद्यात्।

भाषा— यदि आठवें स्थान में सूर्य हो तो वैरवर्धन एवं नित्य विपदा, चन्द्रमा हो तो हानि, मङ्गल व शनि हो तो भय रहता है। बुध हो तो सम्मान के साथ धन का लाभ, गुरु हो तो चमत्कारिक विजय और शुक्र हो तो अपने ही व्यक्तियों से सुख मिलता है।

अथ नवमभावस्थग्रहाणां फलम् (तत्रैव 3, 63-64) —

[1]नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्यविवर्धनम्।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत्॥ 160॥
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे।
कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम्॥ 161॥

नवमस्थानग इति। जीवे नवमस्थानगे सति बुद्धिभाग्यविवर्धनं बुद्धेर्भाग्यस्य च आधिक्यं स्यात्। बुधे नवमस्थानगे विविधभोगाप्तिः नानाभोगाप्तिः स्यात्। शुक्रे नवमस्थानगे मन्दोदयो अल्पोदयो भवेत्। चन्द्रे नवमस्थानगे धातुक्षयः प्रोक्तः। भास्करे नवमस्थानगे धर्महानिः स्यात्। कुजे नवमस्थानगे सामर्थ्यहानिः स्यात्। रविजे शनौ नवमस्थानगे कामदूषणं कामे वाञ्छायां दूषणं दोषो बाधेत्यर्थः भवेत्।

भाषा— नवें भाव में गुरु हो तो बुद्धि एवं भाग्य का अभिवर्धक होता है। बुध हो तो अनेक प्रकार के भोगों का प्रदाता होता है। शुक्र हो तो किञ्चित भाग्योदय होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रमा नवे भाव में हो तो धातुक्षय रोग, सूर्य हो तो धर्म की हानि, मङ्गल हो तो धन का सामर्थ्य का क्षय एवं शनि हो तो कामदूषण का कारक बनता है।

अथ दशमभवनस्थखेटानां फलम् (तत्रैव 3, 65-66) —

1. 'सुराचार्ये महत् सौख्यं विजयं स्त्रीधनं बुधे॥ मार्तण्डे च सुहृद् बुद्धिश्चन्द्रे शोकविवर्धनम्। भौमे रुगागमः प्रोक्तः कोणे कीर्तिविलोपनम्॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः(3, 65-66)
२. 'लाभस्थानेषु सर्वेषु लाभस्थानं विनिर्दिशेत्। व्ययस्थानेषु सर्वेषु विनिर्दिश्यो विनिर्देश्यो व्ययः सदा॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः (3, 67)
इत्यमनन्तर मतमाह— स्वोच्चे पूर्णफलः प्रोक्तः पादोनं स्वर्क्षगो ग्रहः। स्वत्रिकोणेऽर्धफलदः पादं मित्रगृहाश्रितः॥ समर्क्षे रिपुराशौ च समकष्टफलौ ग्रहौ। नीचस्थो निष्फलः प्रोक्तो वर्गे सत्फलदः शुभः॥ (विश्वकर्मा. 3, 68-69)
अर्थात्— कोई भी ग्रह अपनी उच्चराशि में पूरा फल, अपनी राशि में तीन चौथाई फल, मूल त्रिकोण में आधा फल तथा मित्र ग्रह की राशि में एक चौथाई फल देता है। सम राशि समान व शत्रु की राशि में कष्टदायक फल देता है। यदि ग्रह नीच राशि में हो तो वह निष्फल होता है, शुभ वर्ग में शुभ फल देता है।

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः।
'सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे॥ 162॥
मार्त्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोषविवर्धनम्।
भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलोपनम्॥ 163॥

दशमस्थानग इति। शुक्रे दशमस्थानगे शयनासनसिद्धयः स्यात्। सुराचार्ये गुरौ दशमस्थानगे महत्सौख्यं भवेत्। तथा बुधे दशमस्थानगे विजयः स्यात्। मार्त्तण्डे सूर्ये दशमस्थानगे धनवृद्धिः स्यात्। चन्द्रे दशमस्थानगे कोषविवर्धनं स्यात्। भौमे सदा पुंसां पुरुषाणां बलं स्यात्। शनौ कीर्तिविलोपनं स्यात्।

भाषा— गृहारम्भ काल में यदि दसवें भाव में शुक्र हो तो शय्या एवं आसन की सिद्धि देता है। गुरु हो तो पर्याप्त सुख प्राप्ति, बुध हो तो विजय, सूर्य हो तो धन की वृद्धि होती है। चन्द्रमा हो तो कोष-बचत में बढ़ोतरी, मङ्गल हो तो गृहपति सदा ही बलवान् रहता है जबकि शनि हो तो कीर्ति का विनाश होता है।

अथ लाभस्थानां व्ययस्थानाञ्च ग्रहाणां फलम् (3, 67)—

'लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं फलम्।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः॥ 164॥

लाभस्थानगता इति। लाभस्थानगताः सर्वे ग्रहाः शुभं फलं प्रयच्छन्ति। व्यये द्वादशस्थानगे सर्वे ग्रहा विशेषतः सदा औदास्यं उदासीनतां प्रदिशन्ति।

भाषा— ग्यारहवें भाव में सभी ग्रह शुभ फल प्रदायक होते हैं तथा बारहवें व्यय भाव में सभी ग्रह उदासी प्रदायक होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्रम् —

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
1.	वज्रपात	हानि	मृत्यु	सामर्थ्य	त्रिवर्ग	पुत्र	दारिद्र्य
2.	हानि	शत्रुनाश	बंधन	धन	धर्म	विनोद	नानाविध
3.	लाभ	शुभ	अतिशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अतिशुभ
4.	महलाभ	बुद्धिनाश	मित्र[illegible]	लाभ	नृपमान्य	भूमि	मित्रविरह
5.	पुत्रपीड़ा	कलह	कार्यहानि	स्वर्ण	मित्रलाभ	पुत्रार्थ	कामनाश
6.	राजपूज्य	पुष्टि	मानादि	धन	विद्या	विद्या	शत्रुहानि

1. 'नैधने च सहस्रांशौ विह्विपोजनितापदः। शनिः शीतमयूखे च भौमे तौरं च राभयम्॥ बुधे मानधनप्राप्तिर्जीवे च विजयो भवेत्। शुक्रे स्वजनभेदः स्यान्मन्त्रज्ञस्यापिदेहिनः॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः(3, 61-62)
२. 'वागीशे नवमस्थाने विद्याभोगाभिनन्दनम्। बुधे विविधभोगाश्च शुक्रे च विजयो भवेत्॥ चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे। कुजे चार्थक्षयं स्याद्रविजे धर्मदूषणम्॥' इति विश्वकर्माप्रकाशपाठः(3, 63-64)

7.	कीर्तिभङ्ग	रोग	विग्रह	हय	राजभोग	भूमियोग	भयादि
8.	शत्रुता	हानि	भय	मानादि	विजय	सौख्य	भय
9.	धर्महानि	धातुक्षय	बलक्षय	भोगादि	वृद्धि	मन्दोदय	कामदूषण
10.	धर्मवृद्धि	कोशवृद्धि	सबल	विजय	सुख	शय्या	कीर्तिलोप
11.	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ
12.	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि

अथ गृहारम्भप्रसक्त्या सामान्यतः प्राग्लग्नबलमप्यभिधायेदानीमारब्धगृहाणां नियत स्थानावस्थित्या नियतायुर्दाययोगद्वयम् रामदैवज्ञौ (12, 22) —

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु।
स्थितिः शतं स्याच्छरदां सिताकारिज्ये तनुत्र्यङ्गसुते शते द्वे॥ 165॥

व्याख्या- अत्र योगद्वये ग्रहस्थानयोर्यथासंख्यं सम्बन्धः। तद्यथा, जीवो लग्ने, अर्कोऽरौ षष्ठे, विद् बुधो यामित्रे सप्तमे, शुक्रश्चतुर्थे, शनिस्तृतीये, एवंविधे समये प्रारब्धस्य गृहस्य स्थितिः शरदां शतमित्थेको योगः। सितः शुक्रो लग्ने, अर्कस्तृतीये, आरो मङ्गलः षष्ठे, ईज्यो गुरुः पञ्चम एवंविधे प्रारब्धस्य गृहस्य स्थितिर्द्वे शते वर्षशतद्वयमिति द्वितीयो योगः।[1]

1. गृहारम्भायुर्योगाः काल-प्रकाशिकायामेवं प्रदर्शिताः— 'अथ वक्ष्ये गृहारम्भ आयुर्योगं मुख्यायहम्। व्ययेन्दुसहितालग्ने चन्द्रगुरू लाभे कुजार्कजौ॥ यस्य तस्य समाशीतियुता लक्ष्मीयुता स्थितिः। गुरौ लग्नेऽस्तगे सौम्ये शौर्ये मन्दे रिपौ रवौ॥ जले शुक्रे समारब्धं जीवेद् वर्षशतं गृहम्। कवौ लग्ने गुरौ पुत्रे रवौ शौर्ये क्षते कुजे। समारब्धं गृहं जीवेद् वत्सराणां शतद्वयम्॥ मूर्तिस्थे तु यदा चन्द्रे जीवे चास्ते बुधे खगे। षट्शताब्दं समृद्धाः स्युर्गृहग्रामपुरादयः॥ शुक्रे वियति कामे ज्ञे जीवे चास्ते स्थिरे तनौ। षट्शताब्दं समृद्धाः स्युर्गृहपुरादयः॥ शुक्रे वेश्मनि कामे ज्ञे जीवे स्थिरगृहे सति। शताष्टकं विवृद्धाः स्युर्देवगेहोपमा गृहाः॥ सूर्योदये गुरौ चास्ते वियतीन्दुसमायुते। सहस्राब्दं विवृद्धाः स्युर्देवालयगृहादयः॥ शुक्रोदये स्मरे जीवे चन्द्रे खे संस्थिते सति। सहस्राब्दं समृद्धाः स्युर्देवालयगृहादयः॥ बुधोदये गुरौ चास्ते वियतीन्दुसमायुते। सहस्राब्दं समृद्धाः स्युर्देवालयगृहादयः॥ जीवोदये स्मरे सौम्ये वियतीन्दुसमायुते। सहस्राब्दं विवृद्धाः स्युः स्थिरे लग्ने गृहादयः॥' (कालप्रकाशिका अध्याय 25, पृष्ठ 127)

अर्थात्— गृहारम्भ काल में यदि चौथे स्थान में गुरु; दसवें चन्द्रमा; ग्यारहवें स्थान में मङ्गल एवं शनि होने पर बनवाया गया आवास अस्सी वर्ष तक स्थित रहता है और वहाँ लक्ष्मी की स्थिति रहती है। गुरु लग्न में हो; सातवें में बुध; तीसरे में शनि; छठे में सूर्य एवं चौथे स्थान में शुक्र के रहते आरम्भ किया गया गृह सौ वर्ष की आयु तक स्थिर रहता है। लग्न स्थान में शुक्र; पाँचवें में गुरु; तीसरे में सूर्य; छठे स्थान में मङ्गल के रहते आरम्भ हुआ गृह दो सौ वर्ष तक की आयु पूर्ण करता है। प्रथम स्थान में चन्द्रमा हो; गुरु सातवें में और बुध दसवें भवन में हो तो छह सौ साल तक भवन, ग्राम, पुर आदि समृद्धि से भरा-पूरा रहता है। शुक्र वियति या आठवें, बुध सातवें; गुरु अस्त या स्थिर अथवा प्रथम स्थान पर हो तो ऐसे में बनाया गया गृह और बसाया गया पुर आदि छह सौ वर्ष तक समृद्धि पूर्ण रहता है। शुक्र चौथे स्थान में हो; बुध सातवें में और गुरु स्थिर भवन में हो तब बनवाए गए गृह या देवगृह की एक सौ आठ वर्ष तक स्थिति रहती है। सूर्य लग्न में हो; गुरु सातवें में और दसवें भवन में चन्द्रमा हो तब बनवाया गया प्रसाद एक हजार वर्ष तक बना रहता है। लग्न में शुक्र हो; सातवें में गुरु एवं चन्द्रमा दसवें भवन में हो, तब बनवाया गया देवगृह और मानवावास आदि एक हजार वर्ष तक समृद्धि को प्राप्त रहते हैं। बुध यदि लग्न में हो; गुरु सातवें एवं दसवें स्थान पर चन्द्रमा हो तब बनवाया गया देवालय और गृह भी हजार वर्ष तक समृद्ध रहता है। गुरु यदि लग्न स्थान में हो; सातवें में बुध; दसवें स्थान में चन्द्रमा हो और स्थिर लग्न हो, तब बनवाया गया गृह भी एक हजार वर्ष तक की आयु प्राप्त करता है।

अथान्यदपि तत्रैव (12, 23) —

लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः केन्द्रे गुरौ वर्षशतायुरालयम्।
बन्धौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ लाभे तदाशीतिसमायुरालयम्॥ 166॥

व्याख्या- अत्रापि योगद्वये स्थानगृहयोर्यथासंख्यं सम्बन्धः। तद्यथा, लग्ने शुक्रः दशमे बुधः एकादशे सूर्यः लग्नव्यतिरिक्तकेन्द्रे गुरुः, एवंविधे योगे प्रारब्धगृहस्य वर्षशतायुरालयं स्थानं यस्य तादृशं स्यादयमेको योगः। चतुर्थे गुरुः, दशमे चन्द्रः, मङ्गलशनी एकादशे, तदा अशीतिसमानामशीतिवर्षाणामायुर्यस्य तादृशमालयं स्यादित्यन्यो योगः।

भाषा— गृहायुर्ज्ञान के लिए एक विचार यह भी है कि गृहादि के आरम्भकालीन लग्न में शुक्र, दसवें में सूर्य और केन्द्र (1, 4, 10) में वृहस्पति हो तो वह गृह 100 वर्ष की अवधि वाला होता है। इसी प्रकार यदि चतुर्थ स्थान में वृहस्पति, दशम में चन्द्रमा, ग्यारहवें स्थान में मङ्गल और शनि दोनों ही स्थित हो तो उस भवन की आयु 80 वर्ष होती है।

अथान्ययोगत्रयं मुहूर्त्तचिन्तामणौ (12, 24) —

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम्॥ 167॥

व्याख्या- स्वोच्चगे शुक्रे लग्नग इत्येको योगः, स्वोच्चगे गुरौ चतुर्थगे इति द्वितीयो योगः, स्वाच्चगे शनौ एकादश इति तृतीयो योगः।

भाषा— यहाँ लक्ष्मीयुत गृह के योगत्रय पर विचार है कि (1.) शुक्र यदि अपनी उच्च राशि मीन लग्न में हो, (2.) अथवा चतुर्थ स्थान में अपनी उच्च राशि (कर्क) का वृहस्पति हो, (3.) या फिर लाभ स्थान में अपनी उच्च राशि (तुला) का शनि हो— ऐसे तीन योग होने पर आरम्भ हुए गृह में चिर काल तक लक्ष्मी का निवास होता है, वह भवन ऐश्वर्य धन-धान्य से परिपूर्ण रहता है।

तदुक्तं रत्नमालायामपि (17, 25) —

स्वोच्चवर्तिनि भृगौ विलग्नगे देवमन्त्रिणि रसातलस्थिते।
स्वोच्चगे रविसुतेऽथवायगे स्यात्स्थितिः किल चिरं सह श्रिया॥ 168॥

स्वोच्चेति। शुक्र उच्चस्थे अथवा लग्नगे गुरौ उच्चस्थे चतुर्थे वा स्वोच्चगे शनौ एकादशे वा लक्ष्म्या सह गृहं चिरस्थापि भवति।

भाषा— आचार्य श्रीपति का मत है कि गृह कार्यारम्भ के समय अपनी उच्च राशि का शुक्र लग्न में अथवा अपने उच्च (कर्क) राशि का गुरु चतुर्थ भाव में अथवा अपनी उच्च राशि (तुला) का शनि एकादश स्थान में हो तो विभूति-ऐश्वर्य, लक्ष्मी से परिपूर्ण गृह चिरस्थायी होता है।

अथ गृहपरहस्तगामित्वयोगमाह रामदैवज्ञः (12, 25) —

द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम्।
अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्य्याच्चेद्वर्णपोऽबलः॥ 169॥

धूनाम्बरे इति। एकोऽपि ग्रहोऽत्युत्कृष्टफलदाता परांशस्थः शत्रुनवांशस्थः सन् यदि द्यूने सप्तमे अथवाऽम्बरे दशमे स्यात्तदा तद्गृहं परहस्तस्थं अन्यहस्तस्थं कुर्य्यात्। चेद्वर्णपो ब्राह्मणादिवर्णस्वामी 'विप्राधीशौ भार्गवेज्यावित्यादिना' य. य चेद्दुर्बलः स्यात्तदा, यदा वर्णाधीशः सबलस्तदा नेति।

भाषा— यदि अति शुभ फल देने वाला एक भी ग्रह शत्रु के नवांश में होकर सप्तम या चतुर्थ गृह में हो तथा ब्राह्मणादि क्रम से वर्ण स्वामी ग्रह भी बलहीन हो तो ऐसे ग्रहस्थिति में प्रारम्भ किया गया गृह एक ही वर्ष के अन्दर दूसरे व्यक्ति के अधीन हो जाता है।

तथैव श्रीपतिरप्याह (17, 27) —

एकोऽपि नूनं परभागवर्ती वियत्स्मरस्थः खचरोऽब्दमध्ये।
करोति गेहं परहस्तयातं स्याद्दुर्बलश्चेदिह वर्णनाथः॥ 170॥

एकोपीति। अथ यादृशे लग्ने गृहं न कार्यन्त तदाह- यद्येकोपिग्रहोदशमस्थः सप्तमस्थो वा पर नवांशगतः शत्रु नवांशगतो भवति तदा वर्ष मध्ये गृहं परहस्तगतं करोति वर्णाधिपश्चेद्बलहीनोऽन्यहस्तागतमेवेति द्वाभ्यां पर नवांशगताभ्यां पुनस्तत्काले गृहनाशो भवति।

भाषा— आचार्य श्रीपति का कथन है कि यदि एक भी ग्रह शत्रु की राशि नवमांश में स्थित होकर दसवें अथवा सातवें स्थान में अवस्थित हों और वर्णपति निर्बल हों तो अगले एक वर्ष के अन्दर-अन्दर गृह किसी अन्य के हस्तगत हो जाता है। परभाग से शत्रु का अंश माना जाता है।

अथात्र विशेषमाह रामदैवज्ञः (12, 26) —

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै
र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात्॥ 171॥

व्याख्या- पुष्यः प्रसिद्धः ध्रुवाणि रोहिणी उत्तरात्रयं, इन्दुः मृगशिरा, हरिः श्रवणा, सर्पः अश्लेषा, जलं पूर्वाषाढः, एतैर्नक्षत्रैः सजीवैः गुरुयुक्तैः, तद्वासरे गुरुवासरे, च कृतं गृहं प्रारब्धाल सुतान् राज्यं च ददाति, द्वीशः विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, पाशिः शतभिषा, शिव आर्द्रा, एतैर्नक्षत्रैः सशुक्रैः शुक्रसहितैः, सितस्य वासरे च कृतं गृहं धनानि सुवर्णानि धान्यानि वस्त्रादीनि ददाति।

भाषा— गेहारम्भ काल के नक्षत्र के नक्षत्र विशेष से फल पर विचार किया जा रहा है। पुष्य, ध्रुव संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा— इन नौ ही नक्षत्रों में से जिस किसी में बृहस्पति विद्यमान हो, उस नक्षत्र में और बृहस्पति वार को ही आरम्भ किया गया गृह पुत्र और राज्य प्रदाता होता है। इसी प्रकार विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा— इन छह नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर शुक्र हो या शुक्रवार को ही गृहारम्भ हुआ हो तो वह गृह धन-धान्य को देने वाला सिद्ध होता है।

वारेण गृहफलविशेषश्च नारदवाक्ये[1] (पीयूषधारा. 12, 26) —

श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रयम्।
गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोग्यमिहोच्यते॥
तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चियात्॥ 172॥

श्रवणेति। सुगमम्।

भाषा— श्रवण और पूर्वाषाढ़ा या उत्तराषाढ़ा, रोहिणी एवं उत्तरा त्रय नक्षत्रों में यदि गृह बनाया जाए तो वह राजयोग देने वाला कहा जाता है। उस गृह में जो पुत्र जन्म लेता है, उसे निश्चित ही राज्य की प्राप्ति होती है।

अत्रैव वसिष्ठोप्याह (वसिष्ठसंहिता 39, 32) —

ईज्योत्तरात्रयाहीन्दुविष्णुधातृजलोडुषु।
गुरुणा सहिते धिष्ण्ये कृतं गेहं श्रियान्वितम्॥ 173॥

ईज्योत्तरात्रयेति। ईज्यः पुष्यः, उत्तरात्रयः, अहिः आश्लेषा, इन्दुः मृगशिरा, विष्णुः श्रवणः, धातृः रोहिणी, जलोडु शतभिषाः शेषं सुगमम्।

भाषा— पुष्य, तीनों उत्तरा, आश्लेषा, मृगशिरा, श्रवण, रोहिणी, शतभिषा नक्षत्र हो एवं गुरुवार का योग हो तब यदि कार्यारम्भ किया जाए, तो ऐसा गृह सदा ही लक्ष्मी से युक्त होता है।

तथात्राह नारदः (पीयूषधारा. 12, 26) —

अश्विनीशततारासु विशाखाभाद्रपदेचित्रके।
धनिष्ठादितिसंयुक्ते तथा वै शुक्रवासरे॥ 174॥
[2]गृहं नाटकशालाख्यं देवागारं कृतं शुभम्।
तद्वेश्मनि प्रजास्तु कुबेरसदृशो भवेत्॥ 175॥

---

1. नारदसंहितायां प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।
२. रत्नावल्यां प्रकाशितपाठे नोपलभ्यते।

अश्विनीति। सुगमम्।

भाषा— अश्विनी, शतभिषा, विशाखा, पूर्वाभाद्रपदं, चित्रा, धनिष्ठा व पुनर्वसु— इन नक्षत्रों के साथ यदि शुक्रवार हो तब गृह, नाट्यशाला, देवालय आदि बनवाना शुभ होता है। वहाँ रहने वाले कुबेर की भाँति धनाढ्य होते हैं।

अत्र नारदोऽपि (तत्रैव 12, 27) —

मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाषाढमेव च।
पूर्वफाल्गुनि हस्तश्च मघा चैव तु सप्तके॥ 176॥
एषु भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव वेश्म यत्।
अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायते॥ 177॥

मूलं इति। सुगमम्।

भाषा— नारद के मत से कहा गया है कि मूल, रेवती, कृतिका, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त एवं मघा— इन सात नक्षत्रों में कोई भी यदि मङ्गल से युक्त हो, उस दिन मङ्गलवार ही हो तो ऐसे योग में आरम्भ हुआ गृह अग्निकाण्ड का शिकार होता है और वहाँ जन्म हुए पुत्र का विनाश होता है।

अत्रान्यदप्याह (मुहूर्तचिन्तामणौ 12, 28) —

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः।
समन्दैर्मन्दवारे च रक्षोभूतयुतं गृहम्॥ 176॥

अजैकपादिति। अजैकपादः पूर्वाभाद्रपदाः, अहिर्बुध्न्यः उत्तराभाद्रपदः, शक्रः ज्येष्ठाः, मित्रः अनुराधाः, अनिलः स्वातीः, अन्तकः भरणीनक्षत्रैः समन्दैः शनैश्चर युक्तैर्मन्दस्यैव वारे च प्रारम्भं गृहं रक्षोभिर्भूतैश्च युतं स्यात्। यदाह वसिष्ठः— अजपादद्वितये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च। यत्कृतं शनि संयुक्ते दिह्यते यक्षराक्षसे। इति। अत्र दिह्यते उपचीयते 'दिह उपचये' इति धातुः। नारदोऽपि— ज्येष्ठानुराधके चैव भरणीस्वातिपूर्वभे। धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद्दिनस्य च॥ कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे। पुत्रो जातोऽथवा तस्मिन्गृह्यते यक्षराक्षसैः॥ इति।

भाषा— यदि पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती और भरणी नक्षत्रों में किसी पर भी शनि हो और उस दिन शनिवार ही पड़ता हो तो तब आरम्भ किए गए गृह में राक्षस व भूत-पिशाच निवास करने लगते हैं।

अथाश्वशालानिर्माणप्रकारो वास्तुराजवल्लभे (9, 24-25) —

तुरङ्गमाणां गृहवामभागे शाला चतुःषष्टिकरा[64] विधेया।
शतार्द्धतो मध्यमिका च दैर्घ्ये कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना॥ 173॥

व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशभिः क्रमेण।
तद्वाह्यभित्तिश्च करप्रमाणं पञ्चार्धपञ्चाग्निकरोदरा स्यात्॥ 174॥

व्याख्या- स्वगृहस्य वामभागे चतुःषष्टिकरात्मिना तुरङ्गमानां शाला श्रेष्ठा भवतीति। शतार्द्धतः शतार्द्धकरात्मिका पञ्चाशद्धस्तमिता वाजिशाला मध्या स्यात्। दशभिर्विहीना मध्या कनीयसी चत्वारिंशत्करात्मिका कनीयसी कनिष्टेत्यर्थः। एवं दैर्घ्यप्रमाणमभिधायाधुना पूर्वक्रमेण विस्तारप्रमाणमाह। व्यासे चेति, व्यासे विस्तारे तिथिहस्ततुल्या पञ्चदशकरात्मिका श्रेष्ठा कथितेति। मध्याया विस्तृतिस्त्रयोदशकरात्मिका, कनीयसी तु एकादशहस्तविस्तारा स्यादिति। तद्वाह्यभित्तिस्तु पञ्चार्द्धपञ्चाग्निकरोदरेति। अत्रेयं व्यवस्था- श्रेष्ठाख्याशालाया भित्तिः पञ्चकरोदरा पञ्चकर उदरे गर्भे यस्याः सेति। मध्यायाः सार्धपञ्चकरोदरा, कनीयस्या अग्निकरोदरा भित्तिरित्यर्थः।

भाषा— राजप्रासाद में अश्वशाला सदैव वाम भाग में बनानी चाहिए। यदि अश्वशाला 64 हाथ लम्बी हो तो उसे 'ज्येष्ठमान' वाली, 50 हाथ वाली को 'मध्यमान' तथा 40 हाथ लम्बी अश्वशाला को 'कनिष्ठमान' वाली कहा गया हैं। साठ हाथ की अश्वशाला का व्यास 15 हाथ, 50 हाथ वाली का 13 हाथ तथा 40 हाथ की अश्वशाला का व्यास 11 हाथ रखें। अश्वशाला की भित्तियों को चौड़ाई एक गज तथा ऊँचाई क्रमशः साढ़े पाँच हाथ, पाँच हाथ और चार हाथ रखनी चाहिए।

तदुक्तं तत्रैव (9, 26) —

तेजोहानिमयीहिया विदधते पूर्वापरास्या नृणाम्।
ते याम्योत्तरतो मुखा हि सततं कीर्त्तिं यशोधान्यकम्॥ 175॥

तेजोहानि इति। अश्वशा[illegible]ां अश्वबन्धनविधिमाह, पूर्व-पश्चिममुखं तेजस्य हानिम्, उत्तर-दक्षिणमुखं कीर्तिंश्च यशोधान्य ददातु।

भाषा— अश्व का मुख पूर्व-पश्चिम दिशा में रखकर बाँधने से उनकी तेजस्विता का क्षय होता है। दक्षिण या उत्तर में मुख रखने से कीर्ति, यश और धान्यादि की अभिवृद्धि होती है।

अथ सिंहद्वारनिर्माणप्रकारो वास्तुराजवल्लभे (9, 28) —

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्व्येका वा मालिका स्तम्भशीर्षे।
स्यातां मध्ये तोडकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागैनाधिकौ वापि सार्धौ॥ 176॥

सिंहद्वारमिति। पूर्वनिर्दिष्टमानप्रमाणात् सिंहद्वारः मुख्यद्वार एकं वा द्वयं वा त्रितलं कुर्यात्, तत्र स्तम्भशीर्षं, अर्गला दैर्घ्यायाम समतुल्यं कुर्यात्।

भाषा— राजमहल में सिंहद्वार पूर्वनिर्दिष्ट मान से बनाएँ। इसमें स्तम्भों के शीर्ष पर तीन, दो अथवा एक मालिका यानी तल की रचना करें। मध्य की रक्षार्थ दो अर्गला हों

जो लम्बाई-चौड़ाई में बराबर हो किन्तु एक अर्गला काष्ठ सवा या डेढ़ गुना अधिक रखा जा सकता है।

अथ गजशालानिर्माणप्रकारस्तत्रैव (9, 29) —

भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेर्द्वारतः
कर्त्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिताः।
सङ्कीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टतः
सर्वेषूत्तमभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः॥ 177॥

भागे दक्षिणवामक इति। हरेर्द्वारतः सिंहद्वारतः, दक्षिणवामके सव्यापसव्यके भागे, करिणां हस्तिनां कलशैः, घण्टादिभिश्च भूषिता सुदृढा उन्नता शाला कर्तव्या। अथ हस्तिसञ्ज्ञामाह-सङ्कीर्ण इति। रसतः सङ्कीर्णः षट्परिमितहस्तोच्छ्रितो हस्ती सङ्कीर्णः सङ्कीर्णसञ्ज्ञको भवति। नगैः सप्तहस्तैः, मन्दो मन्दसञ्ज्ञकः अष्टश्चाष्टभिर्हस्तैर्मृगः मृगसंज्ञकः, नन्दैः नवमितैः करैरुच्छ्रितो हस्ती सर्वेषु निखिलेषु करिषु, उत्तमः श्रेष्ठः भद्रजातिः भद्रजातिसञ्ज्ञकः उदितः कथितः।

भाषा— राजप्रासाद में जो सिंहद्वार होता है, उसके दक्षिण भाग में उन्नत और सुदृढ़ हस्तिशाला का निर्माण किया जाना चाहिए और उसे कलश व घण्ट्यादि से सज्जित किया जाना चाहिए। अब हाथियों के भेदादि पर विमर्श किया जा रहा है- यदि हाथी छह हाथ ऊँचा हो तो उसे 'सङ्कीर्ण' कहा जाता है। इसी तरह सात हाथ ऊँचे हाथी को 'मन्द', आठ हाथ ऊँचे हाथी को 'मृग' और नौ हाथ ऊँचे हाथी को 'भद्र' कहा जाता है। भद्रजाति के गज को हाथियों की अन्य समस्त श्रेणियों में से श्रेष्ठ कोटि का माना जाता है।

विशेष— हाथियों की विशेष जानकारी पालकाप्य कृत गजशास्त्र में आई है। वराहमिहिर ने भद्र जाति के गज के लक्षण इस प्रकार बताए हैं कि शहद के समान रङ्ग वाले दाँत, अवयवों के विभाग से परिपूर्ण, बहुत स्थूल, बहुत कृशकाय, कार्यक्षम, तुल्य अङ्गों से युक्त, धनुषाकार पीठ की हड्डी वाला, सूअर के समान वर्तुलाकार जानु व कटि वाला भद्र जाति का गज होता है— मध्वाभदन्ता सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धा न कृशाः क्षमाश्च। गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः॥ *(बृहत्संहिता 66, 1)*

अथ द्वारचक्रमाह रामदैवज्ञः (12, 29) —

सूर्यक्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कौणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः सौख्यं
चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्॥ 178॥

सूर्यर्क्षादिति। सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात् युगभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः शिरसि उपरि भागेऽवस्थितैः फलं कर्तुर्गृहकर्तुर्लक्ष्मीप्राप्तिः स्यात्। ततो नागैः अष्टभिः कोणभैः कोणेष्ववस्थितनक्षत्रैरुद्वसनं जनावास रहितं स्यात्। ततो गजमितैरष्टपरिमितैः शाखासु द्वारशाखास्वव स्थितैः सौख्यं स्यात्। ततो गुणभैस्त्रिभिर्नक्षत्रैर्देहल्यवस्थितैर्गृहपतेर्मृतिः स्यात्। ततस्तदग्रिमैर्वेदभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैर्मध्यस्थितैः मध्यरूपेऽवकाशे स्थितैः सौख्य स्यात्। इदं पूर्वोक्तं चक्रं विलोक्य सुधिया शुभ शुभफलं द्वारं विधेयमिति।

भाषा— रामदैवज्ञ का मत है कि प्रवेशार्थ द्वारचक्र पर विचार करना चाहिए। सूर्य के नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र तक गणना करते हुए प्रथम चार नक्षत्र द्वार के सिर में रखें, उसमें द्वार लगाए जाने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके बाद 8 नक्षत्र चारों कोने में रखें, वहाँ द्वार स्थापना से भवन स्वामी को उद्वेग या भवन से भटकाव होता है। आगे के 8 नक्षत्र शाखा या उभयवाहु में स्थापित करें, उसमें यदि द्वार की स्थापना की जाती है तो वहां निवास से सुख सुलभ होता है। उसके बाद के 3 नक्षत्र देहली पर स्थापित करें, वहाँ पर द्वार स्थापना से गृहपति का मरण माना जाता है जबकि शेष 4 नक्षत्र मध्य में द्वार स्थापन से सुख की प्राप्ति होती है।

विशेष— मुहूर्तचिंतामणिकार की प्रमिताक्षराटीका में स्पष्टोक्ति है कि द्वारचक्र का अवलोकन कर ही द्वार की स्थापना से शुभशुभ को जानना कर्तव्य है— इदं चक्रं विलोक्य सुधिया शुभं शुभफलदं द्वारं विधेयं कर्तव्यमिति। *(प्रमिताक्षराटीका 12, 29)*

गोविन्ददैवज्ञ ने ज्योतिर्निबन्ध से द्वारचक्र को उद्धृत किया है– द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि भाषितं विश्वकर्मणा। सूर्यभाद्भचतुष्कं तु शिरस्योपरि विन्यसेत्॥ द्वे-द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयं द्वयम्। अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः॥ राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत्। शाखायां लभते लक्ष्मीमधश्चैव मृतिं लभेत्॥ मध्यमेषु लभेत्सौख्यं चिंतनीयं सदा बुधैः॥ *(तत्रैव)*

स्पष्टार्थ चक्रम् —

स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य
27 नक्षत्र	4	8	8	3	4
फलाफल	लक्ष्मी	उद्वेग	सुख	मृत्यु	सुख

अथ पुष्पवाटिकानिर्माणप्रकारमाह वास्तुराजवल्लभे (9, 18)—

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडनार्थम्।
एक द्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यान्मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः॥ 179॥

वामे भाग इति। वामे भागे गृहाद्वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां भूपतीनां त्रेधा त्रिप्रकारेण क्रीडनार्थं विनोदार्थं वाटिका कार्या, सा चैकद्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यात्। मध्ये वाटिकामध्ये तोययन्त्रैर्जलयन्त्रैः धारामण्डपं विधेयम्।

भाषा— राजमहल से बायें या दायें नृप के अनुरञ्जन के लिए बाग या वाटिका का निर्माण करना चाहिए। ऐसी वाटिका 100 दण्ड मान की होने पर कनिष्ठ, 200 दण्ड मान की मध्यम तथा 300 दण्ड मान की होने पर ज्येष्ठ वाटिका कहलाती है। ऐसी वाटिकाओं के मध्य में धारामण्डप और जलयन्त्र-फव्वारा आदि लगाने चाहिए।

अत्र विशेषमाह (9, 19)—

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयं
तन्मध्ये जलवापिका जिनपदैरेकांशतो वेदिका।
स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु कूपान्वितः।
कर्त्तव्यो जलयन्त्र एव विधिवद्भोगाय पृथ्वीभुजाम्॥ 180॥

क्षेत्रमिति। सप्तभिर्विभागैर्भाजितं क्षेत्रं कार्यं अतोऽनन्तरं भागत्रयं भद्रं विधेयम्। तन्मध्ये तस्यान्तरं जिनपदैः चतुर्विंशतिपदैः जलवापिका कार्या। एकांशतो वेदिका विधेया। द्वादशभिस्तम्भैः मध्यरचितः कार्यः। कोणेषु कूपान्वितः कार्यः। एवं निश्चयेन जलयन्त्र. पृथ्वीभुजां नृपाणां भोगाय विधिवत् पूर्वोक्तविधानेन कर्तव्यः।

भाषा— यहाँ जल की बावड़ी बनाने के लिए क्षेत्र के चारों ओर सात-सात भाग कर तीन-तीन भाग में भद्र करें। बीच के चौबीस पद में पानी भरा रहे, ऐसी बावड़ी बनाएं। इसके अनन्तर मध्य में एक भाग में वेदिका के लिए चबूतरा बनाएं। केन्द्र के भाग के चारों ओर के आठ भागों में द्वादश स्तम्भों की रचना करें। फव्वारों के बाहर के चारों ओर के कोनों के भागों पर विभिन्न प्रकार का अलङ्करण करवाएं, इस प्रकार से धारामण्डप युक्त वाटिका की रचना राजाओं के सुखोपभोग के लिए की जानी चाहिए।

अथ वाटिकायां वृक्षानाह वास्तुराजवल्लभे (9, 20)—

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनोवल्ली च निर्वालिका
जाती हेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला।
नारिङ्ग करणी वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकं
जम्बीरो बदरी च पूगमधुपा जम्बू च चूतद्रुमाः॥ 181॥

तस्यामिति। तस्यां पूर्वोक्तवाटिकायां चम्पककुन्दजातिसुमनोवल्ली विधेया। निर्वालिका च विधेया। जाती, हेमसमानकेतकिरपि तथा श्वेता पाटला, नारिङ्गः, करणी, वसन्तलतिका, आरक्तपुष्पादिकञ्च विधेयं, जम्बीरः बदरी च पूगः मधुपा च जम्बू च चूतद्रुमा आम्रद्रुमाश्च विधेयाः।

भाषा— वाटिका में चम्पा, कुन्द, निर्वालिका, बेल सहित जाती या चमेली, स्वर्णवर्ण की केतकी, श्वेत व पाटल या गुलाब जैसे पुष्पीय पादपों का रोपण करना

चाहिए। ऐसी वाटिकाओं में नारङ्गी, कनेर, वसन्तलता, जम्बीर नींबू, बेर, सुपारी, महुआ, जामुन और आम जैसे फलदार वृक्ष भी लगाने चाहिए।

अथ पुनस्तानेवाह (9, 21) —

मालूरः कदली च चन्दनवटावश्वत्थपथ्या शिवाः
चिञ्चाशोककदम्बनिम्बतरवः खर्जूरिका दाडिमी।
कर्पूरागुरुकिंशुकादयरिपुः पुन्नागको निम्बुको प्रोक्ता
नागलता च बीजनिभृता स्यात्तिन्दुकी लाङ्गली॥ 182॥

मालूर इति। मालूरः बिल्वः (बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषो मालूरः श्रीफलावपीत्यमरः), कदली रम्भा (कदली वारणवुसा रम्भा मोचांशुभत्फलेत्यमरः), चन्दनो गन्धसारः (गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियामित्यमरः), वटो न्यग्रोधः (न्यग्रोधो बहुपाद्वयः इत्यमरः), अश्वत्थः पिप्पलः (बोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशन इत्यमरः), पथ्या हरीतकी (अभया त्वव्यथा पथ्या वयस्था पूतनाऽमृता। हरीतकी हेमवती चेतकी श्रेयसी शिवेत्यमरः), शिवा शमी (शमी सक्तुफला शिवेत्यमरः), चिञ्चाऽम्लिका (तिन्तिडी चिञ्चम्लिकेत्यमरः) अशोकः प्रसिद्धः, कदम्बः प्रसिद्ध, निम्बतरुः प्रसिद्ध, एव, खर्जूरिका खर्जूरः, दाडिमो प्रसिद्धैव, कर्पूरः प्रसिद्धः, अगुकः वंशिका (वंशिकाऽगुरुराजार्ह इत्यमरः), किंशुकः पलाशः हयरिपुः हयमारकः (प्रतिहासशतप्रासचण्डातहयमारकाः। करवीर इत्यमरः) पुन्नागः देववल्लभः (पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभ इत्यमरः), निम्बुकी प्रसिद्धा, नागलता, बीजनिभृता, तिन्दुकी, लाङ्गली शारदी (लाङ्गली शारदीतोयपिप्पली शकुलादनीत्यमरः) शस्ता प्रोक्ता।

भाषा— वाटिका में पर्यावरणीय सौन्दर्य के लिए मालूर, केला, चन्दन, वट, पीपल, हरड़, आँवला, शमी, इमली, अशोक, कदम्ब, नीम, खजूर, दाड़िम, कपूर, अगरु, पलाश, सफेद कनेर, जायफल, नींबू, नागरबेल सहित बीजपूरक, तिन्दुकी या टिमरू व लाङ्गली के वृक्ष भी लगाने चाहिए।

अन्यदप्याह (9, 22)—

द्राक्षैलाशतपत्रिकाथ बकुला धत्तूरकङ्कोलकौ
शालास्तालतमालकौ मुनिवरो मन्दारपारिद्रुमौ।
अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यशकलास्ते रोपणीयाप बुधैः
यं प्राप्नोति च भूतले शुभतरुं तच्चम्पकं वापयेत्॥ 183॥

द्राक्षैला इति। द्राक्षः द्राक्षफलः, एलाः बहुला सूक्ष्मैलाः कोरङ्गी चन्द्रबाला इति भाषा, शतपत्रिकाः अतिरसा, ऊर्ध्वकण्टका शेष सुगमम्।

भाषा— इसी प्रकार द्राक्षालता, इलायची, शतपत्रिका, बकुल या मौलसिरी,

धतूरा, कङ्कोल, शाल, ताल, तमाल, अगस्तिया, मन्दार, पारिजात और अन्य पृथ्वी (अपने-अपने क्षेत्र विशेष) पर पाए जाने वाले सुखोपयोगी विचित्र वृक्षों व चम्पक द्रुमों को भी विद्वानों को वाटिकाओं में रोपना चाहिए।

अन्यदप्याह (9, 23) —

आस्थानप्रातसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारो भवेद्
दोला स्त्रीजनखेलनाय सुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे।
बाला प्रौढवधूः सुमध्यवनिता गानैर्मनोहारिभिः
ग्रीष्मे शारदकेऽथ शीतलजलक्रीडा शुभे मण्डपे॥ 184॥

आस्थानप्रतिसेचनायेति। आस्थानप्रति॰चनाय सभामण्डसेचना (समज्या-परिषद्-गोष्ठी-सभा-समिति-संसदः। आस्थानं। क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सद इत्यमरः) सुसारः घटीयन्त्रः स्यात्। सुचिरे मनोहरे, वर्षावसन्तोत्सवे स्त्रीजनखेलनाय कामिनीजनक्रीडनाय, दोला विधेया। अथ या बायाया च प्रौढवधूः प्रौढा या च सुमध्यवनिता सुन्दरीमध्या, तासां मनोहारिभि सुन्दरैः, गानैः गीतैः, ग्रीष्मे ग्रीष्मर्तौ, शारदके शरदर्तौ शुभे मण्डपे शोभन मण्डपमध्ये, शीतलजलक्रीडा विधयेति शेषः।

भाषा— बगीचा या आस्थान मण्डप की वनस्पति को उत्तम सिंचाई के लिए वहाँ अरहट या फारसी यन्त्र स्थापित करना चाहिए। रहट को सार अथवा कालियाहर वृक्ष के काष्ठ का बनाएँ। इसके साथ ही वहाँ बालाओं और प्रौढ़ वधुओं-वनिताओं के वर्षा व वसन्त ऋतु में गायन-दोलन, मनोरञ्जन के निमित्त झूले लगवाएँ। इसी तरह गर्मी व शरद ऋतु में शीतल जल क्रीड़ा के लिए मण्डपदार हौज में जलादि का प्रबन्ध करें।

अथ दुर्गनिर्माणफलम् (4, 1) —

वापीकूपतडागदेवभवनान्यारामयागादिकं
तीर्थानामवगाहनं च विधिवत्कन्याप्रदानादिकम्।
सर्वं पुण्यमिदं नृपः स लभते यः कारयेत् पर्वते
दुर्गं सर्वजनाय शर्मजननं विश्राममेकं परम्॥ 185॥

वापीकूपतडागेत्यादिति। वापीकूपतडागदेवभवनानि वापीकूपतडागदेवभवनानां निर्माणं आरामयागादिकं अरामनिर्माणं यागादिकं च, तीर्थानां अवगाहनं, विधिवत् विधानपूर्वकं कन्याप्रदानादिकं सर्वं इदं यत्पुण्यं तद स नृपो लभते यो नृपः सर्वजनाया-खिलजनाय शर्मजननं कल्याणकारकं पर्वते दुर्गं करोति, पुनः किंः भूतं दुर्गं एकं मुख्यं परं प्रधानं विश्रामं विश्रामस्थानम्।

भाषा— सभी को सुख की प्राप्ति होने के साथ ही शत्रु के डर से बचाए— ऐसा किला बनाने से राजा को कुएँ, तालाब, मन्दिर, बाग आदि के पुण्यों का फल मिलता है,

यहाँ तक कि ऐसे कार्य से राजा को तीर्थों में स्नान और कन्यादान का पुण्य भी प्राप्त होता है।

अथ निदर्शनम् (4, 2) —

सिंहो वैरिपराभवं प्रकुरुते तिष्ठन् गिरेर्गह्वरे
दुर्गस्थो नृपतिः प्रभूतकटकं शत्रुं जयेत्सङ्गरे।
कैलाशे नगरं शिवेन रचितं गौर्य्यादि संरक्षणं
दुर्गं पश्चिमसागरे च हरिणाऽन्येषां किमत्रोच्यते॥ 186॥

सिंहो वैरिपराभवमिति। गिरेः पर्वतस्य, गह्वरे गुहायां (देवखातविले गुहेत्यमरः), सिंहो मृगेन्द्रः तिष्ठन् वर्तमानः सन्, वैरिपराभवं शत्रुपराजयं स्वशत्रुरूपसर्वजन्तुविनाशनं यथा प्रकुरुते, तथैव दुर्गस्थो नृपतिः राजा सङ्गरे युद्धे प्रभूतकटकं भूरिसैन्यं, शत्रुं रिपुं जयेत्। अत एव शिवेन शम्भुना कैलाशे नगरं रचितं, यत्र गौर्य्यादिसंरक्षणं पार्वत्यादिसंरक्षणं भवति। हरिणा विष्णुना च पश्चिमसागरे पश्चिमसमुद्रे दुर्गरचितमतोऽत्रान्येषां साधारणनृपतीनां किमुच्यते, अर्थात्तेषां कर्त्तव्यमेवास्ति।

भाषा— जिस प्रकार पर्वत की गुफा में सिंह किसी शत्रु का नाश करता है, उसी तरह सैन्यवलयुक्त शत्रु का दुर्गाधिपति राजा युद्ध में विनाश कर सकता है। यही मानकर पार्वती आदि की रक्षा के लिए महादेवजी ने कैलाशगिरि पर नगर वसाया तथा पश्चिमी सागर में भगवान विष्णु ने किला वनवाया (श्रीकृष्णचन्द्र ने द्वारका नामक नगरी बसाई है[1]) इसलिए मनुष्यों को भी दुर्ग का निर्माण करवाना चाहिए।

अथ दुर्गभेदास्तत्र गिरिदुर्गस्य महत्त्वम् (4, 3) —

भूदुर्गं जलदुर्गमद्रिविषमे दुर्गं भवेद्गह्वरे-
तेषामुत्तममद्रिमूर्ध्निरचितं तद्वैरिणां दुर्गमम्।
अन्नाद्यैर्घृततोयतैललवणैः काष्ठैस्तृणाद्यैस्तथा
यन्त्रोपस्करवाणशस्त्रसुभटैः सम्पूरयेद् भूपतिः॥ 187॥

भूदुर्गमिति। भुदुर्गं, भूमौ दुर्गं, जलदुर्गं जले दुर्गं, अद्रिविषये पर्वतदेशे दुर्गं, गह्वरे गुहायां दुर्गमिति चतुर्धा दुर्गे भवेत्। तेषां चतुर्णां मध्ये अद्रिमूर्ध्नि पर्वतशिखरे, रचितं दुर्गमुत्तमं भवति। तद् दुर्गं वैरिणां शत्रूणां दुर्गमं गन्तुमशक्यं भवति। भूपतिः- राजा, अन्नाद्यैः घृततोयतैललवणैः, काष्ठैः तृणाद्यैः, तथा यन्त्रोपस्करवाणशस्त्रसुभटैः, तद् दुर्गे सम्पूरयेत्।

---

1. तथा च हरिवंशे— रोहिण्यामहनि श्रेष्ठे स्वस्ति वाच्य द्विजोत्तमान्। पुण्याहघोषैर्विपुलैर्दुर्गस्यारब्धवान् क्रियाम्॥ ततः पङ्कजपत्राक्षो यादवान् केशिसूदनः। प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो देवान् वृत्ररिपुर्यथा॥ कल्पितेयं मया भूमिः पश्यध्वं देवसद्मवत्। नाम चास्याः कृतं पुर्याः ख्यातिं यदुपयास्यति॥ इयं द्वारवती नाम पृथिव्यां निर्मिता मया। भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती॥ इत्यादी...। (विष्णुपर्व 58, 3-6)

भाषा— दुर्ग नाना प्रकार के होते हैं— 1. भूमिदुर्ग, 2. जलदुर्ग, 3. गिरिदुर्ग तथा 4. गह्वरदुर्ग।[1] इनमें से तीसरा किला यदि उत्तुङ्ग पर्वत के शिखर पर बनवाया जाए हो तो सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि ऐसे किले में शत्रु का प्रवेश कठिन ही नहीं असम्भव होता है। इन किलों में जीवनोपयोगी अन्न, घी, पानी, नमक, ईंधन, घास और युद्ध सामग्री, हथियार आदि तथा सुभट योद्धा को रखने की राजा में युक्ति होनी चाहिए।

विशेष— विष्णुधर्मोत्तरपुराण एवं मत्स्यपुराण में दुर्ग निर्माण और वहाँ संग्रहणीय वस्तुओं का विस्तार से वर्णन आया है कि सभी बहुमूल्य पदार्थों से भरा-पूरा रहने पर पुर-नगर एवं वहाँ के निवासी सुरक्षित रहते हैं। राजा (और उसके प्रमुख अधिकारी) उक्त नगर में अति निर्मल, शुभ गुण-लक्षणों से युक्त बनवाए गए भवन में रहने चाहिए— इत्येवमेतैः सकलैरुपेतैर्द्रव्यैः परार्घ्यैः परिरक्षितः स्यात्। राजा वसेत् तत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम्॥ *(मत्स्य. 217, 80)*

मयमतम् में भी आया है कि किसी भी दुर्ग में कभी समाप्त नहीं होने वाला जलभण्डार, अन्नागार, आयुधागार हो।[1] उसके चतुर्दिक समुन्नत, सुदृढ़, मोटा परकोटा बना हुआ हो। समस्त दुर्गों के लिए (बुर्जों की) शृङ्खलाएँ हो, प्राकार हो और वे अनेक मोर्चों पर रक्षित हों— अक्षयजलान्नशस्त्रं ह्यतिविपुलोत्तुङ्गघनसालम्। सर्वं हि दुर्गजालं सप्राकारं त्वनेकमुखरक्षम्॥ *(मय. 10, 39)*

---

1. मानसार में दुर्गों का वर्णन इस प्रकार आया है— वक्ष्ये यथाक्रमं सर्वाणि दुर्गाणि दुर्गकं च। गिरिदुर्गं वनदुर्गं सलिलं पङ्कदुर्गकम्॥ रथदुर्गं देवदुर्गं मिश्रदुर्गं तथैव च। पर्वतावृतन्मध्ये च पर्वतस्य समीपके॥ पर्वताग्रप्रदेशे तु गिरिदुर्गमिति त्रिधा। तालपर्जन्यान्तरयुक्तं गगनं च प्रवेशनम्॥ एतत्तु वनदुर्गं स्याज्जलदुर्गमिहोच्यते। समुद्रैश्च नदीभिश्च संवृतं जलदुर्गकम्॥ पर्वतकन्दरैर्युक्तं दुष्प्रवेशं च शत्रुभिः। दुर्गं तु कृत्वा नृपतिस्तिष्ठेत्पङ्कदुर्गकम्॥ वनाभावे जलाभावे सवरून्यान्तरकम्। चौरैश्च सङ्कुलस्थानं निर्ग्रामं रथदुर्गकम्॥ ब्रह्मराक्षसवेतालं भूतप्रेतादिभैरवाः। शिलावर्षं प्रवर्षन्त्यालोक्य वंशाननिर्गमे॥ मन्त्रतन्त्रादिसामर्थ्यैः कृतान्तं देवदुर्गकम्। अनेकपर्वतोपेतं नानावनसमन्वितकम्॥ तत्रास्थितं तु तद्दुर्गं मिश्रदुर्गमिति स्मृतम्। सर्वेषामपि दुर्गाणां वप्रैश्च परिखैर्वृतम्॥ प्रवेशनिर्गमस्थाने द्वारैरपि समन्वितम्। इष्टकादिकृतं वप्रे हस्ताद्दशकोर्ध्वकृतम्॥ तदधोभित्तिमूले तु सञ्चारैः सह विस्तृतम्। नगराणां तु सर्वेषां वक्ष्ये विन्यासलक्षणम्॥ प्राक् प्रत्यगायतं दक्षिणोत्तरसमन्वितम्। एकरथ्यां समारभ्य चैकैकं वीथिवर्धनात्॥ वीथिद्वादशपर्यन्तं युग्मायुग्मं प्रकल्पयेत्। अन्योऽन्यानुक्तविन्यासं ग्रामे पूर्वोक्तवत्कुरु॥ वास्तुविन्यासमिति ज्ञात्वोहापोहेन योजयेत्। एवं तु नगरं प्रोक्तं शिल्पिना कारयेत्क्रमात्॥ (मान. 10, 45-58)

तथा चान्ये— धन्वदुर्गं, महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा। नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्। एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाप्चराः। त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः॥ यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः। तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम्॥ (मनु. 7, 70-73)

यामिकै रक्षितो नित्यं नालिकास्त्रैश्च संयुतः। सुगुप्तदृढगुल्मश्च सुगवाक्षप्रणालिकः॥ स्वहीनप्राकारो इम्पयोपमरोधः। परिखा च ततः कार्या खातार्द्धिगुणविस्तरा। नातिसमीपप्राकारा ह्यगाधसलिला शुभा। पुनःसाध्य सम्भारैः सुपुष्टकुशालैर्मिता॥ न श्रेयसे दुर्गवासो राज्ञः स्याद्बन्धनाय सः। (शुक्रनीति 1, 239-242)

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्। शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतश्च समावृतम्। गोपुरं सकपाटं च तत्र स्यात् मनोहरम्।

सपताकं गजारूढो येन राजा विशेत् पुरम् ॥ (मत्स्यपुराण 217, 8-9)

अथ विविधपुरनामानि (4, 4) —

माहेन्द्रं चतुरस्त्रमायतरपुरं तत्सर्वतो भद्रकं वृत्तं
सिंहविलोकनं निगदितं वृत्तायतं वारुणम्।
नन्दाख्यं च विमुक्तकोणमथ नन्दावर्तकं स्वस्तिकाकारं
स्याद्यववज्जयं तदपि यद्दिव्यं गिरेर्मस्तके ॥ 188 ॥

माहेन्द्रमिति। चतुरस्रं चतुर्भुजाकारं दुर्गं माहेन्द्रं, आयतपुरमायताकारं यत्तत्सर्वतोभद्रकं सर्वतोभद्रसञ्ज्ञं भवति। वृत्तं वृत्ताकारं यद् दुर्गं तत् सिंहविलोकनं सिंहविलोकनाख्यं भवति। वृत्तायतं दीर्घवृताकारं वारुणं निगदितम्। विमुक्तकोणं वर्जितकोणकं यद्दुर्गं तत् नन्दाख्यं नन्दसञ्ज्ञकं निगदितम्। स्वस्तिकाकारं नन्दावर्तकं नन्द्यावर्तसञ्ज्ञकं भवति। यववत् यवाकारं यद्दुर्गं तज्जयं जयाख्यं स्यात्। यद् गिरेः पर्वतस्य, मस्तके शिखरे गह्वरं तद्दिव्य दिव्याख्यं, अपि निश्चयेन निगदितम्।

भाषा— जो नगर चतुस्र अथवा चौकोर हो, उसे 'माहेन्द्र' कहा जाता है। जो लम्बाई के साथ चौकोर हो, उसे 'सर्वतोभद्र'; वृत्ताकार को 'सिंहविलोकन'; वृतायत अथवा लम्बगोल को 'वारुण', कोणों वाले को 'नन्द', स्वास्तिक के आकार वाले को 'नन्द्यावर्तक'; यव या जौ के आकार वाले को 'जयाख्य' तथा पर्वत के शिखर पर बसे नगर को 'दिव्य' कहा जाता है।

अन्यदप्याह (4, 5) —

पुष्पं चाष्टदलोपमं च पुरुषाकारं पुरं पौरुषम्।
स्राहं कुक्षिषु भूधरस्य कथितं दण्डाभिदं दैर्घ्यकम्।
शक्रं प्राक् सरिता परत्र कमलं याम्ये नदी धार्मिकं
द्वाभ्याञ्चैव महाजयं च धनदाशायां नदी सौम्यकम् ॥ 189 ॥

पुष्पमिति। अष्टदलोपममष्टदलसदृशं दुर्गे पुष्पं पुष्पाख्यं स्यात्। पुरुषाकारं पुरुषसदृशं पुरं दुर्गे पौरुषं पुरुषनामधेयं स्यात्। भूधरस्य पर्वतस्य कुक्षिषु जठरेषु मूलेध्वीत्यर्थः, यद्दुर्गं तत्स्राहं स्राहनामकं स्यात्। दैर्घ्यकं दीर्घाकारं दण्डाभिधं दण्डनामकं स्यात्। यस्य प्राक् पूर्वदिशि सरिता नदी तच्छकं शक्राख्यं स्यात्। परत्र पश्चिमदिशि सरिता यस्य तत् कमलं कमलाख्यं स्यात्। याम्ये दक्षिणदिशि नदी यस्य तद्धार्मिकं स्यात्। द्वाभ्यां नदीभ्यां महाजयं महाजयनामकं स्यात्। धनदाशायां धनदस्य कुबेरस्याशायां उत्तरस्यां दिशि यस्य नदी स्यात् तत्सौम्यकं भवेत्।

भाषा— जो नगर अष्टदल कमल जैसी आकृति का हो, उसे 'पुष्पपुर' कहा जाता है। इसी तरह पुरुष की आकृति वाले को 'पौरुष'; पर्वत की गोद में बसे नगर को 'स्राह'; पगड़ी की तरह लंबा हो उसे 'दण्डनगर', जिसके पूर्व में नदी हो उसे 'शक्रपुर', पश्चिम में नदी हो उसे 'कमलपुर', दक्षिण में नदी वाले को 'धार्मिकपुर' कहते हैं। जिसके दो ओर नदी हो उसे 'महाजय' तथा उत्तर में नदी हो तो उसे 'सौम्य' नगर कहा जाता है।

पुनरन्यदाह (4, 6) —

प्राकारैकयुतं श्रियाख्यनगरं द्वाभ्यां रिपुघ्नं परं
त्वष्टास्त्रं कथयन्ति स्वस्तिकमितिप प्रोक्ता गुणा विंशतिः।
भूपानां सुखदा यशोर्थफलदाः कीर्तिप्रतापोद्भवाः
लोकानां च सुखप्रदा विरचिताः प्राक् शम्भुनेमे गुणाः ॥ 190 ॥

प्राकारैकयुतमिति। प्राकारैकयुतं शालकयुत (प्राकारो वरणः शाल इत्यमरः) यन्नगरं तच्छ्रियाख्यनगरं स्यात्। द्वाभ्यां शालाभ्यायुतं नगरं तत्परं प्रधानं रिपुघ्नाख्यं स्यात्। अष्टास्रमष्टकोणयुतं तत्स्वस्तिकमिति देवाज्ञाः कथयन्ति। इमे विंशतिर्गुणाः प्रोक्ताः इमे गुणा किं भूताः भूताना राज्ञां सुखदाः कीर्ति प्रतापोद्भवा यशोर्थफलदाः। लोकानां साधारणमनुष्याणा न सुखप्रदा भवन्ति। अतः प्राक् पूर्वं शम्भुना शिवेन इमे गुणा प्रोक्ताः।

भाषा—जिस नगर में एक किला हो उसे 'श्रीनगर' कहा जाता है। इसी तरह जिस नगर में दो किले हों उसे 'रिपुघ्न' नगर तथा आठ कोण वाले नगर को 'स्वास्तिक' नगर कहा जाता है— इस तरह महादेव ने 20 तरह के नगर बनाए हैं।[1] ऐसे नगरों में लोगों के निवास करने से वहाँ के राजा को सुख, यश और धन की प्राप्ति होने के साथ ही उसकी कीर्ति एवं प्रताप में भी अभिवृद्धि होती है।

अथ त्रिकोणादिनगराणां फलान्याह (4, 7) —

वह्नेभीर्तिकरं त्रिकोणनगरं षट्कोणकं क्लेशदं
वज्रे वज्रभयं च शाकटपुरे रोगास्त्रिशूले कलिः।

---

1. अपराजितपृच्छायाऽपि नगराभिधानाऽऽकारादीनां समानरूप वर्णिताः। यथा —

क्रम	नगर नाम	आकार	क्रम	नगर नाम	आकार
1.	माहेन्द्र	चौरस	11.	श्रीपुर	एकदुर्गीय
2.	सर्वतोभद्र	लम्बचौरस	12.	रिपुदमन	द्विदुर्गीय
3.	सिंहावलोकन	वृत्तगोल	13.	स्राह	पर्वतोपकुक्षी
4.	वारुण	लम्बगोल	14.	दिव्य	गिरिमस्तक
5.	नन्द्यावर्त	स्वस्तिकाकार	15.	सौभाग्य	सरितीर
6.	नन्दाख्य	मुक्तकोण	16.	धर्म	[illegible]
7.	पुष्पक	अष्टदलपुष्पाकार	17.	कर्मप	नदी के पश्चिम में
8.	स्वस्तिक	अष्टास्र	18.	शक्र	नदी से पूर्व
9.	पार्श्वदण्ड	अतिदीर्घ	19.	पौरुष	पुरुषाकृतिनगर
10.	जयाख्य	यवाकृति	20.	साम्प्रत	नदी के दो ओर

प्रोक्तं तस्करभीतये द्विषकं कर्णाधिकेऽर्थक्षयं
दोषाः सप्त भयावहाः प्रकटिता ये विश्वकर्मादिभिः ॥ 191 ॥

वह्नेर्भीतिकरमिति। त्रिकोणनगरं त्रिकोणाकारं नगरं, वह्नेरग्नेर्भीतिकरं भयकरं भवति। षट्कोणकं षट्कोणाकारं, क्लेशदं कष्टदं भवति। वज्रे वज्राकारे नगरे वज्रभयं स्यात्। शाकटपुरे शकटाकारपुरे, रोगा नानाविधगदा भवन्ति। त्रिशूले त्रिशूलाकारे कलिः कलहः स्यात्। द्विशकटं द्विशकटाकारं, तस्करभीतये चौरभयाय भवति। कर्णाधिके विषमायताकारे, अर्थक्षयं धनक्षयं भवति। इमे ते सप्त दोषः स्युर्ये विश्वकर्मादिभिः प्रकटिताः प्रकाशीकृताः।

भाषा— जिस नगर के तीन कोण हों उसमें आग लगने की आशङ्का रहती है। षट्कोणीय नगर में क्लेश; वज्राकार नगर में बिजली गिरने; बैलगाड़ी के आकार वाले नगर में रोग का भय; त्रिशूलाकार में युद्ध का भय; द्विशकटाकार होने पर तस्कर भय तथा चार से अधिक कोणीय नगर में धन विनाश का भय रहता है— ऐसे सात प्रकार के पुरों के दोषों को विश्वकर्मा ने कहा है।

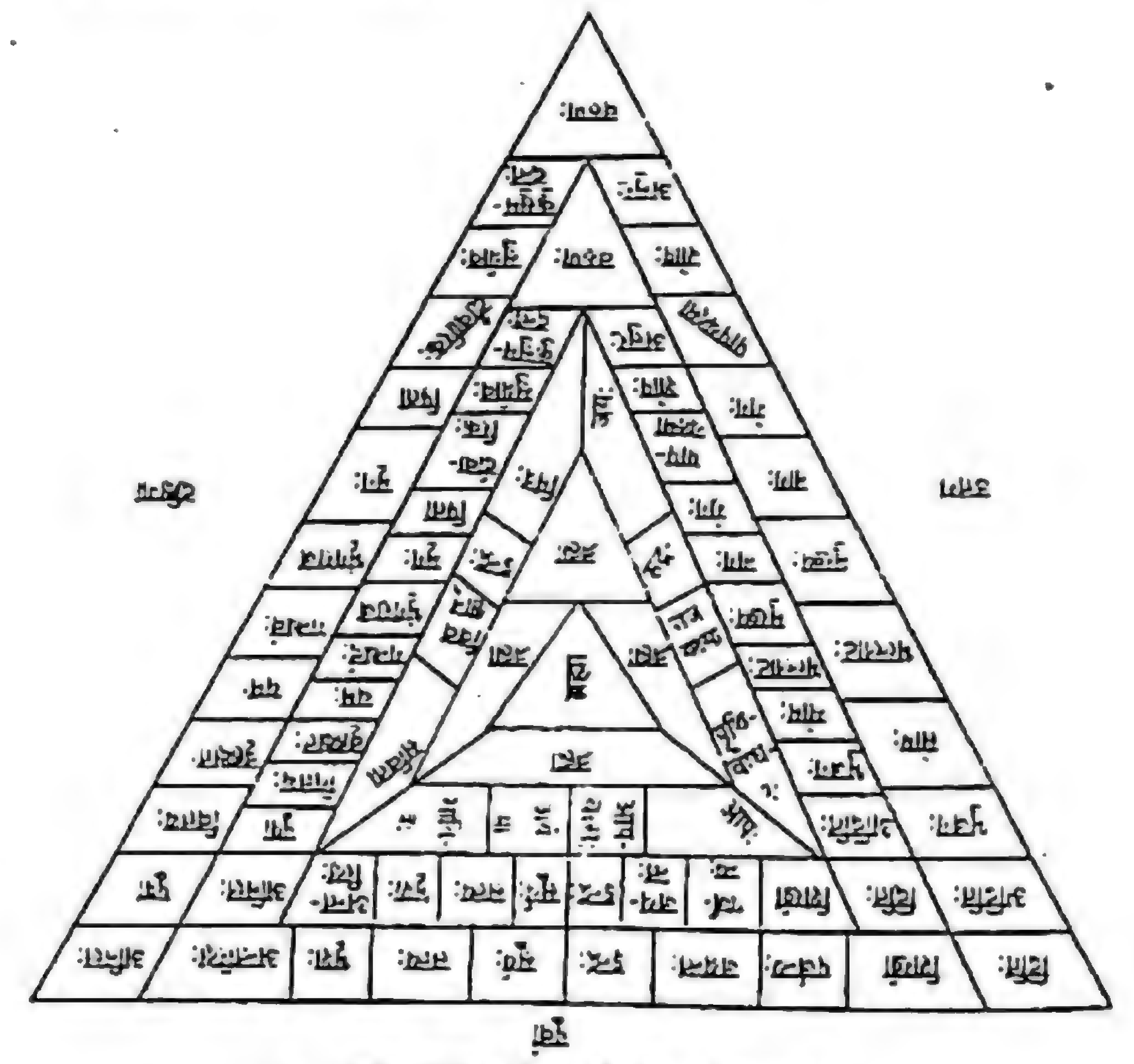

एकाशीतिपदेत्रिभुजेवास्तौ देवानांन्यासक्रमः

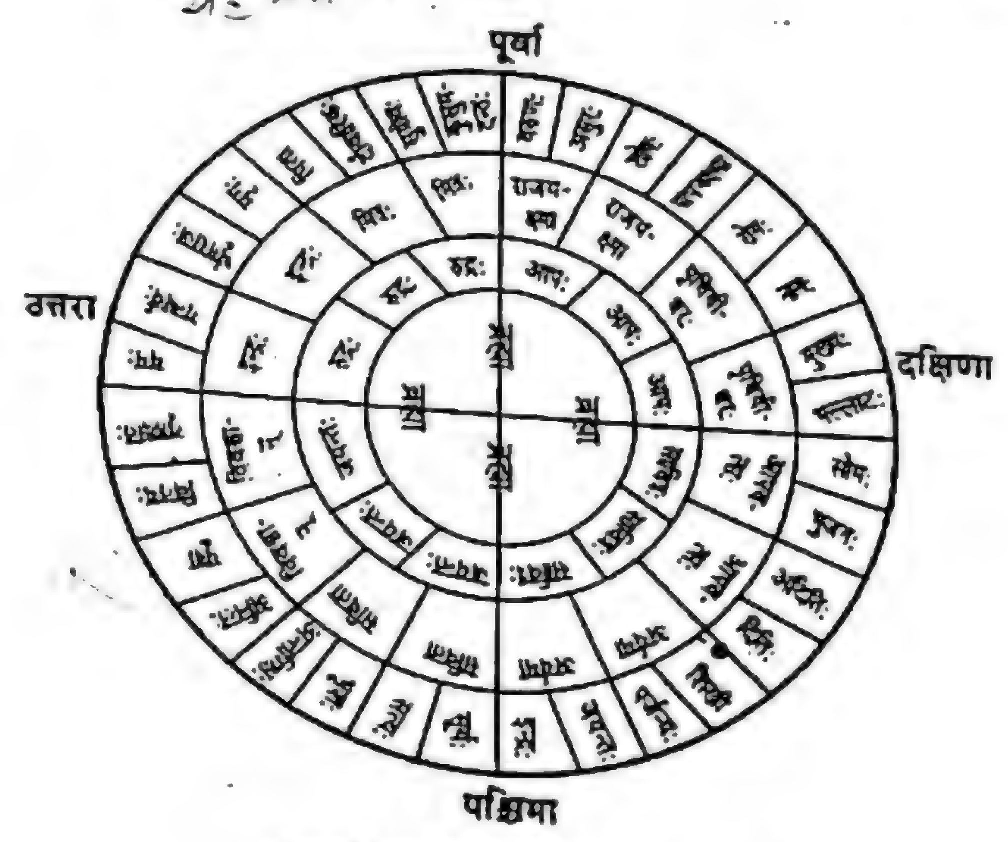

एकाशीतिपदेवृत्तेवास्तौदेवानांन्यासक्रमः

अथ पुराणामुत्तमादिभेदानाह (4, 8) —

वक्ष्येऽथो विविधं पुरं मुनिमतं मध्योत्तमं कन्वसं
तेषां हस्तसहस्रमन्तिमपुर मध्यं ततः सार्धकम्।
ज्येष्ठं युग्मसहस्रमेषु चरमं भागाष्टकेनान्वितं मध्यं
द्वादशभागतः शशिकलं ज्येष्ठं विदध्यात्सुधीः ॥ 192 ॥

वक्ष्येऽथो विविधमिति। अथ मुनिमतं ऋषिस्वीकृतं, मध्योत्तमं मध्यमुत्तमं, कन्वसं निकृष्टमित विविधं पुरं वक्ष्ये। तेषां त्रयाणां पुराणां मध्येऽन्तिमपुरं कन्वसं पुरं हस्तसहस्रं सहस्रहस्तपरिमितं, ततः मध्य मध्यपुरं सार्धकं सार्धैकहस्तसहस्रं भवति। ज्येष्ठमुत्तम पुरं युग्मसहस्रं द्विसहस्रमितम्। एषु त्रिषु पुरेषु चरममन्तिमं निकृष्टं पुरं भगाष्टकेनान्वितं यावत्, मध्यं द्वादशभागतः द्वादशभागाधिकं, शशिकलं षोडशभागाधिकं ज्येष्ठं पुरं सुधीः पण्डितो विदध्यात्।

भाषा— मुनिगणों ने नगर तीन प्रकार के बताए हैं। कनिष्ठ नगर 1000 हाथ के माप का बसाना चाहिए। मध्यम नगर 1500 हाथ का तथा उत्तम नगर 2000 हाथ का बसाना चाहिए। उपर्युक्त माप की अनिवार्यता भी नहीं है। कनिष्ठ नगर में 125 हाथ जोड़

कर सवा ग्यारह सौ हाथ का भी बनाया जा सकता है। इसी तरह ज्ञानीजन 125 हाथ मध्यम व उत्तम नगर में भी जोड़े जा सकते हैं।

अथ पुररचनाक्रममाह (4, 9) —

मार्गाः सप्तदशैव चादिमपुरे हीनं चतुर्भिः परं
प्रोक्तं कन्यसमेव मार्गनवभिर्दैर्घ्ये तथा विस्तरे।
ग्रामश्चैव पुरार्धतो हि तदनु ग्रामार्धतः खेटकं
खेटार्धेन तु कूटमेव विबुधैः प्रोक्तं ततः खर्वटम्॥ 193॥

मार्गा इति। आदिमपुरे उत्तमपुरे, सप्तदश मार्गा विधेयाः। चतुर्भिहीनं तदुत्तमपुरीयवर्त्म- अर्थात्त्रयोदशमितं परमन्यं मध्यपुरे वर्त्म भवति मार्गनवभिः- नवभिर्वर्त्मभिर्युतं कन्यसं पुरं, एव निश्चयेन कार्यम्। यथा दैर्घ्ये तथैव विस्तरेऽपि विधेयाः। पुरार्धतः ग्रामः। तदनु ग्रामार्धतः खेटकः। खेटार्धेन तु कूटमेव निश्चयेन कूटार्धेन विबुधैः खर्वटं प्रोक्तम्।

भाषा— 'उत्तम' प्रकार के नगर में 17 मार्ग बनाएँ, मध्यम नगर में 13 तथा कनिष्ठ नगर में 9 मार्ग बनाएँ, लेकिन नगर की लम्बाई में जितने मार्ग बनाने को कहा है, उतने ही चौड़ाई में भी होने चाहिए। नगर में जितने सीधे मार्ग हो उतने ही आड़े मार्ग भी बनाएँ। नगर के क्षेत्रफल से आधे को गाँव कहा जाता है। इसी तरह गाँव के आधे को खेड़ा या खेटक, खेड़ा के आधे को कूट तथा कूट के आधे को खर्वट कहा जाता है।

अथ पुरभेदानाह (4, 10) —

हस्तानाञ्च युगाष्टषोडशसहस्त्रं भूपतीनां पुरं
तन्मध्ये दशधा वदन्ति मुनयो वृद्धा सहस्त्रेण तत्।
आयामे च सपादसार्धवसुतो भागः प्रशस्तोऽधिकः
त्वैकैकं च चतुर्विधं निगदितं कार्यं समं कर्णयोः॥ 194॥

भाषा— राजा के रहने का पुर या राजधानी 4000 हाथ का या 8000 अथवा 16 हजार हाथ का बनानी चाहिए। एक हजार के अवान्तर भेद से 10 प्रकार के नगर बनाए गए हैं, जो अधिकतम 15 हजार गज के हैं, लेकिन इन नगरों की जितनी चौड़ाई हो, उससे लम्बाई सवा आठवीं या साढ़े आठवीं बढ़ाएँ। सभी नगरों के भी चार भेद हैं। यथा— 1. लम्बाई व चौड़ाई में एक जैसा (वर्गाकार); 2. चौड़ाई का अष्टमांश लम्बाई में अधिक जैसे 8' × 8'' है तो 9' × 8'' फीट; 3. चौड़ाई से लम्बाई में सवा आठवाँ भाग बढ़ाकर एवं 4. चौड़ाई में लम्बाई में साढ़े आठवाँ भाग बढ़ाकर नगर की लम्बाई बढ़ाएँ।

अथ देवस्थानादीनां विस्तृतिदैर्घ्यप्रमाणमाह (4, 11) —

षट्त्रिंशतः षट्क्रमतो विदध्याद्देवे पुरे चत्वरके क्रमेण।

यदृच्छया मानमुशन्ति केचित् प्राकारकोटेऽपि च भित्तिकायाम्॥ 195॥

षट्त्रिंशत् इति। षट्त्रिशतः षट्त्रिंशत्समविस्तारतः क्रमेण देवे, पुरे, चत्वरके क्रमतः षट् विदध्यात् षड्धिकं विदध्यात्तदा दैर्घ्यं स्यात्। केचिदाचार्याः प्राकारे कोटे भित्तिकायां च यदृच्छया मानमुशन्ति।

भाषा—देवमन्दिर, नगर व चबूतरे की 36 हाथ चौड़ाई हो तो उसमें 6 हाथ की वृद्धि कर 42 हाथ की लम्बाई रखनी चाहिए। बहत्तर हाथ की चौड़ाई हो तो 12 हाथ बढ़ाकर 84 हाथ की लम्बाई रखें। इस तरह देवालय, नगर व चबूतरे की जितनी चौड़ाई हो उसी अनुरूप प्रत्येक 36 हाथ पर 6-6 हाथ की वृद्धि करें। कई आचार्यों का मत है कि दुर्ग में प्राचीर व अन्य भित्तियों का मान इच्छानुसार भी सम्भव है।

अथ पुरादेवालयमुखविचारमाह (4, 12) —

पूर्वापरास्याः पुरसन्मुखाश्च देवाः शुभा नोत्तरदक्षिणास्याः।
भङ्गं पुरस्यापि पराङ्मुखास्ते कुर्वन्ति धातार्कजनार्दनेशाः॥ 196॥

पूर्वापरास्या इति। देवा ये सन्ति तेषामालयाः पूर्वापरास्याः पुरसम्मुखाश्च शुभाः भवन्ति। उत्तरदक्षिणास्याः न शुभाः। धातार्कजनार्दनेशाः पराङ्मुखास्ते पुरस्य अपि निश्चयेन भङ्गं कुर्वन्ति।

भाषा—देवों का मुख पूर्व और पश्चिम अथवा नगर के सामने शुभ होता है। देवालय के द्वार के सन्दर्भ में ऐसा करना श्रेष्ठ है, लेकिन उत्तर एवं दक्षिण मुखी श्रेष्ठ नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य एवं शिव का पृष्ठभाग यदि नगर के सामने हो तो नगर का विनाश होता है, अतएव ऐसा नहीं करें।

अथ ब्रह्मादीनां मन्दिरस्य द्वारविचारमाह (4, 13) —

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः
प्रोक्तौ सर्वककुम्मुखौ शिवजिनौ विष्णुविधाता तथा।
चामुण्डा ग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो देवा
दक्षिणादिङ्मुखाः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत्॥ 197॥

ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहा इति। ये ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहास्तेषामालयाः पूर्वापरास्याः शुभा भवन्ति। शिवजिनौ सर्वककुम्मुखौ सर्वदिङ्मुखौ प्रोक्तौ। विष्णुर्नारायणः, विधाता ब्रह्मा, तथा सर्वदिङ्मुखः। चामुण्डा भगवती, ग्रहः षोडश मातरः, धनपतिः कुबेरः, द्वैमातुरः कार्तिकेयः, भैरवः प्रसिद्धः एतेषां देवानां दक्षिणदिङ्मुखा आलया भवन्ति। कपिवरो हनुमान् नैर्ऋत्यवक्त्रः भवेत्।

भाषा— नगरादि में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य और कार्तिकेय स्वामी आदि देवता पूर्व या पश्चिम दिशाभिमुख हो तो श्रेष्ठ हैं। इसमें भी शिव, तीर्थङ्कर, विष्णु व ब्रह्मा

का मुख तो किसी भी दिशा में हो श्रेष्ठ है। चामुण्डा, ग्रह, षोडश मातृकाओं, कुबेर, कार्तिकेय एवं भैरव का दक्षिणमुखी होना श्रेष्ठ है। हनुमान का मुख नैर्ऋत्यकोण में रखा जाना उचित है।

अथ पुरमध्ये राजमार्गनिर्माणविधिमाह (4, 14) —

मार्गाः सप्तदशाङ्कपञ्चशिखिनो युग्मं पुरात्खर्वटं
मार्गाः षोडशसूर्यविंशतिकराः कार्यास्त्रिधा विस्तरे।
प्राकारोदय ऋक्षहस्तमपितो द्वाभ्यां विहीनाधिकः
व्यासार्धेन तदुर्ध्वतश्च कपिशीर्षाण्यष्टमात्रान्तरात् ॥ 198 ॥

मार्गा इति। पुरात्खर्वटं यावत् क्रमेण सप्तदशाङ्कपञ्चशिखिनः युग्मं चेति षट् मार्गा भवन्ति। विस्तरे व्यासे षोडशसूर्यविंशतिकराः त्रिधा मार्गाः कार्याः। प्राकारोदयः प्राकारविस्तृतिः द्वाभ्यां विहीनाधिकः ऋक्षहस्तमपितः सप्तविंशतिहस्तसमानः कार्यः। अष्टमात्रान्तरात्तदूर्ध्वतः व्यासार्धेन कपिशीर्षाणि भवन्ति।

भाषा— नगर के लिए 17 मार्ग बनाने चाहिए। इसी तरह ग्राम के लिए 9 मार्ग, खेड़ा के लिए 5, कूट के 3 तथा खर्वट के लिए 2 मार्ग बनाएँ। जो मार्ग 20 गज चौड़ा हो उसे 'ज्येष्ठ मार्ग', 16 गज चौड़े मार्ग को मध्यम मार्ग तथा 12 गज चौड़े मार्ग को कनिष्ठ मार्ग कहा जाता है। दुर्ग के प्राकार या किलाकोट की ऊँचाई 27, 25 अथवा 29 हाथ रखी जानी चाहिए। प्राकार के ऊपर चौड़े के अर्द्धभाग पर आठ अङ्गुल के अन्तराल पर कपिशीर्षों या कँगूरों की संरचना की जानी चाहिए।

अथ दुर्गोपरि कोष्टकरचनाक्रममाह (4, 15) —

प्राकारेऽपि च कोष्ठका दशकराः सूर्येन्द्रहस्तास्तथा
प्रोक्तोस्तेन समा च कोणसहिता विद्याधरी मध्यमा।
तस्यां चात्र सुवृत्तके च विविधं युद्ध्यासनं कारयेत्
प्राकारोदयतो द्विधा च परिखाविस्तार उक्तो बुधैः ॥ 199 ॥

भाषा— प्राकार अथवा किले में कनिष्ठ कोठे का व्यास 10 गज, मध्यम कोठे का 12 गज हो। ज्येष्ठ कोठा 14 गज व्यास का होना चाहिए। दो-दो कोठों के बीच कोठों के बराबर ही चौरस एक-एक विद्याधरी (बुर्जी या बजिरी) का निर्माण भी होना आवश्यक है। इन विद्याधरी और कोठों में विविध प्रकार के युद्धासन (शस्त्रागार) होने चाहिए। परकोटे के चारों ओर उसकी ऊँचाई से दुगुनी चौड़ी खाई खोदनी चाहिए।

अन्यदप्याह (4, 16) —

विद्याधरीकोष्ठकयोश्च मध्ये व्यासप्रमाणं शर, राम, हस्तम्।
पञ्चाधिकं पञ्चकरेण हीनमिति त्रिधा वास्तुमतोदितञ्च ॥ 200 ॥

विद्याधरीति। विद्याधरीकोष्ठकयोः मध्ये व्यासप्रमाणं विस्तृतिप्रमाणं शररामहस्तं पञ्चत्रिंशद्धस्तमितं भवति। पञ्चाधिकं पञ्चकरेण हीनमिति त्रिधा भवति। इदं वास्तुमता वास्तुशास्त्रज्ञेनोदितम्।

भाषा— विद्याधरी और कोठों के बीच 35 हाथ अन्तर रखना चाहिए। इसमें पाँच हाथ कम या पाँच हाथ अधिक का अन्तर भी वास्तुशास्त्रियों को स्वीकार्य रहा है।

अथ दुर्गोच्चप्रमाणमाह (4, 17) —

दुर्गोदयं नन्दकरप्रमाणं तिथ्या समं सप्तदशैव केचित्।
एकोनविंशत् पृथुता त्रयाणां दिक्पालसूर्याष्टकरं वदन्ति ॥ 201 ॥

दुर्गोदयमिति। दुर्गोदयं दुर्गव्यासः नन्दकरप्रमाणं नवहस्तमितं तिथ्या पञ्चदशेन समं वा भवति। अत्र केचित् सप्तदशैव सप्तदशहस्तसमं, एकोनविंशत् एकोनविंशतिहस्तसमं वा वदन्ति, त्रयाणां पृथुता पृथुत्वं दिक्पालसूर्याष्टकरं वदन्ति।

भाषा— दुर्ग की प्राचीन, भित्ति की ऊँचाई 9 गज की रखें या 15 हाथ की रखनी चाहिए लेकिन कतिपय आचार्यों का कहना है कि यह 17 अथवा 19 हाथ की भी रखी जा सकती है। इसके तीनों स्तरों की चौड़ाई क्रमशः 10, 12 या 8 हाथ प्रमाण रखनी चाहिए।

विशेष— ऐसा लगता है कि यहाँ तीन स्तरों का अर्थ है कि जो भित्ति नीचे से ऊपर तक उठाई जाती है, वह तीनों- आधार, मध्य एवं ऊर्ध्व स्तर तक क्रमशः 12, 10 एवं 8 हाथ प्रमाण रखी जाए जैसे कि (इन श्लोकों के रचनाकार सूत्रधार मण्डन व उसके परिजनों द्वारा निर्मित) चित्तौड़गढ़ एवं कुम्भलगढ़ दुर्ग में देखने में आता है।

अथ दुर्गतः पण्यादीनां न्यासक्रममाह (4, 18) —

ताम्बूलं फलदन्तगन्धकुसुमं मूलादिकं यद्भवेत्
राजद्वारसुराग्रतो हि सुधिया कार्यं पुरे सर्वतः।
प्राग्विप्रास्त्वथ दक्षिणे नृपतयः शूद्राः कुबेराश्रिताः
कर्त्तव्या पुरमध्यतोऽपि वणिजो वेश्या विचित्रैर्गृहैः ॥ 202 ॥

ताम्बूलमिति। ताम्बूलं फलदन्तगन्धकुसुमं मूलादिकं च यद्भवेत् तत्सर्वं राजद्वार सुराग्रतः पुरे सर्वतः समन्तात् सुधिया पण्डितेन हि निश्चयेन कार्यम्। विप्रा ब्राह्मणाः प्राक् पूर्वदिशि कार्याः। दक्षिणे नृपतयः क्षत्रियाः कार्याः। कुबेराश्रिताः उत्तरदिशि शूद्राः कार्याः। विचित्रैर्मनोहरैः, गृहैः वणिजः वैश्याश्च पुरमध्यतोऽपि कार्याः।

भाषा— नगर में ताम्बूल, फल-फूल-जमीकन्द, सुगन्धित पदार्थ, रत्न आदि की दुकानें राजद्वार के एवं मन्दिर के सामने होनी चाहिए। बस्ती के प्रसङ्ग में पूर्व दिशा में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर में शूद्र और वैश्यों को बसाना चाहिए। इसके साथ ही

अन्य व्यापारियों को नगर के बीच में अलग-अलग घरों में बसाया जाना चाहिए।

अथान्यदप्याह (4, 19) —

ईशे रङ्गकराः कुविन्दरजका वह्नौ च तज्जीविनः प्रोक्ता
अन्त्यजचर्मकारबुरुडाः स्युः शौण्डिका राक्षसे।
पण्यस्त्री निर्ऋतौ च मारुतयुते कोणे न्यसेल्लुब्धकान्
वापीकूपतडागकुण्डमखिलं तोयं तथा वारुणे॥ 203॥

ईश इति। ईशे-ईशानकोणे रङ्गकराः कुविन्दरजकाः कर्त्तव्याः। वह्नौअग्निकोणे तज्जीविनोऽग्निजीविनः प्रोक्ताः। राक्षसे नैर्ऋत्यकोणे अन्त्यजचर्मकारबुरुडाः शौण्डिकाश्च स्युः। निर्ऋतौ नैर्ऋत्यकोन पण्यस्त्री वेश्या कर्त्तव्या, मारुतयुते वायुयुते कोणे वायव्यकोण लुब्धकान् न्यसेत्। तथा वारुणे पश्चिमदिशि वापीकूपतडागकुण्डमखिलं तोयं न्यसेत्।

भाषा— नगर के ईशान कोण में रंगरेज या छीपा, कपड़े बेचने वाले तथा धोबियों को बसाना चाहिए। अग्निकोण में अग्नि से आजीविका चलाने वाले सोनी, लोहार, ठठेरा आदि को, दक्षिण दिशा में अन्त्यज, चमार, बाँसफोड़ा, गाँछी व कलालों (कलवार, शराब का धन्धा करने वाले) को, नैर्ऋत्य कोण में वैश्याओं को और वायव्य कोन में पारधी, व्याध लोगों को बसाना चाहिए। बावड़ी, कूप, तालाब, कुण्ड आदि समस्त जलस्रोत नगर के पश्चिम में होना श्रेष्ठ है।

अथान्यदप्याह (4, 20) —

सिंहद्वारचतुष्टयञ्च खटकोद्वाराणि चाष्टौ तथा
कर्त्तव्यानि दृढार्गलानि रुचिरैः कापाटकैः सुदृढैः।
कीर्तिस्तम्भनृपालयामरगृहैर्हट्टैः सुधानिर्मितैः
हर्म्यैश्चोपवनैर्जलाश्रययुतैः कार्यं पुरं शोभनम्॥ 204॥

सिंहद्वारेति। नगरस्य चतुर्दिक्षु सिंहद्वारचतुष्टयं कार्यं, तथा अष्टौ रुचिरैः सुदृढैः कापाटकैः दृढार्गलानि खटकोद्वाराणि कर्त्तव्यानि। कीर्तिस्तम्भनृपालयामरगृहैः सुधानिर्मितै हट्टैः हर्म्यैश्चोपवनैः जलाश्रययुतैः शोभनं पुरं कार्यम्।

भाषा— नगर में चार सिंहद्वार (बड़ी पोलें) तथा आठ खिड़कियाँ (प्रतोलियाँ) होनी चाहिए। द्वारों पर मजबूत अर्गला तथा सुन्दर किंवाड़ बनाने चाहिए। राजमन्दिर के सामने एक कीर्तिस्तम्भ होने के साथ ही राजगृह, देवमन्दिर, हाट, हवेली के पास बाग और बाग में जलाशय होना चाहिए। इसी तरह राजमहल के पास भी जलाशय अनिवार्यतः हो।

अथ वाटिकारोपणमुहूर्त्तमाह —

मृदुध्रुवगणे राधामूलभे-क्षिप्रभे तथा।
शतर्क्षे वाटिका शस्ता सद्वारे सत्तिथौ मता॥ 205॥

मृदुध्रुवादिति। मृदुचित्रानुराधामृगरेवत्यः, ध्रुवर्क्षं रोहिण्युत्तरात्रितयम्, राधाः विशाखापर्यायः, क्षिप्रमश्विनीपुष्याभिजितः, शतर्क्षं शततारका एवं चन्द्रदश भानि। शेष सुगमं, एतैनक्षत्रै वाटिकार्थे वृक्षाणां चारोपो वापनं कार्यम्।

भाषा— मृदु संज्ञक नक्षत्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा व अनुराधा एवं शुक्रवार), ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (उत्तरा त्रय, रोहिणी एवं रविवार), राधा (विशाखा), मूल, क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र (हस्त, अश्विनी एवं पुष्य तथा गुरुवार) एवं शतभिषा नक्षत्रों में और शुभ वार तथा योग्य तिथियों में वाटिका लगाने का कार्य करना चाहिए, ऐसा मत है।

अथ जलाशयारामसुरप्रतिष्ठाविधिमाह —

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा॥ 206॥
रिक्तारवर्जं दिवसेति शस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः।
व्यन्त्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः॥ 207॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्वं इमे स्थिरर्क्षे।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च॥ 208॥

जलाशयेति। जलाशयादयः वापीकूपतडागादयः तेषां प्रतिष्ठोत्सर्गः, आराम उपवनं तस्याप्युत्सर्गः, सुरा देवा विष्णवादयस्तेषां प्रतिष्ठापनं, सौम्यायने उत्तरायने तथा जीवशशाङ्कशुक्रे दृश्ये-उदिते सति, तथा मृदुक्षिप्रध्रुवनक्षत्रे, सिते शुक्ले पक्षे, तथा स्वर्क्षतिथिक्षणे वा यस्य देवस्य प्रतिष्ठाकर्त्तुमिष्टा तस्य तत्स्वामिके नक्षत्रे तिथौ वा क्षणे मुहूर्ते वा, तथा रिक्तारवर्जे दिवसे रिक्ता (चतुर्थी नवमी चतुर्दशी) भौमवारव्यतिरिक्त तिथिवारेषु एवं विधे दिने जलाशयारामदेवानां प्रतिष्ठा क्रमेण शस्ता स्यात्।

तथा च गार्ग्यः-देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे। माघादिपञ्चमासेषु कृष्णेऽप्यापञ्चमी दिनम्॥ दक्षिणेत्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्। यदा तु दक्षिणायन एव जलस्थितिसम्भवस्तदा न कालनियमः- 'न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणमिति' भविष्यपुराणोक्तेः। अथ क्रूरप्रकृतीनां दक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यमित्युक्तं वैखानससंहितायाम्-मातृभैरववाराह नरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥ नारदः-यिचैत्रेष्वेवमासेषु माघादिषु च पञ्चसु। यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः॥

अथ लग्नशुद्धिः- शशाङ्कपापैः चन्द्रसूर्यभौमशनिराहुकेतुभिः, त्रिभवाङ्गसंस्थैः तृतीयषष्ठैकादशस्थान स्थितैः, तथा सत्खचरैः शुक्रबुधगुरुभिः, व्यन्त्याष्टगैः द्वादशाष्टमव्यति

रिक्ताखिलस्थानस्थैः, देवादिप्रतिष्ठा अतिशस्ता। अथ सूर्यो मृगेन्द्रे सिंहलग्ने स्थाप्यः। तथा को ब्रह्मा घटे कुम्भे स्थाप्यः। युवतौ कन्यायां विष्णुः स्थाप्यः। नृयुग्मे मिथुने शिवो महादेवः स्थाप्यः। देव्यो दुर्गादयश्च, द्वितनौ द्विस्वभावराशौ मिथुनकन्याधनुर्मीनलग्नेषु स्थाप्याः। चरलग्ने मेषकर्कतुला मकरलग्नेषु क्षुद्रा देव्यश्चतुःषष्ठीयोगिनीप्रभृतयः स्थाप्याः। स्थिरर्क्षे वृषसिंहवृश्चिककुम्भेषु सर्वे इमे-उक्ता अनुक्ताश्च देवा स्थाप्याः।

अथ पुष्ये ग्रहा इति। ग्रहाश्चन्द्रादयोऽष्टौ पुष्ये नक्षत्रे स्थाप्याः। एतदुपलक्षणम्। सूर्यस्य हस्तनक्षत्रे स्थापनम्। इन्द्रब्रह्मणोः पुष्यश्रवणाभिजित्सु, कुबेरस्कन्दयोरनुराधायाम्। दुर्गादीनां मूले। सप्तर्षीणां स्वाधिष्ठितनक्षत्रे। लक्ष्मीव्यासवाल्मीक्यगस्त्यानामपि सप्तर्ष्यधिष्ठित नक्षत्रे स्थापनम्। तदुक्तं रत्नमालायाम्- पुष्यश्रुतत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयो मैत्रे तिग्मरुचः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम्। सप्तर्षयो यत्र वसन्ति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम्। श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा स्मृता वाक्पतिभे ग्रहाणामिति॥ *(20, 2, 4)*

अथ विघ्नपो गणेशः, यक्षो देवयोनिः, सर्पा वासुक्यादयः, भूतो देवयोनिः (विद्याधराप्सरो यक्षरक्षो गन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय इत्यमरः), आदिशब्देन राक्षसासुरप्रमथसरस्वतीप्रभृतयोऽन्त्ये रेवत्यां स्थाप्याः। तथा श्रवणे जिनो बुद्धश्च स्थाप्यः। उपलक्षणं चैतत्। इन्द्रकुबेरवर्जितानां लोकपलानां धनिष्ठायां स्थापनम्। इतोऽवशिष्टानां देवानां त्र्युत्तरारोहिणीषु स्थापनं स्यादित्यर्थः।

भाषा— प्रतिष्ठाकार्य के लिए सर्वसम्मत रामदैवज्ञ के मत से कहा जा रहा है कि चैत्र को त्यागकर उत्तरायण के सूर्य में (मकरसंक्रान्ति से मिथुनान्त-पर्यन्त जब तक 6 राशि पर सूर्य रहता है यानी 14 जनवरी से 16 जुलाई पर्यन्त), बृहस्पति, चन्द्र और शुक्र के उदित होने पर, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) इन 16 नक्षत्रों में; शुक्लपक्ष में जिस देवी-देवता की स्थापना करनी हो, उस देवता के नक्षत्र (2, 1) तिथि (1, 3) और मुहूर्त (6, 55)में; रिक्ता (4, 9, 14) तिथि और मङ्गल को छोड़कर अन्य (1, 2, 3, 5, 6, 7, 9, 10, 11, 13, 15) तिथियों एवं वारों (रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) में; चंद्रमा एवं पाप ग्रहों के 3, 6, 11 भावों में रहने पर जलस्रोत (सरोवर, कूप, बावड़ी, कुण्ड), उद्यान और देवताओं की प्रतिष्ठा करना प्रशस्त होता है। इसी प्रकार सिंह लग्न में सूर्य की स्थापना करे। कुम्भ लग्न में ब्रह्मा की, कन्या लग्न में विष्णु की, मिथुन लग्न में शिव की, द्विस्वभाव (3, 6, 9, 12) लग्नों में दुर्गादि देवियों की, चरसंज्ञक (1, 4, 7, 10) लग्नों में क्षुद्र (यक्ष, योगिनी, भैरव, सती, लोकदेवी-देवता आदि) की प्रतिष्ठापना करनी चाहिए। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि सभी (कथित एवं अकथित) देवताओं की स्थापना

स्थिर (2, 5, 8, 11) लग्नों में करनी चाहिए। पुष्य नक्षत्र में चन्द्र आदि आठ ग्रहों की, रेवती में विनायक की, यक्ष (कुबेर के अनुचर आदि), सर्प (अनन्त, तक्षकादि), भूत (बालग्रह आदि रुद्र के अनुचर) आदि योनियों की तथा श्रवण नक्षत्र में तीर्थङ्करों (जैनियों के 24 आराध्य देवों, शासनदेवों) की स्थापना हो सकती है।

तथा च श्रीपतिः (20, 3) —

> **गणपतिवृढरक्षो यक्षभूतासुराणां**
> **प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानाञ्च पौष्णं।**
> **श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां**
> **निगदितमखिलानां स्थापनं हि स्थिरेषु॥ 209॥**

गणपति इति। गणपरवृढो गणेशःपौष्णंरेवत्यां श्रवणे च सुगतनाम्नो बौद्धान्य जिनान्य च स्थिरेषु ध्रुवर्क्षे च।

भाषा— गणपति, साधुजन, राक्षस, भूत, यक्ष, दैत्यगण, गन्धर्व, नाग, प्रमथ, सरस्वती आदि देवी-देवताओं की स्थापना रेवती नक्षत्र में करनी चाहिए। श्रवण में तथागत बुद्ध, धनिष्ठा में लोकपाल, दिक्पाल व अन्य सर्व जिनादिक की स्थिर नक्षत्रों में स्थापना करें।

विशेष— कालिदास दैवज्ञ ने गुहादिशिवगणप्रतिष्ठा के सन्दर्भ में कहा है पौष्णार्द्रयोरंशुसितांशुजन्मनां वारेषु वाजाङ्घ्रियुगेऽसृजि क्वचित्। गुहान्युयन्मादिगणाकभृन्त्य स्थापयेद्युग्ममरन्थमोदये॥ *(ज्योतिर्विदाभरण 17, 34)*

इति जीवनाथझादैवज्ञविरचिता वास्तुरत्नावल्यां वास्तुनिर्णयाध्यायः नवमः॥ 9॥

इस प्रकार जीवनाथ झा कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में वास्तुनिर्णय नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ 9॥

अथ गृहप्रवेशाध्यायः दशमः ॥ 10 ॥

तत्र प्रवेशलक्षणमाह वसिष्ठः (38, 3) —

अपूर्वसञ्ज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने च स्वपूर्वसञ्ज्ञः।
द्वन्द्वाभयश्चाग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ 1 ॥

अपूर्वसञ्ज्ञेति। प्रवेशस्त्रिधेति, अपूर्वप्रवेशः, स्वपूर्वप्रवेशः, द्वन्द्वाभयप्रवेशश्च। नूतनगृहे प्रथमं यः प्रवेशः सोऽपूर्वसंज्ञकः, यस्तु यात्रानिवृत्तौ सत्यां प्रवेशः स स्वपूर्वसंज्ञकः, यश्चाग्निभयेन जलभयेन वा शत्रुराजजनभयेन प्रवेशः स द्वन्द्वाभयप्रवेश उदितः।

भाषा— प्रवेश तीन प्रकार के हैं— 1. नवीन भवन में प्रवेश अपूर्व प्रवेश कहलाता है, 2. यात्रा पूर्णकर लौटने को सुपूर्व प्रवेश एवं 3. अग्निकाण्ड, विद्युतपात से दग्ध गृह में जीर्णोद्धार या शत्रुजनादि के भयादि के बाद पुनः प्रवेश को द्वन्द संज्ञक प्रवेश कहा जाता है।

अथात्र रामदैवज्ञः (13, 1) —

सौम्यायने ज्येष्ठतपोन्त्यमाधवे यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे।
स्याद्वेशनं द्वाःस्थमृदुध्रुवोडुभिर्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥ 2 ॥

सौम्यायनेति। सौम्यायने एषु पदार्थेषु सत्सु नृपतेर्यात्रानिवृत्तौ यात्रावमाने अथवा नवे नूतनोत्थापितगृहे प्रवेशनं स्यात्सौम्यायन इति। मन्दधियो झटितिप्रतिपत्यर्थे ज्येष्ठमाघफाल्गुनवैशाखेष्वित्युक्तम्। यद्दिङ्मुखे गृहे प्रवेशं कर्तुमिष्यते तद्दिङ्नक्षत्रैः पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु 'सप्तसप्तानलर्क्षतः' इत्याद्युक्तैर्मृदुध्रुवनक्षत्रैः प्रवेशनं स्यात् 'यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तस्य पुंसस्तद्दिग् ऋक्षैः स्यात्प्रवेशो न सर्वैरिति' वसिष्ठोक्तेः। जन्मर्क्षेति। जन्मर्क्षं जन्मराशिः, जन्मलग्नं प्रसिद्धं, ताभ्यामुपचयं तृतीयषष्ठैकादशदशमस्थानं शुभम्।

अत्र नारदः— कर्तुर्जन्मलग्ने वा ताभ्यामुपचयेऽपि वा। प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिःस्वता ॥ स्थिरे स्थिरलग्ने।

सौम्यायन इति। तत्र प्रवेशश्चतुर्धा। अपूर्वप्रवेशः, स्वपूर्वप्रवेशः, द्वन्द्वाभयप्रवेशः, वधूप्रवेशश्चेति तत्र वधूप्रवेशस्यान्वर्थसञ्ज्ञकत्वाल्लक्षणं नोक्तम्। स च प्रागभिहितः। अन्येषां लक्षणमाह वसिष्ठः-' 'अपूर्वसञ्ज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने तु स्वपूर्वसञ्ज्ञः। द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्ट इति' नवगृहं निर्माय यः प्रथम प्रवेशः सोऽपूर्वसञ्ज्ञः प्रवेशः। यस्तु यात्रानिवृत्यन्तरं गृहप्रवेशः स स्वपूर्वसंज्ञः प्रवेशः। यस्त्वग्निनाग्निदाहेन-आदिशब्देन क्रुधेन राज्ञा पातनेन गृहनाशस्तद्गृहं यदा पुनः सम्पाद्यते तस्मिन् यः प्रवेशः स द्वन्द्व भयप्रवेश इत्युच्यते। अन्वर्थसञ्ज्ञकोऽयम्, द्वन्द्वशीतोष्णं अत्र शीतशब्देन जलमुष्णशब्देनाग्निरुच्यते। लक्षणया जलाप्लावेनानवरतवृष्टिपातेन वा गृहपातस्तज्जलभयं, अग्निकृतदाहेन यो गृहनाशस्तदग्निभयम्। तस्माच्छीतोष्णरूपात् द्वन्द्वात् पुनरुत्थापनेन यदभयं तद्द्वन्द्वाभयमित्युच्यते। द्वन्द्व भयं विद्यते यस्मिन्नित्यर्थः। तादृशप्रवेशो द्वन्द्वाभयं इति। तत्रापूर्वस्वपूर्व प्रवेशयोः का.शुद्ध्यादिकमाह सौम्यायन इति। एषु सौम्यायने इत्यादिकेषु पदार्थेषु सत्सु नृपतेर्यात्रानिवृत्तावथवा नवे नूतनोत्थापिते गृहे वेशनं प्रवेशनं स्यात्। अत्र सौम्यायन इति मन्दबुद्धीनां शीघ्रप्रतिपत्यर्थम्। ज्येष्ठेति। ज्येष्ठमाघफाल्गुनवैशाखेष्वेव सत्यप्युत्तरायणे प्रवेशन शुभम्। नारदः- 'अथ सौम्यायने कार्यं नववेश्मप्रवेशनम्। प्राज्ञा यात्रा निवृत्तो चेति' तथा 'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः। प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्य (मार्ग) कार्तिकमासयोरिति' मध्यमोक्तिरावश्यक विषया। द्वाःस्थेति। यस्मिन् गृहे प्रवेशं कर्तुमिष्यते तस्य यस्यां दिशि मुख तद्दिङ्नक्षत्रैः पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु 'सप्तसप्तालर्क्ष' इत्याद्युक्तैर्मृदुध्रुवनक्षत्रैः प्रवेशनं स्यात्। यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तस्य पुंसस्तद्दिगृक्षैः स्यात्प्रवेशो न सर्वैरिति वसिष्ठोक्तेः। अत्यदपि तत्रैव 'अर्कादिलेया-दितिदस्रविष्णु ऋक्षे प्रविष्टं नवमन्दिरे यत्। अद्वत्रयात्तत्परतस्तु यां शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यादिति' जन्मर्क्षं इति। जन्मर्क्ष जन्मराशिः, जन्मलग्नं प्रसिद्धमेव। ताभ्यामुपचयं तृतीयषष्ठ-दशमैकादशस्थानं तस्मिन्। उदये लग्ने, स्थिरे स्थिराख्ये वृषसिंह वृश्चिकुम्भाख्ये लग्ने प्रवेशनं शुभम्। नारदः- 'कर्तुर्जन्मलग्ने वा ताभ्यामुपचयेऽपि वा। प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिः स्वन इति।' 'सौम्ये स्थिरे मे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथ वा द्व्यङ्गगृहे चिलग्न इति च' सौम्यग्रहसमन्विते द्व्यङ्गे द्विस्वभावराशौ।

भाषा— सूर्य के उत्तरायण में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख मास में, गृह के द्वार के समक्ष (6, 5, 7) नक्षत्रों, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) तथा ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) नक्षत्रों में, भवन स्वामी की जन्मराशि और जन्मलग्न से उपचय 3, 6, 10, 11 राशि के लग्न एवं स्थिर (2, 5, 8, 11) राशि के लग्नों में (उपलक्षण से द्विस्वभाव 3, 6, 9, 12 लग्नों में), नृपति का यात्रा से लौटकर गृहप्रवेश या नवगृह में प्रवेश करना शुभ होता है। शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष को 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15 तिथियों में, रवि और भौम को छोड़कर अन्य वारों सोमवार, बुध, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार को शुभ समय में प्रवेश करना प्रशस्त माना गया है।

अथ याननिवर्तितनरस्य प्रवेशमुहूर्तमाह (बृहद्दैवज्ञ. 88, 31) —

निजंपुर याननिवर्तितो नरो जीवादिपञ्चद्युषु संविशेदसौ।
सवासवक्षिप्रमृदुध्रुवेष्वथ स्थिरोदये शुद्धलयान्त्यकण्टके ॥ 3 ॥
न द्वादशी पक्षतिदर्शसप्तमी रिक्तातिरक्ताब्जदिनेष्वतन्त्रकृत्।

निजं पुरमिति। याननिवर्तित:वाहननिवर्तितोऽसौ नरो जीवादिपञ्चद्युषु बृहस्पति-शुक्रशनैश्चरसूर्यसोमवारेषु, सवासवक्षिप्रचरध्रुवेषु नक्षत्रेषु, 'स्थिरो दये स्थिरसंज्ञकलग्ने, शुद्धलयान्त्यकण्टके निजं स्वं पुं संविशेत्।' द्वादशी, पक्षतिः पक्षमूलं प्रतिपदेत्यर्थः, दर्शोऽमावास्या, सप्तमी, रिक्तातिरिक्ताब्जदिनेषु न अतन्त्रकृत्र दुःखकृद्भवति सुखकृदेव भवतीत्यर्थः।

भाषा— यात्रा से लौटकर और वाहन को त्यागकर गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार, रविवार और सोमवार— इन पाँच वारों में, धनिष्ठा, क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र (हस्त, पुष्य, अश्विनी), मृदु संज्ञक नक्षत्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (उत्तरा त्रय व रोहिणी) इन नक्षत्रों में, स्थिर लग्न (2, 5, 8, 11) में, लय (8), अन्त्य (12), कण्टक (1, 4, 7, 10) ये भाव शुद्ध हों तो अपने गृहनगर में प्रवेश करना चाहिए। इसमें भी द्वादशी, प्रतिपदा, अमावस्या, सप्तमी, रिक्ता तिथि (4, 9, 14) का त्याग करें, अब्ज यानी सोमवार अतन्त्रकृत यानी दुखद नहीं होता है।

अथ गमनोत्तरप्रवेशमाह (बृहद्दैवज्ञ. 88, 32) —

गुरूशनाज्ञेन्दुदिनेषु वारुणानिलश्रविष्ठेज्यमृदुस्थिरोडुभिः।
याता विरिक्तान्यकुयोगविष्टिभैर्नृभाजि लग्ने गमनस्थलं विशेत्॥ 4 ॥

व्याख्या- याता गमनगर्ता एतादृशे लग्ने गमनस्थलं विशेत्।

गुरुशनोज्ञेन्दुदिनेष्वीति। गुरुर्बृहस्पतिः, उशना शुक्रः, ज्ञो बुधः, इन्दुश्चन्द्रः, एतेषु दिनेषु। वारुणः शतभिषा, अनिलः स्वाती, श्रविष्ठा धनिष्ठा, इज्यः, पुष्यः, मृदुसंज्ञकः, स्थिरसंज्ञकश्चैतेषु नक्षत्रेषु, विरिक्तान्यकुयोगविष्टयभैः रिक्तान्यकुयोगभद्रावर्जितैः, नृभाजि पुरुषसंज्ञके लग्ने, याता गमनकर्ता गमनस्थलं विशेत्।

भाषा— ग्रन्थान्तर में आया है कि गुरुवार, शुक्र, बुध, सोमवार में; शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, पुष्य, मृदुसंज्ञक नक्षत्र (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) एवं स्थिर संज्ञक नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी) में; रिक्ता तिथि (4, 9, 14) और अन्य कुयोग एवं विष्टिकरण वर्जित दिवस में पुरुष संज्ञक लग्न (1, 3, 5, 7, 9, 11) में गमन स्थल में प्रवेश करना चाहिए।

अथ जीर्णगृहप्रवेशे विशेषमाह (मुहूर्तचिन्तामणौ 13, 2) —

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेति सत्स्यात्।

वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ 5 ॥

जीर्णे इति। जीर्णे पुरातने, अन्यनिर्मिते गृहे, अग्निदाहादीभयात्, अतिवृष्टेन बहुवृष्टिराजकोपाद्युपद्रवात्, पतिते गृहे पुनरपि सम्यगेव कृते उत्थापिते, पूर्वोक्ताः सर्वेऽपि मासा ज्ञेयाः। किं च मार्गोर्जयोः मार्गशीर्षकार्तिकयोश्च, श्रावणिकेऽपि श्रावणेऽपि, वेशः प्रवेशः, सत् शुभफलदः स्यात्। नावश्यमिति। अत्रैवं विधे जीर्णे गृहे, अन्यादि भयकृते-ऽपि आवश्यक मस्तादि विचारणा गुर्वास्तबाल्यवार्धक्यसिंहस्थगुर्वादिदोषाणां विचारणा विचारो नास्ति। अस्तादयः कालदोषाः सन्तु वा मा सन्तु तथापि गृहप्रवेशः कार्यः। सोऽपि पञ्चाङ्गशुद्धिमात्रमङ्गीकृत्य विहितनक्षत्रेष्वेव कार्यः।

भाषा— पुनरुद्धार के बाद किसी भवन में कब प्रवेश करें, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि अग्निकाण्ड से दग्ध, अतिवृष्टि से गिरे, राजकोप से गिरे या गिराए और पुनः बनाए गए भवन या अनुरक्षण के बाद मार्गशीर्ष, कार्तिक, श्रावण, और पहले के वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन- इन सात महीनों में शतभिषा, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा नक्षत्र में प्रवेश किया जाना शुभ होता है। इसी प्रकार इस कार्य में गुरु और शुक्रास्त, बाल्य, वृद्धत्व, सिंह, मकरस्थ बृहस्पति लुप्त संवत आदि दोषों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

अत्र सनत्कुमारः (पीयूषधारा. तत्रैव) —

गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद् गृहम् ॥ इति।

गृहारम्भोदिति। अत्र सामान्यतो गृहारम्भोदिता नाना गृहप्रवेशेऽभिहिताः,

भाषा— सनत्कुमार का मत है कि जिस मास, नक्षत्र, वारादि में गृहारम्भ हुआ हो, उसमें गृहप्रवेश किया जाए।

तत्रैव —

सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥ 6 ॥

इति नारदोक्तैर्मार्गशीर्षफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिका विहिताः। तत्रोत्तरायण एव गृहप्रवेशस्य वाक्यान्तरेण विहितत्वात् श्रावणकार्तिकमार्गशीर्षाणामनुत्तरायण त्वाभावाद्विरोधे नूतनजीर्णगृहप्रवेशाभ्यां व्यवस्था कथमिति प्रागभिहितनारदवाक्येन-उत्तरायणलाहचर्य्येण नूतनगृहप्रवेशसुपूर्वप्रवेशयोर्विधानाद् 'गृहारम्भोदितैर्मासैः' इत्यनेन तु सामान्यतस्त्रिविधस्यापि प्रवेशस्य विधानादुत्तरायणीयमासास्त्रिविधगृहप्रवेशे शुभाः। दक्षिणायनीयमासाः श्रावणादयस्तु जीर्णगृहप्रवेशविषयाः।

भाषा— नारद का मत है कि मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, कार्तिक मासों में गृह निर्माण करना पुत्र, आरोग्य और धन प्रदायक माना जाता है।

अत एव नारदो मार्गशीर्षकार्तिकयोर्नूतनप्रवेशे मध्यमत्वमाह—

अर्थादेव जीर्णगृहप्रवेश उत्कृष्टत्वमध्यवस्यते। अम्बुपेति। अम्बुपः शततारका, इज्यः पुष्यः अनिलः स्वाती, वासवो धनिष्ठा, एषु मेषु जीर्णगृहेऽग्न्यादि भयान्नवेऽपि गृहप्रवेशः शुभः। प्राक्पद्योक्तनक्षत्रेषु शुभ एवेति कैमुतिकान्या यादव- गम्यते।

ज्यौति: प्रकाशे (तत्रैव) —

प्रवेशो नूतने हर्म्ये ध्रुवैर्मित्रैः सुखाप्तये।
पुष्यस्वातीयुतैस्तैस्तु जीर्णे स्याद्वसवद्वये॥ इति। 7॥

भाषा— नवीन गृह में प्रवेश ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (उत्तरात्रय व रोहिणी) एवं अनुराधा में करना सुखद है। पुष्य, स्वाती भी शुभ है, यदि जीर्ण गृह हो तो वहां प्रवेश धनिष्ठा व शतभिषा नक्षत्र लें।

ज्यौति: प्रकाशे (तत्रैव) —

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधू प्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोरिति॥ 8॥

भाषा— नित्य प्रयोग वाले वाहन, जीर्ण गृह, भोजन, परिधान, वधू प्रवेश व ऐसे ही अन्य उत्तर माङ्गल्यादि कार्यों में गुरु, शुक्र का मौढ्यादि न देखें।

वसिष्ठ: (38, 2) —

नवप्रवेशे ह्यथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्विकयोः कदाचित्।
प्रवेशपञ्चाङ्गदिने सुलग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कुर्य्यात्॥ 9॥

नवप्रवेशेति। सुगमम्।

भाषा— नवीन भवन के प्रवेश काल में ही कालशुद्धि का विचार अपेक्षित है। द्वन्द्व एवं सुपूर्व प्रवेश काल में काल शुद्धि को देखना आवश्यक नहीं है, वहाँ केवल पञ्चाङ्ग शुद्धि ही देखकर वास्तुपूजन और प्रवेश पूर्ववत् करना चाहिए।

पूर्ववदेव नूतनप्रवेशे यथा वास्तुपूजा तथा द्वन्द्वसौपूर्विकयोरपि कार्येत्यर्थः। नारदेन तु यात्रा निवृत्तिप्रवेशे कालशुद्धिरपेक्षितैवेति। तद्वाक्यं प्रागभिहितम्। तदेतयोर्वाक्ययोरावश्यकानावश्यकत्वेन व्यवस्था। अथात्र त्रिविधेऽपि प्रवेशे प्रवेश नक्षत्रं क्रूराक्रान्तं क्रूरविद्धं वा सर्वथा वर्ज्यम्।

वसिष्ठ: (32, 7) —

क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेश इति।

भाषा— जो नक्षत्र पाप ग्रह से विद्ध हो, उसमें तीनों ही प्रकार के प्रवेश को वर्जित जानना चाहिए।

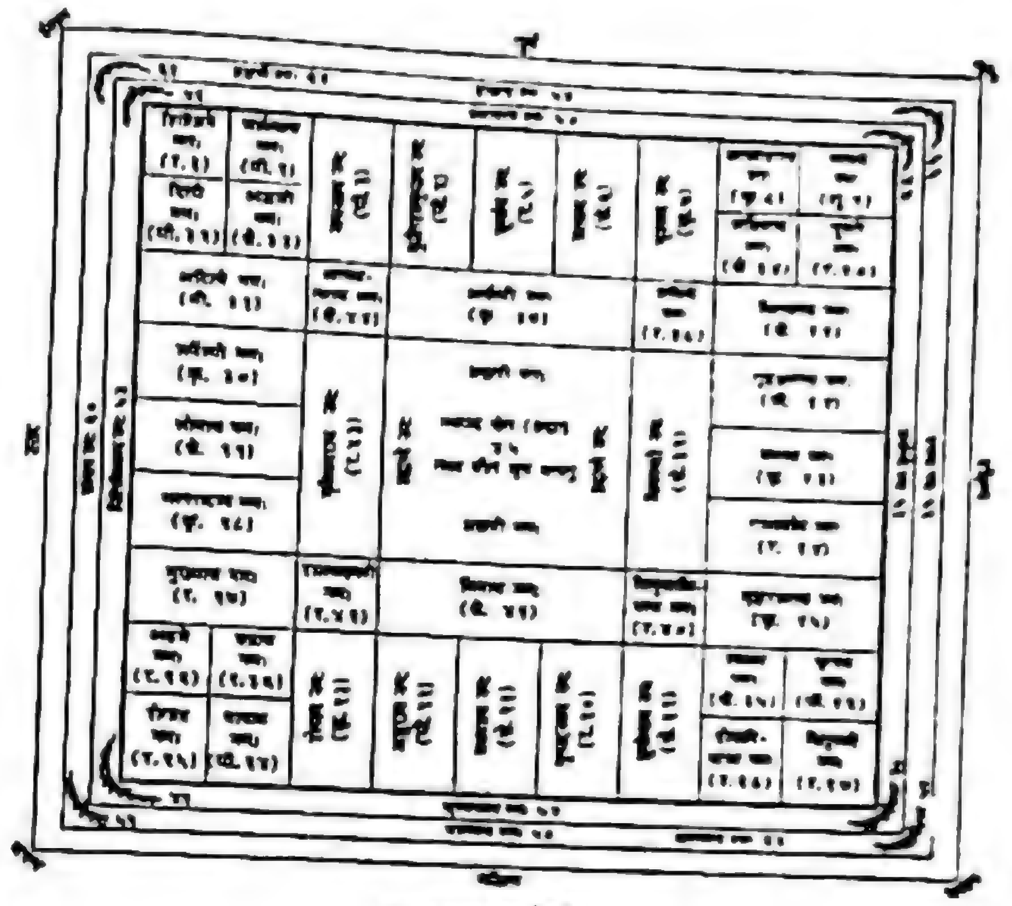

वास्तुपूजनवेदी

अथ गृहप्रवेशदिनात्प्राक्कर्तव्यवास्तुपूजां विवक्षुस्तन्नक्षत्राण्याह (मुहूर्तचिन्तामणी 13, 3) —

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत्।

मृदुध्रुवेति। एषु सप्तदशसु नक्षत्रेषु वास्तुपुरुषस्यार्चनं भूतबलिं च कारयेत्, गृहपतिर्वास्तुपूजां कुर्य्यात् वा पुरोहितो गृहपति वास्तुपूजादि कारयेत्।

भाषा— वास्तुपूजा एवं भूत बलि का मुहूर्त- मृदु (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती), ध्रुव (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी), क्षिप्र या लघु (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) और मूल- इन 17 नक्षत्रों में वास्तुपूजन और भूतबलि दी जानी चाहिए।

अथात्र वास्तुपूजाप्रकारमाह वसिष्ठ: (वशिष्ठसंहिता 39, 196-228) —

निर्माण मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च।
वास्तुपूजा प्रकर्त्तव्यां यस्मात्तां कथयाम्यतः॥ 10॥

भाषा—गृह के निर्माण के अनन्तर उसमें सविधि प्रवेश करना चाहिए। जैसा कि पूर्व मे आया है, प्रवेश तीन प्रकार का कहा गया है- अपूर्वसंज्ञक, सपूर्व संज्ञक प्रवेश

तथा द्वन्द्व संज्ञक प्रवेश। नूतन गृह में प्रवेश के समय वास्तुपूजा की जानी चाहिए, यहाँ मैं इस पूजा की समग्र विधि को कह रहा हूँ।

गृहमध्ये हस्तामात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि।
एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्॥ 11 ॥

भाषा—वास्तुपूजन के लिए गृह के मध्यभाग में चावल पर पूर्व से पश्चिम की ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तर से दक्षिण की ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाओं की रचना करें। इस प्रकार उनमें बराबर-बराबर 81 सुन्दर पद या कोष्ठक हो जाते हैं।

एकद्वित्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत्सुरार्चिताः।
द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश॥ 12 ॥
तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः।

भाषा—उक्त कोष्ठकों में एक, दो एवं तीन पदों वाले 45 देवताओं की यथोक्त स्थानानुसार पूजा के लिए नामोल्लेख करना चाहिए। इनमें से 32 देवताओं को बाहरी प्रान्त के कोष्ठकों और 13 देवताओं को आन्तरिक कोष्ठकों नें विराजित करना चाहिए। उक्त 45 देवताओं के स्थानों और नामों का कोणानुसार आगे वर्णन किया जा रहा है।

तत्राग्निः शम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैकपदेश्वरः॥ 13 ॥
तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः।
जयन्तेन्द्राख्यसत्याख्या भृशश्च द्विपदेश्वराः॥ 14 ॥
आकाशवायुपरतः क्रमादेकपदेश्वरौ।
एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा त्वेवमेवान्यदिक्षु च॥ 15 ॥
आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः।
अष्टौ पितृगणाधीशात्पापान्ताः पश्चिमेश्वराः॥ 16 ॥
आद्यन्तौ द्वावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः।
रोगादिदित्यन्तसुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात्॥ 17 ॥
तत्राधः स्थचतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात्।
लापः सावित्रविजयं रुद्राश्चैकपदेश्वराः॥ 18 ॥

ततः पुराह-

मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्येशानादिकोणगाः।
आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकः॥ 19 ॥
राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः।

अथान्यदप्याह-

ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी।
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पितृधरः क्रमात्॥ 20 ॥
स्वस्वस्थानेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत्।

अथान्यदप्याह-

कोणेषु पञ्चपञ्चैव चतुर्थैकपदाः सुराः।
प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च पञ्च यथाक्रमम्॥ 21 ॥
ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाः स्युः समीपगाः।
हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः॥ 22 ॥
सूर्यः सत्यो भृशाकाशौ वायुः पूषा च वैतथः।
बृहक्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकाः॥ 23 ॥
मृगः पितृगणाधीशस्तथा दौवारिकाह्वयः।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः॥ 24 ॥
शोषः पापश्च रोगोहिर्मुखो भल्लाट एव च।
सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः॥ 25 ॥
आपश्चैव सवित्रश्च जयो रुद्रस्तथैव च।
मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगः॥ 26 ॥
प्राच्यां ह्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः।
अर्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः॥ 27 ॥
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्।
आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोत्तमाः॥ 28 ॥
ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्यसेत्।

भाषा—किनारे के बत्तीस कोष्ठों में ईशान कोण से आरम्भ करते हुए क्रमशः बत्तीस देवता पूजनीय है। उनके नाम इस प्रकार हैं- अग्नि$_1$ पर्जन्य$_2$ जयन्त$_3$ इन्द्र$_4$ सूर्य$_5$ सत्य$_6$ भृश$_7$ आकाश$_8$ वायु$_9$ पूषा$_{10}$ अनृत या वितथ$_{11}$ गृहक्षत$_{12}$ यम$_{13}$ गन्धर्व$_{14}$ भृङ्गराज$_{15}$ मृग$_{16}$ पितर$_{17}$ दौवारिक$_{18}$ सुग्रीव$_{19}$ पुष्पदन्त$_{20}$ वरुण$_{21}$ असुर$_{22}$ शेष$_{23}$ राजयक्ष्मा$_{24}$ रोग$_{25}$ अहि$_{26}$ मुख्य$_{27}$ भल्लाटक$_{28}$ सोम$_{29}$ सर्प$_{30}$ अदिति$_{31}$ दिति$_{32}$ - ये चारों हो किनारों के देवता कहे गए हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायु कोण के देवों के समीप क्रमशः आप$_{33}$ सावित्र$_{34}$ जय$_{35}$ तथा रुद्र$_{36}$ के पद होते हैं।

ब्रह्मा के चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओं में क्रमशः अर्यमा[37], सविता[38], विवस्वान[39], विबुधाधिप[40], मित्र[41], राजयक्ष्मा[42], पृथ्वीधर[43], आपवत्स[44] हैं और मध्य के नवपदों में ब्रह्मा[45] को स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार सभी पदों में उक्त पैंतालीस देवताओं को स्थापित कर पूजना चाहिए। जैसे कि ईशान कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति ये पाँच देव एक पद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणों के पाँच-पाँच देवता भी एक पद के भागी होते हैं।

अन्य जो बाह्य पङ्क्ति के (जयन्त, इन्द्रादि) 20 देवता हैं, वे सब द्विपद दो-दो पदों के भागी होते हैं तथा ब्रह्मा से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में अर्यमा, विवस्वान, मित्र एवं पृथ्वीधर ये चार देवता हैं, वे त्रिपद या तीन-तीन पदों के भागी होते हैं। इनकी तदनुसार ही स्थापना कर पूजा करनी चाहिए।

अन्यदप्याह —

वास्तुनी वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ 29 ॥
प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभिः ।

भाषा—वास्तुविधि के ज्ञाता जनों को चाहिए कि वे ब्रह्मादि सहित एक पद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओं का वास्तुमन्त्रों के साथ ही गन्ध, पुष्प, अक्षतादि के साथ प्रणव या ॐ के साथ उन-उन देवताओं के नामानुसार पूजा निवेदित करें।

शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद् धूपदीपफलैः सह ॥ 30 ॥
अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्वाद्यैः सह समर्चयेत्।
ताम्बूलं च ततो दद्याद्देवेभ्यश्च पृथक् पृथक् ॥ 31 ॥
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम्।
विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।

भाषा—देवताओं के आवाहनादि सहित धूप, दीप, फल के साथ-साथ दो शुक्लवस्त्रों को समर्पित करें। उन्हें अपूप या पूआ का नैवेद्य प्रदान करें और इस अवसर पर वाद्यों का वादन करें। देवताओं को पृथक्-पृथक् रूप से अन्त में ताम्बूल, पान सोपारी प्रदान करें। पुष्पाञ्जलि के साथ वास्तुपुरुष की प्रार्थना करें। गृहस्वामी को चाहिए कि वह इस अवसर पर ब्राह्मणों को भोजन करवाने के उपरान्त स्वयं भी बन्धुजनों के साथ भोजन ग्रहण करें।

अथान्यदप्याह —

ॐ वास्तुपुरुष! नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत! प्रभो ॥ 32 ॥
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा।

भाषा—वास्तुपुरुष की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए- 'भूमि शय्या पर शयन करने वाले वास्तुपुरुष! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे आवास को धन-धान्यादि से सम्पन्नता प्रदान कीजिए।'

इति पार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च ॥ 33 ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यग् वास्तुपूजां प्रयत्नतः ॥ 34 ॥
आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनधान्यं लभेन्नरः ।

भाषा—इस प्रकार प्रार्थनादि कृत्यों के उपरान्त देवता के समक्ष पूजादि करवाने वाले पुरोहित को दक्षिणा देकर उसका बहुमानादि करना चाहिए। जो कोई इस प्रकार सम्यक् रूप से, प्रयत्नपूर्वक वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, पौत्र, धन-धान्य प्राप्त करता हुआ सुखी होता है।

वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे ॥ 35 ॥
रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसङ्कटम्।

भाषा—जो व्यक्ति वास्तुपूजा नहीं कर नए गृह में प्रवेश करता है, वह नाना तरह के रोग, क्लेश और सभी प्रकार के सङ्कटों को झेलता है। इसलिए सुख, आरोग्यादि के लिए वास्तुपूजन अवश्य करना चाहिए।

अथ गृहप्रवेशे मासफलान्याह वसिष्ठः (38, 8-9) —

माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च ॥
चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥ 36 ॥
ज्यष्ठे च मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च।
शुक्ले च पक्षे सुतरां विवृद्ध्यै कृष्णे च यावद्दशमीं च तावत् ॥ 37 ॥

माघेऽर्थलाभरिति। माघे माघमासे, गृहे प्रथमप्रवेशे नूतनप्रवेशे सति, अर्थलाभो धनलाभः स्यात्। फाल्गुने खलु निश्चयेन पुत्रार्थलाभः स्यात्। चैत्रे अर्थहानिर्धनविनाशः स्यात्। वैशाखमासे धनधान्यलाभः स्यात्। ज्येष्ठे पशुपुत्रलाभः स्यात्। परेषु आषाढश्रावणभाद्राश्विनकार्तिकाग्रहणपौषेतिसप्तमासेषु हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च स्यात्। शुक्ले पक्षे सुतरामतिशयेन विवृद्ध्यैभवति, कृष्णे च यावत् दशमीं तावद्गृहप्रवेशो विवृद्ध्यै भवति।

भाषा— माघ मास में प्रथम प्रवेश धनलाभ कराने वाला, फाल्गुन मास पुत्र का लाभ देने वाला, चैत्र मास अर्थ की हानि करने वाला और वैशाख मास धन-धान्य एवं पशुधन व सन्तान का लाभ कराने वाला होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ मास तथा अन्य मासों में हानि एवं शत्रुभय होता है। शुक्ल पक्ष में प्रवेश करने पर निरन्तर वृद्धि होती है तथापि कृष्ण पक्ष की जब तक दशमी विद्यमान रहे, तभी तक प्रवेश करना प्रशस्त होता है, ऐसा मत है।

अन्यत्राप्याह (पीयूषधारा 13, 1; ज्योतिर्निबन्ध पृ. 177, 12) —

विशेषात्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारन्तु सर्वदा।

भाषा— (ज्योतिषप्रकाशकार का मत है कि) विशेषकर सौम्यायन में भवन में प्रवेश करना चाहिए और घास-फूस की बनाई कुटिया में सदा ही प्रवेश हो सकता है।

अथ नक्षत्राण्याह वसिष्ठ: (38, 10) —

चित्रोत्तराधातृशशाङ्कमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्।
आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिद: स्यात् त्रिविध: प्रवेश: ॥ 38 ॥

चित्रा इति। सुगमम्।

भाषा— चित्रा, उत्तरा त्रय, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती एवं शतभिषा नक्षत्र में तीनों ही प्रकार का प्रवेश हो सकता है, इससे आयु, धन, आरोग्य-स्वास्थ्य, पुत्र, पौत्र एवं यश की अभिवृद्धि होती है।

अथ गृहप्रवेशपञ्चाङ्गं योगयात्रायां वराह: (16, 13) —

पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारुणेषु स्वायम्भुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरेषु।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेश: ॥ 39 ॥

पौष्णे इति। अथ पौष्णे धनिष्ठासु वारुणेषु स्वायम्भुवर्क्षेषु त्रिषु उत्तरासु, शुभवासरे अक्षीणचन्द्रे च अरिक्ते तिथौच गृहप्रवेश:। पौष्णे धनिष्ठास्वयेति, पौष्णेरेवत्यां धनिष्ठासु (ताराभिप्रायेण बहुवचनम्)। अथ वारुणेषु शतभिषाभेषु, स्वायम्भुवर्क्षेषु रोहिणीनक्षत्रेषु। त्रिषूत्तरासु उत्तराफाल्गुन्युत्तराषाढोत्तराभाद्रनक्षत्रेषु, अक्षीणचन्द्रे क्षीणबलरहिते विधौ। शुभवासरे च अक्षीणचन्द्रबुधगुरुशुक्रदिवसे च। अरिक्ते रिक्तारहिते तिथौ च गृहप्रवेश: शुभो भवतीति।[1]

भाषा— रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद — इन सात नक्षत्रों में चन्द्रमा के बलवान होने पर, शुभ वार (सोम, बुध, गुरु व शुक्रवार) और रिक्ता तिथि को त्यागकर अन्य तिथियों में गृहप्रवेश करना चाहिए।

अत्र नारद: (34, 3-5)[1] —

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयो मार्गकार्तिकमासयो:।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन: ॥ 40 ॥
शुभ: प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयो:।
वस्वीज्यवारुणस्वातीदास्त्रमैत्रकरोडुषु ॥ 41 ॥

1. तथा चान्ये— केन्द्रेषु सौम्यैर्गुरुशुक्रलग्ने पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु। प्राग्ये स्थिरे वाऽनिधने च लग्ने गृहं विशेच्छीत करेऽनुकूले ॥ (योगयात्रायां 16, 12) अर्थात्— नगर, गृह में प्रवेश लग्न के केन्द्रस्थानों में शुभग्रह हो, गुरु शुक्र लग्न में हो, पापग्रह केन्द्रस्थान और अष्टम में नहीं रहें, द्विपद राशि या स्थिर राशि में लग्न हो, जन्म लग्न जन्म राशि से अष्टम शुद्धि हो, लग्न में चन्द्रमा स्थित हो, चन्द्रबल बन रहा हो, तो प्रवेश करना बहुत अनुकूल होता है।

व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रद: ॥ 42 ॥

प्रवेश इति। मार्गकार्तिकमासयोर्मध्ये प्रवेशो मध्यमो ज्ञेय: नोत्तमो नाधम इत्यर्थ:। माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन: शुभद: स्यात्। देवेज्यशुक्रयो: बृहस्पतिभार्गवयो:, दृश्यमानयोरुदितयो:, प्रवेश: शुभ: स्यात्। वसुर्धनिष्ठा, ईज्य: पुष्य:, वारुण: शतभिषा, स्वाती प्रसिद्धैव, दास्रोऽश्विनी मैत्रोऽनुराधा, करो हस्त:, एतेषूडुषु नक्षत्रेषु, व्यर्कारवारे रविकुजरहितवारे, रिक्तामावर्जितेषु तिथिषु दिवा वा रात्रौ यदि प्रवेश: स्यात्तदा मङ्गलप्रद: स्यात्।

भाषा— मार्गशीर्ष एवं कार्तिक में गृहप्रवेश करना मध्यम या सामान्य कहा गया है जबकि माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ मास में गृहप्रवेश शुभ होता है। बृहस्पति और शुक्र के उदित काल में प्रवेश शुभ होता है। इसी प्रकार तब धनिष्ठा, पुष्य, शतभिषा, स्वाती, अश्विनी, अनुराधा एवं हस्त नक्षत्रों में, रविवार एवं मङ्गलवार को त्यागकर अन्य (सोम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) वारों में, रिक्ता तिथि और अमावस्या को छोड़कर शेष तिथियों में दिन या रात्रि में प्रवेश करना मङ्गलप्रद होता है।

विशेष— यहाँ पाठान्तर से धनिष्ठा, पुष्य, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा और स्थिर नक्षत्रों- तीनों उत्तरा व रोहिणी को ग्रहण करने की अनुमति भी है।

अत्र शार्ङ्गधर: (ज्योतिर्निबन्ध 176, 10) —

पुष्ये मैत्रे मृगे स्वात्यां ध्रुवे त्वाष्ट्रे च पूषभे।
वासवे वारुणे शस्तं नवालयनिवेशनम् ॥ 43 ॥

पुष्ये इति। सुगमम्।

भाषा— शार्ङ्गधर का मत है कि पुष्य, अनुराधा, मृगशिरा, स्वाती, उत्तरा त्रय, रोहिणी, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र नवगृह-निवेश के लिए प्रशस्त हैं।

अत्र वैद्यनाथ: (ज्योतिर्निबन्ध पृ. 177, 18) —

त्र्युत्तरे रोहिणीयुग्मे रेवत्यां वासवद्वये।
पुष्ये त्वाष्ट्रद्वयोर्मैत्रे प्रवेशोऽभिहित: करे ॥ 44 ॥

त्र्युत्तरेति। सुगमम्।

1. 'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन:। प्रवेशो मध्यमोज्ञेय: सौम्यकार्तिकमासयो: ॥ वस्वीज्यान्त्येन्दुवरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु। शुभ: प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयो:। व्यर्कारवारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ॥ दिवा वा यदि रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रद:। चन्द्रताराबलोपेते पूर्वोक्तवर्जितेषु च ॥' इति नारदसंहितायां प्रकाशितपाठे:।

भाषा— वैद्यान का मत है कि तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, रेवती, अश्विनी, अनुराधा व हस्त नक्षत्र प्रवेश के लिए अभिहित हैं।

अथ रत्नमालायाम् (17, 29; ज्योतिर्निबन्ध तत्रैव) —

> **पुष्ये धनिष्ठामृदुवायुमूलस्थिराश्विनीविष्णुजलेशहस्ते।[1]**
> **एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रैश्चिरं वसेद् भूरिसमागमैश्च॥ 45॥**

पुष्येति। सुगमम्।

भाषा— पुष्य, धनिष्ठा, मृदु संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा), स्वाती, मूल, उत्तरा त्रय, रोहिणी, अश्विनी, श्रवण, शतभिषा और हस्त— इन नक्षत्रों में भवन में प्रवेश करने से अधिक पुत्र, पौत्रादि और अन्य विविध प्रकारेण समागम के साथ चिरकाल पर्यन्त निवास होता है।

अथ वृत्तशते (श्लोक 74) —

> **भूपानां मृदुभिर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभं**
> **स्याद्भूयो गमनं चरर्क्षलघुभिरुग्रैर्मृतिर्भूपतेः।**
> **तीक्ष्णैर्भूपकुमारकस्य नृपतेः पत्न्या विशाखाह्वये**
> **धिष्ण्ये हव्यभुजो गृहे प्रविशतां सन्दिह्यते वह्निना॥ 45॥**

पुष्येति। अत्र नक्षत्रपर्यायानुसारेण फलाफलं, सुगमम्।

भाषा—यात्रा सम्पन्न होने के बाद राजाओं को मृदु संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा), ध्रुव संज्ञक (उत्तरात्रय एवं रोहिणी) इन नक्षत्रों में प्रवेश करना प्रशस्त होता है। इनके उपरान्त चर संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा व शतभिषा), लघु संज्ञक (हस्त, अश्विनी एवं पुष्य) और आर्द्रा नक्षत्र में फिर प्रवेश करने से मृत्यु होती है जबकि तीक्ष्ण संज्ञक (मूल, ज्येष्ठा एवं आश्लेषा) नक्षत्रों में प्रवेश करने से पुत्र की मृत्यु होती है। विशाखा में प्रवेश से पत्नी की मृत्यु और कृत्तिका में प्रवेश किए जाने से अग्निकाण्ड का भय जानना चाहिए।

अथ लग्नशुद्धिं तिथिशुद्धिमाह रामदैवज्ञः (13, 3-4) —

> **त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः।**
> **शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे॥ 48॥**
> **अग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम्।**

त्रिकोणेति। नवमपञ्चमप्रथमचतुर्थदशमैकादशद्वितीयतृतीयस्थानानामन्यतमस्थान-

---

1. 'गृहग्रामप्रवेशनम्' इति पाठः।

स्थितैः शुभैः पापैश्च, तथा तृतीयषष्ठैकादश[illegible] च [illegible] रन्ध्रमष्टमस्थानं तस्मिन् शुद्धे सर्वग्रहरहिते [illegible] लग्ने विशेत्। कीदृशे लग्ने विजनुर्भमृत्यौ भं [illegible] च [illegible] विगतौ जनुर्भमृत्यू यस्मिन्, [illegible] इत्यर्थः। पुनः कीदृशे लग्ने [illegible] 4, 14, 9 उपलक्षणत्वात् [illegible] अपि। [illegible] दर्शोऽमावास्या, चैत्रमासः विगता अर्कादयः यस्मिन्, [illegible] इत्यर्थः। अग्रे इति। गृहप्रवेशसमये कलशं जलपूर्णं [illegible] कृत्वा द्विजान् [illegible] कृत्वा वेश्म गृहं विशेत्।

भाषा— इसके बाद जिस स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में जिस लग्न से केन्द्र (1, 4, 7, 10) त्रिकोण (5, 9) तथा आयधनत्रिक (11, 2, 3 स्थान) में शुभग्रह हों तथा 6, 6, 11वें स्थान पर पापग्रह हों; 4, 8 स्थान शुद्ध (शुभग्रह, पापग्रह से रहित) हों, भवन स्वामी की जन्मराशि तथा जन्मलग्न से आठवाँ का प्रवेश-लग्न नहीं हो, रवि, मङ्गलवार, रिक्ता या चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी, चरसंज्ञक 1, 4, 7, 10 लग्न, अमावस एवं चैत्र महीने को त्यागकर अन्य शुभवार, शुभतिथि, मास, स्थिर, द्विस्वभाव लग्नों (2, 3, 5, 8, 9, 11, 12) में, जल पूरित, पञ्चपल्लव से युक्त दूर्वा, कुश, पल्लव, सर्वौषधी से युक्त दीर्घ वर्तिका वाले दीप से युक्त घट एवं विद्वान द्विज को आगे करते हुए, मङ्गलगीतों को गाती सौभाग्यवती युवतियों, परिजनों के साथ वाद्यवादन के साथ, भकूट के शुद्ध रहने पर नूतन गृह में प्रवेश किया जाना चाहिए।

अत्र वसिष्ठः (वशिष्ठसंहिता 38, 24) —

> **कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूर्ण्यानग्रतः पूर्णकुम्भम्।**
> **रम्यं हर्म्यं तोरणस्रग्वितानैः सभ्यक् स्त्रीभिर्गीतवाद्यैर्विशेत्तत॥ 49॥**

कृत्वा इति। प्रवेश समये शुक्रस्य पृष्ठगत्वमावश्यकं, अत्र शुक्रः पृष्ठगः कार्यं इत्यनुक्तोऽपि विशेषो ध्येयः।

भाषा— वशिष्ठ का विचार है कि शुक्र को पीछे और सूर्य को बायीं ओर रखकर ब्राह्मणों का पूजनकर पूर्ण कलश को आगे रख तोरण, माला, वितान आदि से सुशोभित आवास में नारी समुदाय के गीतों के साथ, वाद्यों की ध्वनि के बीच गृहप्रवेश किया जाना चाहिए।

अत्र श्रीपतिः (ज्योतिषरत्नमाला 18, 10) —

> **कृत्वा विप्रान् सजलकलशं चाग्रतो वामतोऽर्कं**
> **स्नातः स्रग्वीविमलवसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः।**
> **व्यस्तैर्यात्राकथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा**

हर्म्यं पुष्पप्रकररुचितं तोरणाढ्यं विशेच्च ॥ 50 ॥

कृत्वेति। विप्रान्पूर्णकुम्भं च पुरः कृत्वा सूर्यं पूर्वादिक्रमेण भ्रमन्तं वामपक्षे कृत्वा शुचिमान् यात्रोदितैः शकुनैः प्रमुदितो गृहं विशेत्।

भाषा— पूरित कलशों को लिए आगे-आगे ब्राह्मण-समुदाय हो, वामभाग में सूर्य हो, चारों ओर वेद वाक्य-ध्वनि की अनुगूंज होती हो; गृहपति को मङ्गल स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारणकर आभूषण और चन्दन, पुष्पमाला से सुसज्जित होकर पुष्पों के तोरणादि से समलंकृत गृह में द्वारमार्ग से प्रवेश करना चाहिए। यात्रा के सम्बन्ध में जो शकुन निर्दिष्ट हैं, वे यदि होते हों तो अति शुभदायक स्वीकारने चाहिए।

विशेष— सामान्यतया जो-जो वस्तु अपने मन के लिए प्रसन्नता की कारक हों, उनको शकुन कहा गया है— 'यद् यद् वस्तु स्वान्तनितान्तोपकरण मनः प्रसन्नकारकं, तत् तत् शुभशकुनं ज्ञेयम्।' इस विषय में वराहमिहिर का सिद्धान्त है कि जन्मान्तरों में किए गए शुभाशुभ कर्मों का फल ही लोगों को यात्रा अथवा आक्रमण के काल में शकुनों द्वारा सामने आता है— अन्यजन्मान्तरकृतं पुंसा कर्म शुभाशुभम्। यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम्॥ *(बृहद्योगयात्रा 23, 1; बृहत्संहिता 86, 5)*

केशवदैवज्ञ का मत है कि विप्रों की जोड़ी, गाय, माङ्गलिक वाद्य-वादन, स्वच्छ कपड़ों के साथ धोबी, फल, घृत, पुष्प, अश्व, हाथी, दूध, वेश्या, सिद्धार्थ (गौर सर्षप अथवा श्वेत सरसों), श्वेत वृषभ, दही, शहद, मणि आदि रत्न, प्रज्वलित ज्वाला, मांस, छत्र, दर्पण, आयुध, मद्य, मयूर, नेवला, खोदी गई मिट्टी, चाष पक्षी, कन्या, धान्य, वस्त्र, शुभ सम्बोधन, जलपूरित कलश, ईख और सपुत्रा स्त्री ये मङ्गल निमित्त या शकुन हैं, यात्रा में इनका समक्ष होना प्रशस्तकारक होता है— विप्रागोवाद्यधौताम्बर रजकफलाज्याशपुष्पेभ दुग्धं वेश्यासिद्धार्थ शुभ्रोक्षदधिमधुमणि प्रज्वलद्वह्निमांसम्। छत्रादर्शास्त्रमद्यं शिखिनकुलमृदश्चाप कन्यान्नवस्त्रं सद्वाक्यं पूर्णकुम्भेक्षु ससुतवनिताः स्युर्गमेमङ्गलानि॥ *(मुहूर्ततत्त्वं 10, 8)*

श्रीपति ने भी ये ही शकुन बताए हैं— भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमान मुकुरावद्धेकपश्वामि-घोष्णीष क्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपङ्कज दधिक्षौद्राज्य गोरोचनाः कन्याशङ्खसितोक्षवस्तुमनोविप्राश्वरत्नानि च॥ प्रज्वलज्ज्वलनदन्ति तुरङ्गाभद्रपीड गणिकाङ्कुशमृत्स्नाः। अक्षतेक्षुफलचामरभक्षाण्यायुधानि च भवन्ति शुभानि॥ भेरिमृदङ्ग मृदुर्मद्दल शङ्खवीणा वेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवतीः सुरभिः सवत्सा धौताम्बरश्चरजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥ *(ज्योतिषरत्नमाला 15, 62-64)*

तथा च वसिष्ठः (पीयूषधारा. 13, 4; वसिष्ठसंहिता 32, 225) —

राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेदिति।

अयं विधिः प्रवेशे साधारणः। कीदृशं वेश्म भकूटशुद्धं भकूटं षष्ठाष्टकादि, उपलक्षणत्वाद्विवाहप्रकरणोक्तं (मुहूर्तचिन्तामणौ) 'वर्णो वश्यं तथा तारा' इत्यादिकं च तेनापि शुद्धम्।

भाषा— दाम्पत्य जीवन की तरह ही यहाँ राशिकूटादिक पर विचार किया जाना अपेक्षित है।

अथ वामगतार्कज्ञाने पूर्वादिमुखगृहप्रवेशं रामदैवज्ञ आह —

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पञ्चभे प्राग्वदनादिमन्दिरे।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने॥ 51॥

वाम इति। अष्टमपञ्चमद्वितीयैकादशस्थानेभ्यः पञ्चसु स्थानेषु रवौ स्थिते सति प्राग्वदनादिमन्दिरे प्रवेशकर्तुर्वामो रविर्ज्ञेयः। तद्यथा-यस्मिन् लग्ने गृहप्रवेशस्तस्मादष्टमे यत्स्थानं ततः पञ्चसु स्थानेषु स्थितेऽर्के सति पूर्वाभिमुखगृहप्रवेशकर्तुर्वामो रविः स्यात्। तथा लग्नाद्यत्पञ्चमस्थानं ततः पञ्चसु स्थानेषु स्थिते रवौ दक्षिणाभिमुखं गृहे प्रवेशकर्तुर्वामो रविः स्यात्। एवं लग्नाद्यत्द्वितीयस्थानं तस्मात्पञ्चसु स्थानेषु स्थिते रवौ पश्चिमाभिमुखे गृहे प्रवेशकर्तुर्वामोऽर्कः। तथैव लग्नाद्यदेकादशस्थानं ततः पञ्चसु स्थानेषु स्थिते रवौ उत्तराभिमुखे गृहे प्रवेशकर्तुर्वामो रविः स्यात्। पूर्णातिथाविति। प्राग्वदनेपूर्वाभिमुखेगृहे पूर्णातिथौ पञ्चम्यां दशम्यां पञ्चदश्यांवाप्रवेशः शुभः। नन्दादिके तिथिगणेयाम्यपश्चिमोत्तरानने गृहप्रवेशः शुभः। यथा-दक्षिणाभिमुखे गृहे नन्दायां प्रवेशश्शुभः। भद्रायां पश्चिमाभिमुखे गृहप्रवेशश्शुभः। उत्तराभिमुखे जयायां प्रवेशश्शुभः।

भाषा— अब वाम रवि ज्ञान कहा जा रहा है कि वामार्क का ज्ञान होने पर ही घर में प्रवेश किया जाना चाहिए। प्रवेश लग्न से अष्टमराशि से आगे पाँच (8, 9, 10, 11, 12) स्थान में सूर्य के रहने पर पूर्वाभिमुख भवन में प्रवेश करने वाले लिए बायाँ सूर्य होता है। प्रवेश लग्न से पञ्चमभाव राशि से आगे पाँच (5, 6, 7, 8, 9) राशि में सूर्य की सत्ता होने पर दक्षिण दिशा मुख वाले मकान में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है। इसी प्रकार गृहप्रवेश लग्न से द्वितीय भाव से आगे पाँच (2, 3, 4, 5, 6) स्थानों में सूर्य की स्थितिवश पश्चिम की ओर मुख वाले भवन में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है और प्रवेश लग्न से 11वें भाव से आगे पाँच (11, 12, 1, 2, 3) भावों में सूर्य के होने पर उत्तर दिशा में मुख वाले भवन में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है। इसी प्रकार पूर्व में द्वार होने पर पूर्णातिथि (5, 10, 15) में, दक्षिण द्वार में नन्दातिथि (1, 6, 11) में पश्चिम में भद्रातिथि (2, 7, 12) में और उत्तर में भवन का द्वार होने पर जया (3, 8, 13) तिथियों में गृह में प्रवेश शुभ माना जाता है।

वाम रवि एवं प्रवेशार्थ तिथि चक्रम्—

गृहमुख	पूर्वमुख	दक्षिणमुख	पश्चिममुख	उत्तरमुख
तिथि	पूर्णा	नन्दा	भद्रा	जया
	5, 10, 15	1, 6, 11	2, 7, 12	3, 8, 13
सूर्य स्थान	8	5	2	11
	9	6	3	12
	10	7	4	1
	11	8	5	2
	12	9	6	3

यथा चक्रोद्धार उक्तश्च (पीयूषधारा. 13, 5; ज्योतिर्निबन्ध 179, 54) —

रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात् पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात्।
पूर्वाशादिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः ॥ 52 ॥

भाषा— (ज्योतिष्प्रकाश में कहा गया है) प्रवेशकालीन लग्न से 8, 9, 10,11, 12वें स्थान में सूर्य हो तो पूर्वाभिमुख द्वार वाले गृह में; 5, 6, 7, 8, 9 में हो तो दक्षिणाभिमुख में; 2, 3, 4, 5, 6वें में हो पश्चिमाभिमुख और यदि 11, 12, 1, 2, 3 रे स्थान में सूर्य हो तो उत्तराभिमुख गृह में प्रवेश करने पर रवि वाम होता है और प्रवेशकाल में वाम रवि प्रशस्त होता है।

विशेष— प्रवेशकालिक लग्न प्राच्यादि दिशाओं से दो-दो राशि का न्यास करें व एक कोण में रखते हुए वाम सूर्य पर विचार करें, जैसा कि विश्वकर्मा का मत है— लग्नात्प्रागादितो द्विषु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत्। एकमेव न्यसेत्कोणे सूर्ये वामे विचिन्तयेत् ॥ *(पीयूषधारा. तत्रैव)*

तथा च बृहस्पतिः (पीयूषधारा. 13, 5) —

नन्दायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमं मुखम्।
जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेदिति ॥ 53 ॥

भाषा— बृहस्पति का मत है कि नन्दा तिथि (1, 6, 11) में दक्षिण द्वार वाले गृह में प्रवेश उत्तम होता है। भद्रा तिथि (2, 7, 12) में पश्चिम मुखी गृह; जया तिथि (3, 8, 13) में उत्तर द्वार वाले गृह और पूर्णा तिथि (5, 10, 15) में पूर्व मुख वाले गृह में प्रवेश विशेषतः करना चाहिए।

अथ गृहप्रवेशे कलशचक्रमाह रामदैवज्ञः (13, 6) —

वक्त्रे भू रविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे।
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत् सर्वदा ॥ 54 ॥

वक्त्रेभूरिति। कुम्भे कलशाकृतिवास्तौ रविभात्सूर्याक्रान्तनक्षत्रात् (ल्यब्लोपे पञ्चमी) रविममारभ्य कलशस्य मुखे भूरेकं सूर्याक्रान्तनक्षत्रमेव स्थाप्यम्। तत्फलं गृहस्या ग्निदाहः। ततः सूर्यभात् कृताः अग्रिमाणि चत्वारिभानि प्राच्यां स्थाप्यानि। फलमुद्वसनं जनवासशून्यं गृहं स्यात्। ततः कृता यमगताः, तदग्रिमाणि चत्वारि भानि दक्षिणे स्थाप्यानि फलं गृहपतेर्लाभः द्रव्यप्राप्तिः। ततः कृताः पश्चिमे तदग्रिमाणि चत्वारि भानि पश्चिमायां स्थाप्यानि फलंगृहपतेः श्रीप्राप्तिः। ततो वेदा उत्तरे तदग्रिभाणि चत्वारि भानि उत्तरत्यां स्थाप्यानि फलं कलिः लोकैः सह गृहसम्बन्धिनिरर्थको वादः। ततो युगमितास्तदग्रिमाणि चत्वारि भानि गर्भे कलशमध्ये स्थाप्यानि फलं विनाशो गर्भस्यैवेत्यर्थः। ततो रामास्तदग्रिमाणि त्रीणि भानि गुदे बुध्ने स्थाप्यानि फलं स्थैर्यं गृहपतेर्बहुकालं तत्र विनासः। ततोऽनलास्तदग्रिमाणि त्रीणि भानि कण्ठे स्थाप्यानि फलं स्थिरत्वं गृहपतेर्भवेत्। एवमभिजिद्रहितानि सप्तविंशतिभानि स्युः।

भाषा— अब प्रवेशकाल में दर्शनीय कुम्भचक्र ज्ञान लिखा जा रहा है। सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उससे 1 नक्षत्र के मुख में स्थापित करने पर वही प्रवेश नक्षत्र हो तो अग्निदाह, फिर आगे के 4 पूर्व के नक्षत्रों में उद्वास, फिर 4 नक्षत्र दक्षिण में लाभ, इसके बाद 4 नक्षत्र पश्चिम भाग में लक्ष्मीप्रद, तदन्तर 4 नक्षत्र उत्तर में कलहकारी, तदोपरान्त 4 नक्षत्र गर्भ में नाशकारक और इसके बाद 3 नक्षत्र गुदा में स्थिरता देने वाले होते हैं जबकि 3 नक्षत्र कण्ठप्रदेश वाले स्थिरता प्रदायक हैं अर्थात् चक्रानुसार सूर्य के नक्षत्र से 5, 8, 8, 6 क्रम से शुभ-अशुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं।

स्पष्टार्थ कुम्भचक्रम् —

स्थान	मुख	पू.	द.	प.	उ.	ग.	गु.	क
नक्षत्र	1	4	4	4	4	4	3	3
फल	दाह	उद्वास	लाभ	श्री	कलह	नाश	स्थैर्य	स्थैर्य
कुल	5 अशुभ		8 शुभ		8 अशुभ		6 शुभ	

ज्योतिष्प्रकाशे (पीयूषधारा. 13, 6) —

भू वेंदपञ्चकं₄,₄,₄,₄,₄ त्रिस्त्रिः₃,₃ प्रवेशे कलशेऽर्कभात्।
मृतिर्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं शुक् स्थिरतासुखम्॥ 55॥

भू इति। वेदपञ्चकं वेदाश्चत्वारस्तेषां पञ्चकं पञ्चवारम्, चत्वारि भानि लेख्यानीत्यर्थः। मृतिरित्यादीन्यष्टौ यथासङ्ख्यं फलानि।

अत्र कलशचक्रे शुभफलदस्थाने याते सत्येव विहितनक्षत्राणां परिग्रहो युक्त-स्तत्रापियद्दिङ्मुखे प्रवेशे विधित्सते तद्दिङ्मुखनक्षत्रपरिग्रहः। यथा पूर्वस्यां प्रवेशे विधित्सते रोहिणी मृगो वा ग्राह्यः। दक्षिणमुखगृहप्रवेश-उत्तराफाल्गुनी चित्रे, एवं पश्चिमाभिमुखे-अनुराधोत्तराषाढे। एवमुत्तराभिमुखे उत्तरभाद्रपदारेवत्यौ ग्राह्य इति निष्कृष्टाऽर्थः।

भाषा— कलश चक्र बनाकर प्रवेशकालिक सूर्य के नक्षत्रानुसार ही फलाफल पर विचार करें। यह फल क्रमशः मरण, गमन, धन, लक्ष्मी, शत्रुता, रोग, स्थिरता एवं सुख बताया गया है।

विशेष— शूरमहाठ शिवराज ने ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि प्रवेशकाल में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे 5, 8, 8, 6 नक्षत्रों में प्रवेश नक्षत्र होने पर अशुभ, शुभ, अशुभ, शुभ होता है- प्रवेशे कलशेर्कर्क्षात्पञ्चनागाष्ट षट् क्रमात्। अशुभं च शुभं ज्ञेयमशुभं च शुभं तथा॥ *(ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 167)*

अत एवोक्तं वसिष्ठेन: (38, 17) —

यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तद्दिगृक्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सन्निवेशो न सर्वैः।

भाषा— जिस दिशा में गृह का द्वार हो, उस दिशा के नक्षत्रो में जो ग्रह आए हों, उनके वारों में प्रवेश करे, समस्त वारों में नहीं।

अथ राहुविचारमाह: —

यद्राशिगोऽर्कः खलु तद्दिशि स्याद्राहुः सदा गच्छति मासि मासि।
द्विरागमे वाऽपि गृहप्रवेशे राहुः प्रशस्तः खलु दक्षपृष्ठे।
त्रैमासिकं तडागादौ मासिकं द्व्यङ्गकर्मणि।

यद्राशिग इति। अर्को रविः यद्राशिगः यस्मिन् राशौ व्यवस्थितः तद् दिशि तस्यां दिशि मासि मासि प्रत्येकस्मिन् मासि राहुः गच्छति। द्विरागमे वापि गृहप्रवेशे दक्षपृष्ठे दक्षिणपृष्ठे वर्तमानो राहुः खलु निश्चयेन प्रशस्तः स्यात्।

भाषा— सूर्य जिस राशि पर विद्यमान हो, उस राशि के क्रम से प्रति मास राहु उसी-उसी दिशा में भ्रमण करता है। यदि यह राहु द्विरागमन या गौना एवं गृहप्रवेश काल में दाहिने एवं पृष्ठ पर हो तो शुभ जानना चाहिए। तडागादि में त्रैमासिक एवं द्व्यङ्गयात्रा या त्रिरागमनादि कार्यों के प्रसङ्ग में मासिक रूप से विचार करें।

अथ प्रवेशे कर्तव्यतामाह (13, 7) —

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम्।
शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् राजाऽर्चयेद् भूमिहिरण्यवस्त्रैः॥ 55॥

एवमिति। एवमुक्तप्रकारेण सुलग्ने शुभलग्ने गृहप्रवेशविहितलग्न इत्यर्थः। वितान पुष्पश्रुतिघोषयुक्तं वितानानि पुष्पाणां श्रुतीनां घोषाश्च वितान पुष्पश्रुतिघोषास्तैः युक्तं स्वगृह स्वीयभवनं राजा प्रविश्य प्रवेशीकृत्य भूमिहिरण्यवस्त्रैः भूमयो हिरण्यानि वस्त्राणि भूमिहिरण्यवस्त्राणि तैः शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् शिल्पं शिल्पविद्याः जानः तीति शिल्पज्ञाः, दैव जानन्तीति दैवज्ञाः विधिं जानन्तीति विधिज्ञाः पुरे भवाः पौराः ते शिल्पज्ञदैवज्ञ-विधिज्ञपौरास्तान् अर्चयेत् पूजयेदिति।

भाषा— इस प्रकार पूर्व विधि के अनुसार शुभलग्न में वितान (चन्दोवा, दीवारगरी एवं चाँदनी), पुष्पों से अलंकृत, वेद ध्वनि से युक्त अपने गृह में प्रवेश कर शिल्पज्ञ, दैवज्ञ, कर्मकाण्ड की विधि करवाने वाले आचार्य, नागरिकों को भूमि, स्वर्ण गौ, वसन आदि से पूजा कर उनसे अपने लिए शुभाकांक्षा करनी चाहिए।

विशेष— श्रीपति ने इस प्रसङ्ग में भूगोलकर्ता या शुल्बविद्, लिङ्गिन, पुरवासी, विप्र, सुहृदयों व शिल्पियों के यथेष्ट सम्मान और अन्धजनों, दीन-हीनों को उपहारादि देने का निर्देश दिया है— ततो नृपो विप्रसुहृत् पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः। धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेत् सहान्धदीनान् पुरवासिनस्तथा॥ *(रत्नमाला 13, 11)*

भोजराज का कहना है-भूरिपुष्प निकरं सुतोरणं तोयपूर्णकलशाभि शोभितम्। गन्धपुष्पबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम्॥ पश्चात्काञ्चनरूप्यवस्त्र कुसुमैः सम्पूजयेत् सादरं दैवज्ञं सहशिल्पिभिर्द्विजगुरून्बन्धूंस्तथान्यानपि। गत्वा वेश्म पुरानधनं कथया वास्तं वसेत्सद्धनैरात्रौ धर्मविशुद्धशान्तहृदयो निद्रां निषेवेदसौ॥ *(राजमार्तण्ड 879-880)*

अथोपसंहार: —

शाके तर्क₆ रसा₆ ङ्ग₆ चन्द्र₁ मिलिते पक्षे वलक्षेतरे
चैत्रे मासि भृगोर्दिने स्मरतिथौवेषा, गता पूर्णताम्।
नानाचार्यमतं विलोक्य रचिता श्रीवास्तुरत्नावली
श्रीमन्मैथिल जीवनाथकृतिना दैवज्ञमोदप्रदा॥ 56॥

शाक इति। तर्करसाङ्गचन्द्रमिलिते₁₆₆₆ शाके शाकवर्षे चैत्रे चैत्रिके मासे वलक्षेतरे कृष्णे पक्षे स्मरतिथौ सप्तमीतिथौ नानाचार्यमतं अनेकाचार्याणां मतं विलोक्य श्रीमन्मैथिलजीवनाथकतिनां दैवज्ञमोदप्रदा गणकानन्ददात्री श्रीवास्तुरत्नावली रचिता।

भाषा— (ग्रन्थान्त में उपसंहार-पुष्पिका के रूप में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हुए कहता है) शकाब्द 1666 में चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि, शुक्रवार को

विविध आचार्यों के मतों, ग्रन्थ-सिद्धान्तों का अवलोकन करने के बाद श्रीमान् मैथिल जीवनाथ ने दैवज्ञों को मनोमोद प्रदान करने के निमित्त इस वास्तुरत्नावली की रचना की।

इति श्रीमन्मैथिलशम्भुनाथदैवज्ञात्मजश्रीजीवनाथदैवज्ञकृतायां वास्तुरत्नावल्यां गृहप्रवेशनिर्णयाध्यायो दशमः समाप्तः ॥

इस प्रकार श्रीमान् मैथिल शम्भुनाथ दैवज्ञात्मज पण्डित जीवनाथ दैवज्ञ कृत 'वास्तुरत्नावली' नामक ग्रन्थ में गृहप्रवेशनिर्णय नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥10॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

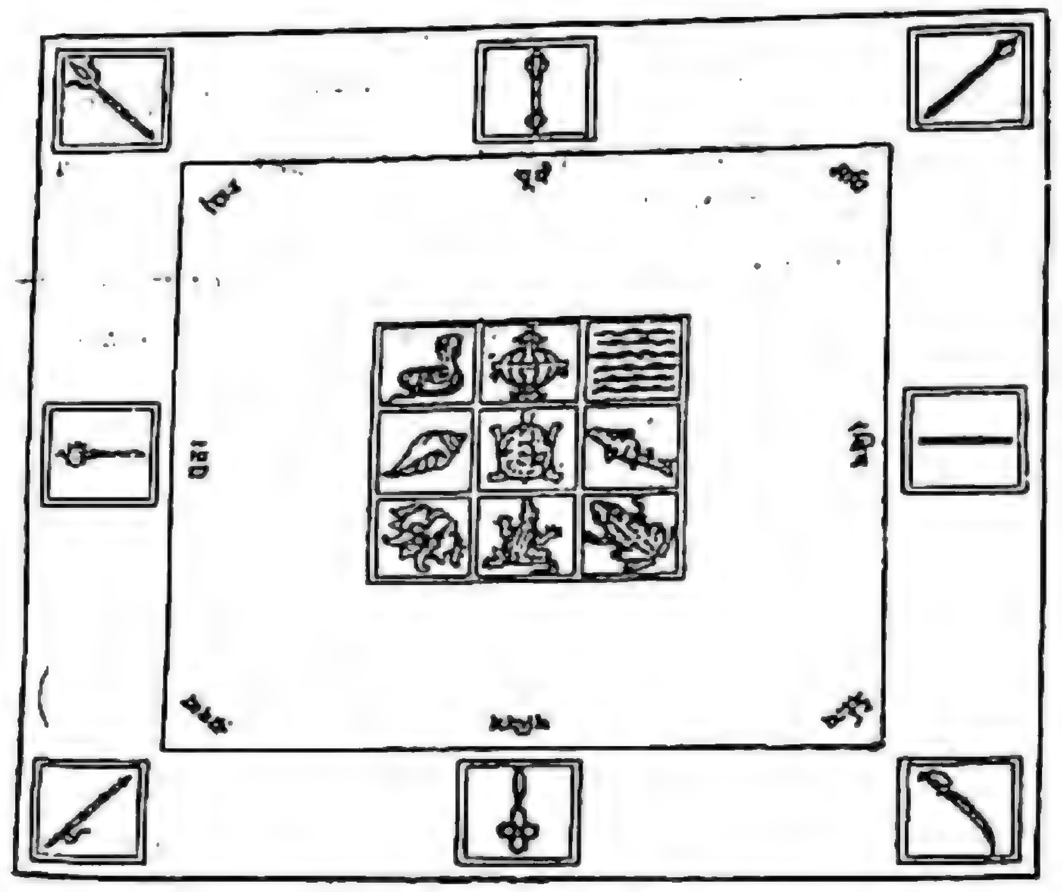

कूर्मशिला के रूपादि

परिशिष्ट

अथ शिलान्यासपद्धतिः

जगदम्बावलम्बाय निरालम्बाय शूलिने।
जगत्त्रयमुटुम्बाय नमः साम्बाय शम्भवे ॥ 1 ॥

यजमानः सस्त्रीकः शुचिः प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायः शान्तिपाठादि पठित्वा कुश-यव-जलादीन्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्। ॐ तत्सदद्य अमुकोः गृह (देवालय) निर्माणाय शिलान्यासं करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपति पूजनं स्वस्तिवाः च करिष्य इति सङ्कल्पं कुर्यात्।

(1) वास्तुशान्तिकरणपक्षे 'तत्रादौ सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकम् आयुरारोग्य-पुत्रपौत्रद्विपद-चतुष्पद-धनधान्यादिसमृद्धये ग्रहयज्ञसहितां वास्तुशांति करिष्ये' इति च सङ्कल्पयेत्। तत उपशिलासहिताः पञ्चशिलाः (2) पीठे संस्थाप्य ताम्रमयान् मृन्मयान् वा द्वाविंशतिकलशान्

आजिघ्रेति संस्थाप्य तेषु (3) मृत-पञ्चपल्लवपञ्चक्षीरिकषाय-गन्ध-गोमूत्र-गोमय-मिलितपञ्चगव्य-दुग्ध-गन्धोदक दधि-गन्धोदक-घृत-गन्धोदक-मधु-गन्धोदक शर्करा-गन्धोदक-फल-रत्न-पुष्प-भृङ्गोदक-सप्तधान्य-तीर्थ जल-गन्धान् क्रमेण प्रक्षिप्य शिला वस्त्रेणाच्छाद्य मन्त्रैः स्नापयेत्।

तद्यथा-प्रथमं ससमृत्तिकोदकेन— ॐ अग्निर्मूर्द्धा० अश्वत्थ-प्लक्षवटो-दुम्बर-वेतसमूलसंभवैः पञ्चकषायैः ॐ यज्ञायज्ञा वो अ० इति, गावःश्चा गोमूत्रेण, गन्धद्वारामिति गोमयेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन, पयःपृथिव्याम् इति मिलितपञ्चगव्येन, गन्धोदकेन, दधिक्राव्ण इति दध्ना, गन्धोदकेन, घृतवती इति घृतेन, गन्धोदकेन, मधुव्वाता इति घृतेन, गन्धोदकेन, आयंगौः इति शर्करया, गन्धोदकेन याः फलिनीरिति फलेन परिव्राजपतिरिति रत्नोदकेन, हिरण्यगर्भ इति सुवर्णोदकेन, हविष्मतीरिति पुष्पभृङ्गोदकेन, ओषधय इति सप्तधान्योदकेन, इमं मे इति तीर्थोदकेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन च संस्नाप्य वस्त्रेण परिमार्ज्य सुवर्णादिशलाकया कुङ्कुमादिना नन्दा-भद्रा-जया-रिक्तापूर्णेति नामसु पञ्चसु शिलासु क्रमेण (4) पद्मम् सिंहासनम्, तोरण-छत्रे कूर्मम् चतुर्भुजं विष्णु च लिखित्वा शिलानां मूलेषु अभिषेकं कुर्यात पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमेण (5) आ ब्राह्मन, ॐ भद्रं कर्णे-भिः, ॐ जातवेदसे, ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते, ॐ पूर्णा दर्वि, इति।

ततः शिलानां मध्येऽभिषिञ्चेत्-ॐ नाभिर्मे 10 ॐ ब्रह्म यज्ञानम्, ॐ विष्णो रराटम् ॐ नमस्ते रुद्र ॐ इमं देवाः इति मन्त्रैः।

ततः शिलानां शिरस्सु (6) क्रमेण ब्रह्माणं, विष्णुम्, रुद्रम, ईश्वरम्, सदाशिवं च क्रमेणावाह्य ततो नन्दायै नमः नन्दामावाहयामि इत्येवं भद्रा जया रिक्ता पूर्णाश्चावाह्य सम्पूज्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य ॐ नन्दायै स्वाहा ॐ भद्रायै स्वाहा ॐ जयायै स्वाहा ॐ रिक्तायै स्वाहा ॐ पूर्णायै स्वाहा इति घृतेनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशत्यष्टान्यतमसङ्ख्यया हुत्वा याते रुद्र शिवा तनूरघोरा इति अष्टोत्तरशतमाहुतीः शान्त्यर्थं हुत्वा प्रोक्षणीस्थान् संस्रवान् स्थण्डिलस्योत्तरतः स्थापितकलशे निक्षिप्य (7) तेनोदकेन शिलानां मूलमध्याग्रिः सकुशैरभिषिच्य भूमिं सम्पूज्य वास्तु-भूमेरीशानादिकोणेषु चतुर्हस्तं गर्तं खात्वा गोमयेनोपलिप्य तत्र सर्पाकारं वास्तुपुरुषमक्षतैर्लिखित्वा 'आवाहयाम्यहं देवं भूमिष्ठं चाप्यधोमुखम्। वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम्।' इत्यावाह्य ॐ वास्तोष्पते इति संपूज्य प्रार्थयेत्—

ॐ वास्तु पुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो।

मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥ इति।

(8) तत ईशानकोणे उपशिलां संस्थाप्य तस्या मध्यगर्ते मध्वाज्य-पारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं पद्मकलशं (9) गन्धपुष्पादिभिरलङ्कृतं निधाय ॐ पद्माय नमः ॐ आधारशिलायै नमः इति संपूज्य तस्य वामभागे दीपं संस्थाप्य (10) कलशोपरि प्राकशिरसं

नन्दाम् ॐ शिवो भव ॐ नाभि मे इति मन्त्रद्वयेन संस्थाप्य सम्पूज्य प्रार्थयेत्— ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्। देशगेऽस्मिन् तिष्ठ यावच्चन्द्रार्कतारकाः। आयुः कामं श्रियं देहि देवगाधारिणि नन्दिनी। अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या सदा वर्धनि वासतः'। इति। एवमेव आग्नेयादिकोणत्रये मध्ये च चतुर्हस्तगर्तं खात्वा तान् विलिप्य सम्पूज्य आधारशिलासु कलशान् संस्थाप्य तद्वामभागेषु दीपान् संस्थाप्य तत्र शिलाः संस्थाप्य सम्पूज्य प्रार्थयेत्-

भद्राप्रार्थनामन्त्रः— भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव। त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनि।

जयाप्रार्थनामन्त्रः— गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्। गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम्। नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनी भव भार्गवि।

रिक्ताप्रार्थनामन्त्रः— रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे। सर्वदा सर्वदोषघ्ने तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि।

पूर्णाप्रार्थनामन्त्रः— पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा। गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता। त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये'।

ततः सदीपं पायसबलिं माषभक्तबलिं वानन्दायै नमः इत्यादिनाममन्त्रैर्दत्त्वा शान्तिकाध्यायं च पठित्वा दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणभोजनं भूयसीं च संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति शिलान्यासः।

इति शुभम्।

---

1. 'प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये' इति मात्स्यात् सर्वदोषापनोदनार्थं गृहारम्भ गृहप्रवेशयोर्वास्तुशान्तिरावश्यकी॥ गृहप्रारम्भश्च शिलान्यासरूप एव। सत्यामपि शान्तिः शिलान्यासे मण्डपकुण्डादिकल्पना च सति संभवे विधेयम्। मण्डपसत्वे सदस्य-होतृ-द्वारपालादिवरणमप्यावश्यकमिति। वास्तुशान्तिश्च केवलं पौराणकैः शिलान्यासेऽनुष्ठेया न तु श्रौतविधया गृहप्रवेश एवं विधानादिति।
2. शिलाश्च शिरःपृष्ठे पुष्कृतचिह्नाः पाषाणमयं चेद् गृहं तदा एकविंशत्यङ्गुल-दीर्घा सप्तदशाङ्गुलदीर्घा त्रयोदशाङ्गुलदीर्घा नवाङ्गुलदीर्घा क्रमेण विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्राणाम् तथा दैर्घ्यप्रमाणार्धप्रमाणविस्तारा विस्तारतोऽर्धोच्छ्रायाश्चतुरस्राः समाः श्लक्ष्णाः कार्याः। 'शिलाप्रमाणं प्रथमं प्रादेशं वर्गानुपूर्वेण यथाक्रमेणाम्। अर्धेनविंशद्-धन-विध-नन्दाविस्तारके व्यासमितं तदर्धम्। तदर्धमानं स्थल पिण्डिका स्यात् ऊर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या' इति विश्वकर्मोक्तेः। 'एकविंशद् द्विजातीनां क्षत्रिणां दश सप्त च। त्रयोदश तु वैश्यानां शूद्राणां' तु नवाङ्गुलम्' इति स्मृत्यन्तराच्च। प्रासादे तु हस्तमानाः कार्याः- 'प्रासादादौ विधानेन न्यस्तव्याः शुभतोहया। चतुरस्राः समाः कृत्वा सामन्तादधस्तामिताः इति विश्वकर्मोक्तेः। ऐष्टकं चेद् गृहं तदा वितस्त्यायता षडङ्गुलविस्तारा, द्वि चतुरङ्गुलोच्छ्राया इष्टकाः कारयितव्याः।' इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः। विस्तारस्य त्रिभागेन पैतृस्येन सम्मिताः।' इत्यग्निपुराणे (अ. 45) उक्तेः। आयामतुल्यविस्तारकरणे चतुरङ्गुलस्थूलाः तदर्धविस्तारकरणे ष्टङ्गुलस्थूला। इष्टका कार्या. शिलाविस्तारस्य द्विविधस्य इष्टत्वेन इष्टकाविस्तारस्यापि तथाविधस्य ग्रहीतुमुचितत्वादिति।

3. मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा। विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च। गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनाम्ना-ङ्कितागुता। फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः। चन्दनेन समालभ्य वस्त्रेराच्छादयेच्छिला' इति स्नानप्रकारः अग्निपुराणे (अ. 92) उक्तः। मन्त्राश्च 'अग्निर्मूर्द्धा' इत्यादयो विश्वकर्मप्रकाशे (अ. 5 श्लोक 64) उक्ताः।
4. नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा इत्याख्यासु पञ्चसु शिलासु क्रमेण पद्म, सिंहासनं, तोरणच्छत्रे, कूर्मं, चतुर्भुजं विष्णुं च टङ्केण लेखयेत्। नन्दादिशिलानां च स्थापनार्थं किञ्चित्तदधिकप्रमाणान् शिलानयानेवाधारान् कल्पयेत् ता उपशिला इत्युच्यन्ते। उपशिलासु पद्मादि निधिकुम्भस्थापनार्थं मध्ये एकैकं गर्तं कारयेत्।
5. 'आ ब्रह्मन्नितिनन्दाया भद्रं कर्णेति वै तथा। जातवेदसेति. च तथा यमायत्वेतिमन्त्रकैः। पूर्णा दर्वीति पूर्णायाः क्रमेणापि समाचरेत्। मूले, मध्येऽपि च तथा नाभिमेति च मन्त्रकैः ब्रह्म यज्ञानमिति च विष्णो रप्टमिति तथा। नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संजपेत्।
6. शीर्षे चावाहनं कुर्यात् तद्विष्णोः परमं पदम्। इदं विष्णुः समब्धे च त्र्यम्बकं मूर्द्धानं दिवः' इति नन्दादिशिलानां मध्यशिरःसु अभिषेकः, शिरःसु आवाहनं चोक्तम्।
7. 'प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः इत्याग्निपुराणात् (अ. 92) संस्रवजलैरभिषेकः।'
8. अनेन हि खननेऽपि ईशानादिक्रम एव लभ्यते।' खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः' इत्यादि तु संपूर्णयाग भूमिनिखनने आरम्भस्य आग्नेये कर्तव्यताबोधकम्। शिलान्यासस्य आग्नेयोपक्रमपक्षे तत्र खननोपक्रम कर्तव्यताबोधक वा। कन्या-सिंहे-तुलायां भुजंगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे, ईशखातं वदन्ति। कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं, खात वायव्य कोणे अग्रेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे, रक्षखातम्। अस्यार्थः- सिंहकन्या, तुलासु वास्तुसर्पस्य मुखमीशानकोणे भवति। अतः खातं खातस्योपक्रमः सिंहकन्यातुलाख्ये सूर्ये अग्निकोणे कार्यः। वृश्चिकादिराशित्रयेसंस्थे सूर्ये सर्पास्यं वायव्ये भवति, ततस्तदा ईशाने खातेपक्रम वृषादिराशित्रये सूर्ये अग्निकोणे सर्पमुखम् नैर्ऋत्ये तदा खातोपक्रम इति। इदमपि शिल्पिशास्त्रवचनं भित्त्यर्थं समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थं समस्तवास्तु भूमौकर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। ननुशिलान्यासस्य कर्तव्य-खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन कालविशेषे दिगन्तरमेनियमयितुशक्यत्वात्। इत्यमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभाव-कल्पनाऽनवकाशादिति दिक्।
9. पद्मादिनिधिकुम्भाश्च ताम्रमया मृन्मया वा विप्रादीनां क्रमेण पञ्चाङ्गुलाः, सार्द्धद्व्यङ्गुलाः, सपादाङ्गुलाः पञ्चकार्याः। शूद्राणामपि सपादाङ्गुला एवं, चतुर्थमानस्यानुक्तेः 'ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम्। विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तः तदर्धमानन्तु तदर्धमानम्' इति विश्वकर्मोक्तेः। कुम्भानां पिधानानि च कार्याणि।
10. 'ततः सुलग्ने संप्राप्ते पञ्च वाद्यानि वादयेत्। नन्दां प्रगृह्य च शिलां तथाधारशिलां न्यसेत्॥ 82 ॥ तस्योपरि न्यसेत्पद्मकलशं मन्त्रवर्जितम्। सर्वौषधिजलोपेते पारदास्यपुतप्लुतम्॥ 83 ॥ पिहितं रत्नगर्भं च तेजोराशिभिरञ्जितम्। सदाशिवस्य रूपं च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः। सम्पूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽप गर्तके। तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च यथाविधि॥ 85 ॥ नाभिमेति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा। प्रार्थनां च तथा कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित्॥ 86 ॥ नन्दे त्वं ॥ 87 ॥ 88 ॥ महापद्मं न्यसेत्तत्र (आधारशिलायाम्) पूजयेद्रत्नगर्भितम्। तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेत्तं च मन्त्रकैः॥ 88 ॥ भद्रं कर्णेति च तथा स्थापयेद्दारुणैस्तया भद्रे त्वं॥ 90॥ 91॥ आधारोपरि विन्यस्य कलशं शङ्खसंज्ञकम्'। कोणे संपूज्यविधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः॥ 92॥ जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः गर्गगत्रस.॥ 93॥ 94॥ आधारोपरिविन्यस्य विजयं कलशं ततः। रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥ 95 ॥ त्र्यम्बकं यजामहेति तथा वरुणमंत्रकैः पूजयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्तिहारिणीम्॥ 96 ॥ रिक्ते त्वं.॥ 97 ॥ आधारं विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम्। पूर्णं रत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम्॥ 98 ॥ तं च संपूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्। तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम्॥ 99 ॥ पूर्णा त्वं.॥ 100 ॥ 101 ॥ पूर्णा दर्वीतिमन्त्रेण इमं देवेति वै तथा। मूर्द्धानं दिवेति तथा शान्तिमन्त्रैस्तथैव च॥ 102 ॥ सहस्रशीर्षेति षोडशभिरग्निमीळेति वै तथा। इषे त्वोर्जेत्वेत्यग्न आयाहीति तथा पुनः॥ 103 ॥ शन्नो देवीति मन्त्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचि' इति शिलानां स्थापन प्रकार उपदिष्टो विश्वकर्मप्रकाशे (अ. 5) 'इति वास्तुविधानं तु कृत्वा ताः आनमण्डपात्। समानीय शिलास्तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः। तत्र दिक्साधनं कुर्यात् गृहमध्ये सुसाधिते। ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु। खनित्वा कोणदिग्भागे आग्नेये च विशेषतः। नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं शुभम्' (अ. 5, श्लो. 42-44) 'गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः। ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्। नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णानाम्नीर्यथाक्रमम्। नंदायां पद्मालिख्य भद्रासिंहासनं तथा। जयायां तोरणच्छत्रे रिक्तायां कूर्ममेव च। पूर्णायां च चतुर्बाहुं विष्णुं संलेखयेद्बुधः। भूर्भुवः स्वरिति तथा तासामावाहनं स्मृतम्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः। भूतान्येतानि पञ्चैव पञ्चस्वावाहयेत्पुनः। स्नपनं च ततः कुर्याद् विधिदृष्टेन च कर्मणा इति।' विश्वकर्मप्रकाशेऽभिहितम् (अ. 5, 57-62)।

उपस्कारक वास्तु आदि ग्रन्थ

अग्निपुराण : वेदव्यास, सम्पादक-अनुवादक- तारिणीश झा एवं घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1998 ई.

अपराजितपृच्छा : भुवनदेवाचार्य, सम्पादक पोपटभाई अम्बाशङ्कर मन्कड, बड़ौदा ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडोदरा, 1950 ई., हिन्दी अनुवाद-श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रो. बीएल शर्मा (शीघ्र प्रकाशनाधीन) तथा इस पर डॉ. एल. मिश्र कृत आलोचनात्मक अध्ययन, लक्ष्मी प्रकाशन, इलाहाबाद 1994 ई.

अर्थशास्त्र : कौटिल्य चाणक्य विरचित, सम्पादक व मूलाख्यटीका- टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रन संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1925 ई., अंग्रेजी टीका- शामा शास्त्री, मद्रास, 1920 ई.

आचारदिनकर : आचार्य वर्द्धमान सूरी, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर, 2005 ई.

आत्रेयतिलक : (प्रतिमातालमान) सम्पादक- फणीन्द्रनाथ बोस, इण्डोलॉजीकल बुक हाउस, जवाहरनगर, दिल्ली, पुनर्प्रकाशित 1978 ई., हिन्दी अनुवाद - डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू (शीघ्र प्रकाश्य)

ईशानशिवगुरुदेवपद्धति : ईशानशिवगुरुदेव मिश्र, सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, अनन्तशयन ग्रन्थमाला, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम, 1920-25 ई.

ऋग्वेद : सम्पादक श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री शक्तिपीठ, शांतिकुञ्ज, हरिद्वार संस्करण 2002 ई.

कारणागम : (पूर्वकारणागम ग्रन्थलिपि में प्रकाशित) मद्रास, 1921 ई. एवं उत्तरकारणागम (ग्रन्थलिपि) मद्रास, 1901 ई.

कामिकागम : पूर्वकामिकागम, सम्पादक - सी स्वामीनाथ गुरुकल, मद्रास, 1975 ई., उत्तरकामिकागम (ग्रन्थलिपि) मद्रास, 1900 ई. गोपीनाथ राव द्वारा उद्धृत.

कालिकापुराणेमूर्तिविनिर्देश : सम्पादक- डॉ. बी. एन. शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1997 ई.

काश्यपशिल्पम् : काश्यप मुनि विरचित, सम्पादक- श्रीकृष्ण शर्मा, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1926 ई. तमिल अनुवाद : सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जावुर, संस्करण 2005 ई. हिन्दी अनुवाद- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

किरणाख्यतन्त्रम् : सविवृतिबृहत्संहिता में भट्टोत्पल द्वारा उद्धृत.

कुण्डमण्डपसिद्धि : विट्ठलदीक्षित, टीकाकार वायुनन्दन मिश्र, मास्टर खेलाड़ीलाल सङ्कटाप्रसाद संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी तथा *मण्डपकुण्डसिद्धि* नाम से बलदेव पाठक कृत भाष्य व श्रीनिवास शर्मा कृत टीका, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2002 ई.

कृत्यकल्पतरु (प्रतिष्ठाकाण्ड) : भट्टश्रीलक्ष्मीधर, सम्पादक के.वी. रंगास्वामी अयङ्गार, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा संस्करण 1997 ई.

क्षीरार्णव : विश्वकर्माकृत, सम्पादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, गोरावाड़ी पालीताणा, 1967 ई.

ग्रहलाघव : गणेशदैवज्ञ, मल्लारिकृत व्याख्यया, सम्पादक- रामचन्द्र पाण्डेय, श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्बू, 1976 ई.

ज्ञानप्रकाशदीपार्णव : विश्वकर्माकृत, सम्पादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, (गुजराती अनुवाद) गोरावाड़ी, पालीताणा 1964 ई.

देवतामूर्तिप्रकरणम् : सूत्रधार मण्डन, सम्पादक- श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, चन्द्रावल दिल्ली, 2003 ई. परिशिष्ट में रूपमण्डनम्।

चित्रलक्षणम् : नग्नजित्विरचित, सम्पादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस 2006 ई.

ज्योतिर्निबन्ध : सूरमहाठ शिवराज, संशोधक रङ्गनाथ शास्त्री, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, पूना, 1919 ई.

ज्योतिषरत्नमाला : श्रीपतिभट्टाचार्य प्रणीत, सम्पादक-व्याख्याकार श्रीकृष्ण 'जुगनू' परिमल पब्लिकेशंस, शक्तिनगर, दिल्ली 2004 ई.

तन्त्रसमुच्चय (सव्याख्या) : नारायणनम्बूदिरीपाद प्रणीत: शङ्करप्रणीत तथा विमर्शिन्याख्याया व्याख्या समेत:, संशोधक-सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1919 ई. प्रो. उन्नी के सम्पादन में पुनर्प्रकाशन- नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली 1999 ई. तथा इसी के तृतीय शिल्पभाग का मलयालम अनुवाद, पञ्चाङ्गम् प्रेस एण्ड बुक सेलर, कुन्नामकुलम्, त्रिचूर, केरल, 2002 ई.

दीप्तागम : (पटल 1-21) सम्पादक- मेरी लूस बरज़ेर बिल्लोरेट, ब्रूनो डिगेंस व विंसेंट लेफेयर, फ्रेंच इंस्टीट्यूट पाण्डीचेरी, 2004 ई.

देवालयचन्द्रिका : अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन (25) में के. वी. शर्मा द्वारा सपरिचय विमर्श, पृष्ठ 582-86 तक, 1961 ई., हिन्दी अनुवाद- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (शीघ्र प्रकाश्य)

नाट्यशास्त्र : भरताचार्यकृत, सम्पादक - पं. दुर्गाप्रसाद आत्मज पं. केदारनाथ साहित्यभूषण, पुनर्मुद्रित संस्करण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली 1991 ई.

नारदसंहिता : मुनि नारद भाषित सम्पादक- रामजन्म मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 2001 ई. तथा पण्डित वसतिराम ज्योतिर्विद कृत वि.सं. 1954 की भाषाटीका, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 1999 ई.

निर्णयसिन्धु : पं. कमलाकर भट्ट प्रणीत, सम्पादक-अनुवादक- दौलतराम गौड़, सावित्री ठाकुर प्रकाशन, नाटी इमली, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2004 ई.

प्रमाणमञ्जरी : सूत्रधार मल्ल कृत, सम्पादक- प्रियबाला शाह, बड़ौदा ऑरियण्टल सीरिज, बड़ौदा, 1958 ई., हिन्दी अनुवाद- श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2008 ई.

प्रासादमण्डनम् : सूत्रधार मण्डन कृत, सम्पादक-अनुवादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, शक्तिनगर, दिल्ली 2006 ई.

बृहत्संहिता : वराहमिहिर- भट्टोत्पलीयविवृत्ति सम्पादक सुधाकर द्विवेदी पुनर्सम्पादन कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1996, हिंदी अनुवाद अच्युतानन्द झा, चौखम्बा प्रकाशन, बनारस संस्करण 1997 ई. एवं **वाराहीसंहिता** नाम से पं. सुखानन्द मिश्र एवं पं. बलदेव मिश्र कृत अनुवाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 2000 ई.

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् : रामदीन दैवज्ञ, हिन्दी डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1985 ई.

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण : वेदव्यास कृत, अनुवादक- पं. श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' एवं रामाधार शुक्ल गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 37 का विशेषाङ्क 1963 ई., मूल व अनुवाद- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 2000 ई.

भविष्यपुराण : (अर्धमात्र) अनुवाद-संयोजक- महाप्रभुलाल गोस्वामी, गीताप्रेस गोरखपुर के कल्याण के 66वें वर्ष का विशेषाङ्क 1992 ई. मूलपाठ एवं टीका बाबूराम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1995-2003 ई.

मत्स्यपुराण : वेदव्यास विरचित, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण का विशेषाङ्क

1985 ई. पुनर्प्रकाशन 2005 ई.

मेनुस्मृति : अनुवादक- गणेशदत्त पाठक, ठाकुरप्रसाद बुक सैलर, वाराणसी, संस्करण 1991 ई.

मनुष्यालयचन्द्रिका : नीलकण्ठ मूसत कृत, सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री (मूलपाठ), अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क- 56, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1917 ई., अंग्रेजी में इंजीनियरिंग टीका- डॉ. ए. अच्युतन तथा डॉ. बालगोपाल टी. एस. प्रभु, वास्तुविद्या प्रतिष्ठानम्, सारस्वतम्, किलीयानाड, कालिकट, 1998 ई. तथा मलयालम टीकाएँ- नीलकण्ठन असरी के., एस. टी. रेड्डीयार एण्ड सन्स, क्यूलोन, 1987 ई.; पय्यानूर एन. केशवाचारी, आचार्य ग्रन्थालयम्, पय्यानूर, 1991 ई. तथा पण्डित राज कनिप्पयूर शङ्करन नम्बूदिरीपाद, पञ्चाङ्गम् पुस्तकशाला, कुन्नामकुलम्, 1993 ई., हिन्दी अनुवाद- श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2006 ई.

मयमतम् : मयमुनि विरचित सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, अनन्तशयन ग्रन्थावली, तिरुवनन्तपुरम्, 1919 ई., तमिल अनुवाद (दो भाग 1-25 व 26-34 अध्याय)- के. एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्रीगल, सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जौर, 1966-68 ई. एवं पुनर्मुद्रण 2004 ई., फ्रेंच अनुवाद (दो भाग)- ब्रूनो डिगेंस, फ्रेंच इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, पाण्डिचेरी, 1970-1976 ई., अंग्रेजी अनुवाद- ब्रूनो डिगेंस, सीताराम भरतिया इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च, दिल्ली 1985 ई., ब्रूनो डिगेंस द्वारा ही पुनः अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशन- इन्दिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर द आर्ट्स, नई दिल्ली के लिए मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1994 ई., हिन्दी अनुवाद- श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2007 ई.

मयशास्त्रम् : मयमुनिकृत, सम्पादक- फणीन्द्रनाथ बोस, इण्डोलॉजीकल बुक हाऊस, जवाहरनगर, दिल्ली, पुनर्प्रकाशित 1978 ई. एवं **तच्चुशास्त्रम्** नाम से मलयालम अनुवाद, पञ्चाङ्गम् प्रेस एण्ड बुक सेलर, कुन्नामकुलम्, त्रिचूर, केरल, 2002 ई. **मयदीपिका** तथा **मयसङ्ग्रह** का नामोल्लेख हेमाद्रि विरचित चतुर्वर्गचिन्तामणि के व्रतखण्ड में प्राप्य, डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू के मयमतम् में सम्पूर्ण पाठ सम्पादित

मानववास्तुलक्षणम् : नारायण नम्बूदिरीपाद कृत, प्रसन्नकुमार आचार्य कृत मानसार के तृतीय भाग के परिशिष्ट 'ग' में खण्डित पाठ के रूप में प्रकाशित पृष्ठ 446-451 तक, संस्करण 1936ई. हिन्दी अनुवाद-श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

मानसार : मानमुनि विरचित, सम्पादक -प्रसन्नकुमार आचार्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1936 ई.; पुनर्मुद्रण- मुँशीराम मनोहरलाल, दिल्ली,

1997 ई., हिन्दी अनुवाद-श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

मानसोल्लास अपरनाम **अभिलषितार्थचिन्तामणि** : भूलोकमल्ल सोमेश्वर विरचित, सम्पादक जी. के. श्रीगोण्डेकर, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा 1939 ई., हिन्दी अनुवाद- श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रो. बीएल शर्मा (प्रकाशनाधीन)

मुहूर्तचिन्तामणि : रामदैवज्ञ कृत तथा प्रमिताक्षरा टीका, सम्पादक - अनूप मिश्र, गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 1928 ई. गोविन्द दैवज्ञ कृत पीयूषधारा टीका सम्पादक - केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण 1995 ई. तथा पीयूषधाराटीका, व्याख्याकार - पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी, सम्पादक डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2000 ई.

मुहूर्ततत्त्वम् : केशवदैवज्ञ, सम्पादक व अनुवादक- श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2007 ई.

मुहूर्तमार्तण्ड : दैवज्ञ नारायण विरचित, टीका - पण्डित सीताराम झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 1992 ई. एवं मार्तण्डवल्लभाटीका- केदारदत्त जोशी कृत व्याख्या, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 1993 ई.

राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् : सूत्रधारमण्डन कृत, सम्पादन व व्याख्या- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 2005 ई. *वास्तुराजराजवल्लभ* नाम से रामयत्न ओझा द्वारा सम्पादित, मास्टर खेलाड़ीलाल सङ्कटाप्रसाद, बनारस, 2000 ई.

रौरवागम : सम्पादक- प्रो. एन. आर. भट्ट, फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पाण्डीचेरी, 1961-88 ई.

वत्थुसारपयरणम् : (प्राकृत) ठक्कुरफेरू विरचित, रत्नपरीक्षादि सप्तग्रन्थ संग्रह में सङ्कलित, सम्पादक अगरचन्द, भँवरलाल नाहटा, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर 1963 ई. तथा श्रीकृष्ण 'जुगनू' द्वारा पुनर्सम्पादित व अनूदित, (प्रकाशनाधीन)

वशिष्ठसंहिता : वृद्धवशिष्ठ विरचित, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई 1915 ई.

वायुपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक- रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1987 ई.

वास्तु उद्धारधोरिणी : सूत्रधार गोविन्द कृत, सम्पादक व अनुवादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफीस बनारस, 2008ई.

वास्तुमञ्जरी : क्षेत्रार्कसूनु सूत्रधार नाथा भङ्गोरा विरचित, सम्पादक- श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2006 ई.

वास्तुरत्नावली : जीवनाथ झा दैवज्ञकृत, दाऊजी अग्निहोत्री की दुकान, दुण्ढीराज

गणेश, सिद्ध विनायक यन्त्रालय से शिला मुद्रण विधि से प्रकाशित बनारस 1883 ई., टीकाकार अच्युतानन्द झा, चौखम्बा, वाराणसी, 1941 ई.

वास्तुविद्या : विश्वकर्माकृत, के. महादेव शास्त्री कृत व्याख्या, अनन्तशयन ग्रन्थावली, त्रिवेन्द्रम, द्वितीय संस्करण 1940 ई. हिन्दी अनुवाद : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफीस, बनारस 2008ई. एवं **वास्तुविद्या** के एक अन्य पाठ का सम्पादन, गुजराती टीका प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, 1977 ई.

वास्तुसारमण्डनम् : सूत्रधार मण्डन, सम्पादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, 1977 ई. आयतत्त्व सहित समीक्षात्मक पाठ एवं अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली, 2005 ई.

वास्तुसौख्यम् : टोडरमल्ल विरचित, सम्पादक आचार्य कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करण 1999 ई.

विवेकविलास : मुनि जिनदत्त सूरीश्वर कृत, सम्पादक-अनुवादक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2007 ई.

विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम् : विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जावुर, संस्करण 1999 ई.

विश्वकर्मापुराण : सम्पादक डॉ. चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब बरेली, 1994 ई.

विश्वकर्माप्रकाश : विश्वकर्माकृत, अनुवादक मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 1998 ई., हिन्दी अनुवाद-श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण : कृष्णद्वैपायनव्यासभाषित, सम्पादक- मधुसूदन माधवप्रसाद शर्मा, खेमराजकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1911 ई. पुनर्सम्पादन- नागशरणसिंह, नाग पब्लिकेशन, जवाहरनगर, दिल्ली, 1998 ई., तृतीयखण्ड : सम्पादक डॉ. प्रियबाला शाह, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा 1958 ई.

विष्णुसंहिता : सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज, तिरुवनन्तपुरम्, 1925 ई. पुनर्मुद्रण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली 1991 ई.

वृक्षायुर्वेद : सुरपालमुनि प्रणीत, सम्पादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2004 ई.

वृत्तशतम् : महेश्वरोपाध्याय, सम्पादक एवं हिन्दी अनुवाद - डॉ. श्रीकृष्ण

'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत संस्थान, दिल्ली से प्रकाशनाधीन

सिद्धान्तशिरोमणि : भास्कराचार्य, नरसिंह दैवज्ञ की विवृत्ति सहित, बनारस, 1981 ई. एवं डॉ. धूलिपाल अर्कसोमयाजी कृत आधुनिक खगोल शास्त्रानुसार अंग्रेजी व्याख्या, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय, तिरुपति, 2000 ई.

शिल्पदीपक : सूत्रधार गङ्गाधर प्रणीत, सम्पादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, 2005 ई.

शिल्परत्नम् : श्रीकुमार विरचित (पूर्वार्द्ध) सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क 56, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1917 ई. (उत्तरार्द्ध) सम्पादक के. साम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थमाला, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्, 1929 ई.

शिल्पशास्त्रम् : सम्पादक- फणीन्द्रनाथ बोस, लाहौर, 1917 ई. इण्डोलॉजीकल बुक हाऊस, जवाहरनगर, दिल्ली से पुनर्प्रकाशित 1978 ई. मलयालम अनुवाद- सेतुमाधवन कोईथत्ता, पी. के. ब्रदर्स, कालिकट, 1996 ई. हिन्दी अनुवाद : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 2006ई.

शिल्पप्रकाश : रामचन्द्र कौलाचार, सम्पादक एलिस बोर्नर व एम. आर. शर्मा, लियेडेन, 1963 ई. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से पुनर्प्रकाशित 2005 ई.

शिल्परत्नकोश : निरञ्जन महापात्र, बेट्टिना बोमर, राजेन्द्रप्रसाद दास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1994 ई.

शुल्बसूत्रम् : कात्यायन, कर्क, महीधर भाष्य, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 1958 ई.

सकलाधिकारम् : अगस्त्य मुनि, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, सरस्वती महल लाइब्रेरी, क्रमाङ्क 92, द्वितीय संस्करण 1996 ई. हिन्दी अनुवाद - श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

समराङ्गणसूत्रधार : धाराधिपभोजदेवविरचितम् - सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, गायकवाड संस्कृत ग्रन्थमाला, क्रमाङ्क-25, केन्द्रीय पुस्तकालय वडोदरा, 1929, प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा पुनर्सम्पादन, बड़ौदा, 1966 ई., प्रो. पुष्पेन्द्रकुमार की अंग्रेजी भूमिका के साथ मूलपाठ का पुनर्प्रकाशन, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 2000 ई. हिन्दी अनुवाद- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (प्रकाशनाधीन)

सुप्रभेदागम : (ग्रन्थलिपि में प्रकाशित) मद्रास, 1928 ई.

सूर्यसिद्धान्त : मय कृत, रङ्गनाथ कृत गूढार्थप्रकाशिका टीका, खेमराज श्रीकृष्णदास,

मुम्बई, पुनर्मुद्रण 2000 ई., अन्य संस्करण पं. रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2000 ई., महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत विज्ञानभाष्य, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद, 1924, 1931 व 1940 ई.

अन्य उपयोगी पाण्डुलिपि ग्रन्थादि

दैवज्ञवल्लभम् : श्रीपति कृत, अपूर्ण पाण्डुलिपि, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, वडोदरा से प्राप्त। अन्य पाठ 'दैवज्ञवल्लभा' नाम से प्रकाशित व्याख्याकार डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी, रञ्जन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण 1997 ई.

भारतीय ज्योतिष : शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, मराठी संस्करण, अनुवादक शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, संस्करण 1957 ई.

भारतीय ज्योतिष का इतिहास : डॉ. गोरखप्रसाद, हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊ, 1974 ई.

शब्दकल्पद्रुम : स्याराजा राधाकान्तदेव बहादुर विरचित, वरदाप्रसाद हरिचरण, 71 पाथुरियाघाटा स्ट्रीट, कोलकाता, 1808–18 ई., पुनर्मुद्रण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली 1987 ई.

***

चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बाक्स नं. 2206
बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (कमला नगर के पास), दिल्ली-110007 (भारत)
फोन : 011-23851617, 23858790

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उत्तररामचरितम्। 'उमा' संस्कृत व्याख्या, हिन्दी अर्थ, टिप्पणी तथा सर्वांगपूर्ण संक्षिप्त भूमिका से युक्त। डॉ. ओमवती शर्मा 'उमा'

मध्यसिद्धान्तकौमुदी (प्रश्नोत्तरी)। प्रभाकार मिश्र

वासवदत्ता। ललन मिश्रा

वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी। 'लक्ष्मी-मुद्रिका' संस्कृतहिन्दी व्याख्योपेता विविध प्रश्नोत्तरादिसमलङ्कृता च। पं. हरेकान्त मिश्र।

अलंकारसारमञ्जरी (संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता) प्रभाकर मिश्र

रघुवंशम्। महाकवि कालिदास प्रणीतम्। (प्रतिश्लोकान्व्य-शब्दार्थ-सन्दर्भ-संजीवनी व्याकरण/साहित्य सम्बन्धिनी टिप्पणी-संस्कृत व्याख्या भावार्थाङ्गल भाषानुवाद वाच्यपरिवर्तनाद्यनेकविषय समलङ्कृतम्) १३वाँ सर्ग पं. राजेश्वर केशव शास्त्रिभिः सम्पादितम्

रघुवंश। महाकवि कालिदास प्रेणीतम्। मल्लिनाथकृत 'संजीवनी' संस्कृत-हिन्दी-टीका। डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर

कठोपनिषद्। शांकर भाष्य विस्तृत व्याख्या सहित एवं विविध टिप्पणियां। व्याख्याकार डॉ. रघुवीर वेदालंकार

घेरण्ड-संहिता। सुबोध हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. एच.एल. शर्मा

शिवराजविजय। अम्बिकादत्तशास्त्री। संस्कृत-हिन्दी-टीका सहित। १-४ निश्वास। डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर

कारिकावली सिद्धांतमुक्तावली सहिता। न्यायवैशेषिक-दर्शनयो-र्व्युत्पित्सूनां कृते प्रणीतेषु प्रकरणग्रन्थेषु सिद्धान्तमुक्तावली समुद्भासिता मूर्धाभिषिक्तेत्यत्र न विदुषां वैमत्यं, किंतु तत्र दीधितिकृदुपसृतया विवेकसरण्या संक्षेपत: सूक्ष्मतमानामर्था-नामुपनिबद्धतया प्राय: खिद्यन्ति नव्याश्छात्रा: इति तेषामुपकाराया-स्माभि: प्राय: सर्वेषु विषमस्थलेष्वति-विस्तृतां सरलां सुबोधां च टिप्पणीं पण्डितजीवरामशास्त्रिभि: कारयित्वा तया सहेयंस्थूला क्षरैर्मुद्रिता। सार्धशताभ्यधिकपत्रयुतामपीमां सर्वसौलभ्यायाल्पोयसा।

वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी प्रभा (सिद्धान्त कौमुदी प्रश्नोत्तरी) १-४ भाग। प्रभाकर मिश्र।

चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बाक्स नं. 2206
बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (कमला नगर के पास), दिल्ली 110007 (भारत)
फोन : 011-23851617, 23858790